वैदेहीशरण, मालिक—हिन्दी-पुस्तक-भंडार
लहेरियासराय (बिहार) द्वारा प्रकाशित
तथा
बाबू बृजभूषण लाल द्वारा
अग्रवाल प्रेस, तेलियाबाग, बनारस-कैण्ट में मुद्रित

सत्यं शिवं सुन्दरम्

बिहार का साहित्य

पहला भाग

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के

प्रथम पाँच सभापति

पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, बाबू शिवनन्दन सहाय, पं० सकल नारायण पाण्डेय, पं० चन्द्र-शेखरधर मिश्र

तथा

पाँच स्वागताध्यक्षों के भाषणों का संग्रह

प्रकाशक

हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

प्रथम संस्करण　　सम्वत् १९८३ वि०　　मूल्य १॥।)

कृपया पहले इसी को पढ़िये

आज से सात वर्ष पहले बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन सोनपुर (हरिहरक्षेत्र) में हुआ था। उसके बाद क्रमशः बेतिया (चम्पारन), सीतामढ़ी (मुजफ्फरपुर), छपरा (सारन) और पटने में उसके अधिवेशन हुए। और भी इधर दो अधिवेशन हुए हैं, किन्तु इस पुस्तक में केवल प्रथम पाँच अधिवेशनों के ही मुख्य भाषणों का संग्रह किया गया है। यदि हिन्दी-प्रेमियों ने इसे अपनाया, तो फिर अगले अधिवेशनों के मुख्य भाषण भी इसी तरह पुस्तकाकार प्रकाशित किये जायँगे।

बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मंच से जो उभय प्रधानों के महत्त्वपूर्ण भाषण हो चुके थे, उनका अप्रकाशित रहना बिहार के साहित्य-प्रेमियों को कई वर्ष से खटक रहा था। कारण, यह सम्मेलन बिहार के हिन्दी-साहित्य-संसार में एक सुसंगठित संस्था है। किसी प्रान्त के सम्मेलन में इसके समान सजीवता नहीं है। स्थायी समिति बड़ी तत्परता से नियमित कार्य कर रही है, और सम्मेलन के प्रति बिहार-प्रान्त के साहित्य-सेवियों की भी सहानुभूति है। फिर भी स्थायी समिति के पास इतना पर्याप्त अर्थ और प्रकाशन-सम्बन्धी साहस नहीं है कि वह भिन्न-भिन्न स्थानों में किये गये सम्मेलनोत्सवों के कार्य-विवरण अथवा लेख-मालायें प्रकाशित करे। और, जिन-जिन स्थानों में सम्मेलन के ये पाँच अधिवेशन हो चुके हैं, मुजफ्फरपुर को छोड़ कर, उन स्थानों की स्वागत-समितियाँ भी अपनी परिमित आर्थिक शक्ति के कारण स्वागत की समुचित व्यवस्था के सिवा कार्य-विवरण और लेख-मालायें प्रकाशित करने का प्रबंध न कर सकीं। ऐसी दशा में स्थायी

समिति इस चिन्ता में प्रवृत्त हुई कि प्रधानाध्यक्षों और स्वागताध्यक्षों के भाषणों को, जो बिहारी हिन्दी-साहित्य के सुरक्षणीय रेकर्ड हैं, लुप्त हो जाने से किसी तरह बचाना चाहिये। अनेक उपाय सोच कर भी वह अपनी इस चिन्ता को दूर न कर सकी। अन्त में उसने निर्णय किया कि किसी प्रान्तीय हिन्दी प्रकाशक से इसके लिये अनुरोध किया जाना चाहिये।

हमें यह घोषित करते हुए अत्यंत हर्ष होता है कि इस अन्तिम निर्णय को सफलता-पूर्वक कार्य-रूप में परिणत करने का समस्त श्रेय हमारे अभिन्न मित्र पं० रामवृक्ष शर्म्मा बेनीपुरी ('बालक'-सम्पादक) को ही प्राप्त है, जो स्थायी समिति के सदस्य और सम्मेलन के एकान्त हितैषी हैं, तथा जिनके उद्योग से यह पुस्तक इतनी सुन्दरता के साथ सचित्र प्रकाशित हो सकी है। उन्हीं के परामर्श से बिहार के परमोत्साही प्रकाशक लहेरियासराय-निवासी बाबू वैदेहीशरण ने स्थायी समिति के निर्णय को सहर्ष स्वीकार किया। ईश्वर की कृपा से उस उदारतापूर्ण स्वीकृति का सुखद परिणाम आज आपके समक्ष उपस्थित है। आशा है, प्रकाशक महाशय की इस उदारता और सहृदयता के लिये, स्थायी समिति की भाँति, सभी हिन्दी-प्रेमी—विशेषतः बिहार के साहित्यानुरागी—उनको अनेकानेक धन्यवाद देंगे।

सम्मेलन के शुभचिन्तकों और कृपालु सहायकों के सन्तोष के निमित्त यहाँ हम यह भी सानन्द सूचित कर देना उचित समझते हैं कि स्थायी समिति के निर्णयानुसार प्रकाशक महोदय ने बड़े हर्ष के साथ सम्मेलन को इस पुस्तक की दो सौ प्रतियों की आय भी देना स्वीकार कर लिया है। इस सराहनीय उदारता के लिये भी समिति उनको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकती। अब

हिन्दी-प्रेमियों से हमारा करबद्ध एवं साग्रह निवेदन है कि वे इस पुस्तक को दिल खोल कर अपनावें, ताकि इसके अधिकाधिक संस्करणों के प्रकाशन से सम्मेलन कुछ आर्थिक लाभ उठाने में समर्थ हो, और अपने कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होता रहे। विश्वास है, यह नम्र निवेदन निष्फल न होगा।

इस पुस्तक के यथेष्ट प्रचार पर ही अगले अधिवेशनों के भाषणों का संग्रह प्रकाशित होना निर्भर है। यदि हिन्दी-प्रेमियों की ओर से पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, तो ईश्वर की दया से सभी अधिवेशनों के कार्य विवरणों और लेख-मालाओं को संग्रह-रूप में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जायगा, क्योंकि उनको सुरक्षित रखना बिहार की साहित्यिक प्रतिष्ठा के लिये अत्यंत आवश्यक है। अस्तु।

इस पुस्तक में केवल पाँच प्रधानाध्यक्षों और पाँच स्वागताध्यक्षों के भाषण क्रमवद्ध संग्रह किये गये हैं। किन्तु भूल से पंचम अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष का भाषण अपने पूर्व के चार भाषणों से पहले छप गया है। यद्यपि इस से सिलसिला बिगड़ने के सिवा कोई प्रत्यक्ष आपत्ति-जनक हानि नहीं हुई है, तथापि हमें इस व्यतिक्रम के लिये बड़ा खेद है। पर हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस पुस्तक को आद्यन्त पढ़ जाने पर पाठकों का इतना मनोरंजन और ज्ञान-सम्वर्द्धन होगा कि उन्हें इस सामान्य व्यतिक्रम का कुछ ध्यान ही न रहेगा। प्रथम भाषण माननीय चतुर्वेदी जी का है, जो अखिल-भारत-वर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति (लाहौर में) हो चुके हैं। उसमें जितना तथ्यपूर्ण बातों का समावेश है, उतना ही मधुर विनोद का। दूसरा भाषण हिन्दी के गद्य-कवि, लक्ष्मी और सरस्वती के समान कृपापात्र, कायस्थ-कुलालंकार,

सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह एम० ए० का है। वह एक ललित गद्य-काव्य है। ऐसी कवित्व-पूर्ण भाषा में ऐसा पाण्डित्यपूर्ण भाषण अभी तक किसी प्रान्तीय सम्मेलन के मंच से नहीं सुना गया। तीसरा भाषण ज्ञानवयोवृद्ध बाबू शिवनन्दन सहायजी का है, जो गोस्वामी तुलसीदास और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अद्वितीय जीवनियों के स्वनामधन्य लेखक हैं। उसमें बिहार के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य पर गंभीर गवेषणा का उज्ज्वल प्रकाश डाला गया है। चौथा भाषण 'शिक्षा'-सम्पादक प्रोफेसर सकलनारायण शर्मा काव्य-व्याकरण-सांख्य-तीर्थ का है, जिसमें आरम्भिक काल से लेकर आज तक के बिहार के साहित्य की प्रगति का क्रमबद्ध ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। उसमें हिन्दी-व्याकरण और रचना के सम्बन्ध में भी कई विचारणीय युक्तियुक्त बातें मौजूद हैं। पाँचवाँ भाषण भारतेन्दु-कालीन साहित्य-रथी विद्वद्वर पं० चंद्रशेखरधर मिश्रजी का है, जिसमें भाषा और साहित्य की अनुभवपूर्ण समालोचना विद्यमान है। इसी प्रकार स्वागता-ध्यक्षों के भाषण से तत्स्थानीय हिन्दी-साहित्य-सेवियों का परिचय प्राप्त होता है, जो गुदड़ी में लाल की तरह छिपे पड़े हुए हैं। तात्पर्य यह कि विविध-विषय-विभूषित एवं विविध-शैली-समलंकृत होने के कारण यह पुस्तक सर्वतोभावेन चित्ताकर्षक बन गई है। आशा है, इसे पढ़ कर पाठक परितृप्त होंगे।

प्रादेशिक
साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय
मुजफ्फरपुर
चैत्र-पूर्णिमा, सम्वत् १९८३

श्रीरामधारीप्रसाद
प्रधानमंत्री

सभी पुस्तकें पौने मूल्य में

१—जो सज्जन आठ आना पेशगी भेजकर 'हिन्दी-पुस्तक-भंडार' के स्थायी ग्राहक बन जायँगे, उन्हें हमारी ग्रंथमालाओं※ की सभी पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी।

२—पुस्तकें प्रकाशित होते ही स्थायी ग्राहकों को पुस्तकों के नाम और मूल्य आदि की सूचना दे दी जायगी। उनमें से जिसको जो पुस्तक पसन्द होगी, सूचित करते ही हम पौने मूल्य में वी० पी० द्वारा भेज देंगे। कोई सूचना न देने पर सूचित की हुई सभी पुस्तकें भेज दी जायेंगी।

३—यथासम्भव एक बार में ५-६ रुपये की पुस्तकें निकाल कर उनकी सूचना दी जायगी ताकि स्थायी ग्राहकों का डाकव्यय आदि में व्यर्थ अधिक व्यय न हो।

४—किसी पुस्तक का लेना या न लेना स्थायी ग्राहक की इच्छा पर निर्भर है। और, उन्हें अधिकार होगा कि जिस पुस्तक की जितनी प्रतियाँ जब चाहें पौने मूल्य में मँगा लें।

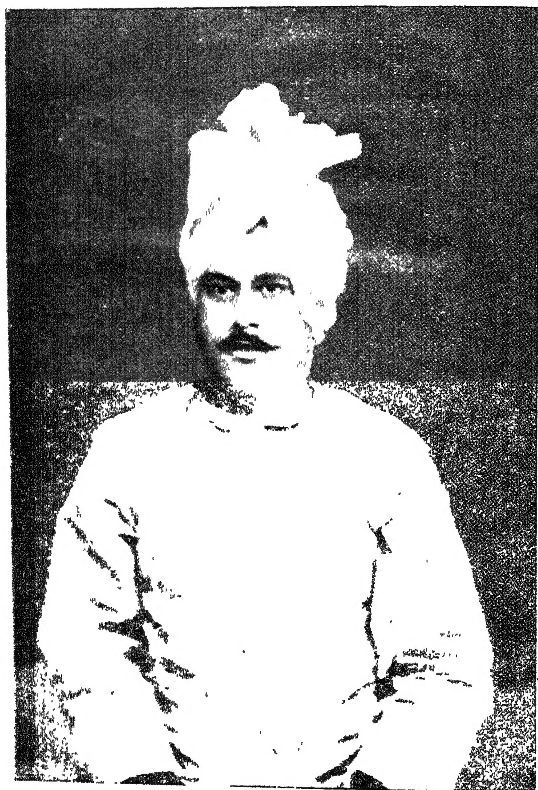
५—हिन्दी-साहित्य की उत्तमोत्तम—सभी प्रकाशकों की—पुस्तकें रखने का प्रबन्ध हमने कर लिया है। चाहे जहाँ कहीं की जो कोई पुस्तक माँगनी हो, केवल स्थायी ग्राहक सज्जन हमसे फी रुपया एक आना कमीशन पर मँगा सकते हैं।

६—यदि स्थायी ग्राहक की लापरवाही या भूल से वी० पी० का पार्सल लौट आयेगा, तो डाकखर्च उन्हीं के जिम्मे होगा, और दो बार वी० पी० लौटने पर गाहक-श्रेणी से उनका नाम काटने को हम बाध्य होंगे।

व्यवस्थापक—हिन्दी पुस्तक-भंडार
लहेरियासराय (बिहार)

※हमारी प्रकाशित ग्रन्थमालाओं के नाम—सुन्दर-साहित्य-माला, सुबोध-काव्य-माला, नवयुवक-हृदय-हार, महिला-मनोरंजन-माला, बाल-मनोरंजन-माला, सरल-पद्य-माला आदि।

विहार का साहित्य



पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

प्रथम

बिहार-प्रादेशिक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

का

भाषण

प्रथम

बिहार-प्रादेशिक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

का

भाषण

श्री:

स्वागतकारिणी समिति के माननीय अध्यक्ष, उपस्थित भाइयो और बहनो—

आज मंगलमय मुहूर्त्त है—सुखमय शुभ समय है—आनन्दमय अद्वितीय अवसर है। आज हम लोग शुचि शालग्रामी नदी के तट पर, पवित्र हरिहर क्षेत्र में, वीणापाणि भगवती भारती की भक्ति पूर्व्वक आराधना करने के लिये, बहुत दिनों के बाद, एकत्र हुए हैं। वीणापाणि की उपासना से बढ़कर और कोई उपासना नहीं है। इससे अर्थ, धर्म्म, काम, मोक्ष सब कुछ सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। सारदा देवी की कृपा से मनुष्य अमर होता है। आज हम भी अमरत्व प्राप्ति की आकांक्षा से यहां आये हैं। आशा है, माता की अनुकम्पा से अवश्य ही अमर हो जायँगे।

माता के मन्दिर में भेदभाव नहीं है और न पक्षपात है। वहां राजा-रंक, धनी-दरिद्र सबको समान अधिकार और समान स्वतन्त्रता है। सरस्वती की सेवा पर सबका ही समान स्वत्व है। इसीसे आज बिहार के छोटे-बड़े, बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान जातिभेद, वर्णभेद, व्यक्तिभेद भूलकर जगज्जननी के श्रीचरणों में पुष्पांजलि प्रदान करने को प्रस्तुत हैं। सबका ही एक उद्देश्य और एक लक्ष्य है—सबका ही एक मन और एक प्राण है—सबका ही एक ज्ञान और एक ध्यान है—सबका ही एक स्वर और एक तान है—सबही अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार माता की पूजा करने के लिये उतावले हो रहे हैं।

भाइयो, आज बहुत दिनों पर माता की याद आयी है। हम

लोग भले ही माता को भूल जांय पर माता सन्तान को नहीं भूलती है। हम भले ही कुपूत हो जांय पर माता कुमाता नहीं होती है। वह सदा सपूतों और कुपूतों को एक ही दृष्टि से देखती है। वह पक्षपात नहीं करती। अतएव आइये और श्रद्धा-भक्ति सहित कहिये—

"वीणा पुस्तक रंजित हस्ते,
भगवति भारति देवि नमस्ते।"

सज्जनो, सरस्वती सेवकों और साहित्य सेवियों का यह सुन्दर समारोह देख चित्त गद्‌गद् हो रहा है। जिनके उद्योग से यह अलभ्य लाभ हुआ है उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूं कि वह सदैव ही ऐसा दृश्य दिखाया करेंगे। पर एक प्रार्थना है कि अबके जैसी भूल हो गई, वैसी फिर कभी न हो। पर इसमें किसीका क्या दोष?

"अजस पिटारी ताहिकर गयी गिरा मति फेरि"

गिरा ने मन्थरा की मति फेरकर जैसे गड़बड़ कर दी थी, वैसे यहां भी उसने हमारी आपकी सबकी मति की गति फेर दी। बस आपने मुझ जैसे "विनोदी" को सभापति चुनडाला और मैंने भी मंजूर कर लिया। अब इस भयानक भूल का फालतू फल हमारे आपके सिवा और कौन भोगेगा? खैर आगे के लिये किसी मुहर्रमी को अभी से चुन रखिये जो चित्त-विनोद न कर चित्त को चोट पहुंचाकर लोटपोट कर दे।

बिहार की वर्तमान अवस्था अवलोकन कर जो अतीत का अनुमान करते हैं, वह बेतरह भूलते हैं। बिहार का प्राचीन गौरव सोने के अक्षरों में लिखने योग्य है। विदेह जनक का ब्रह्मज्ञान,

गौतमबुद्ध का निर्वाण, पाणिनि का व्याकरण, अशोक का धर्म्मा-चरण, कपिल का साङ्ख्य, गौतम का न्याय, वाचस्पति मिश्र का षड्दर्शनों पर भाष्य, मण्डन मिश्र का शंकराचार्य्य से शास्त्रार्थ और चाणक्य की नीति इसका पुष्ट प्रमाण है। इसके बाद प्राकृत भाषा की भी खासी उन्नति हुई। मागधी की महिमा कौन नहीं जानता ? पर मेरा सम्बन्ध तो हिन्दी से है। इस लिये अब देखना यह है कि बिहार ने हिन्दी के लिये क्या किया ? जहां तक मैंने देखा उससे तो निराश होने का कोई कारण नहीं दीखता। हमारा बिहार प्रान्त हिन्दी सेवा में किसी प्रान्त से किसी प्रकार कम नहीं है। यदि युक्त प्रान्त को अपने लल्लू लाल का अभिमान है तो बिहार को भी अपने सदल मिश्र का गर्व है। सदल मिश्र कविवर लल्लू लाल के समसामयिक और आरे के रहने वाले थे। लल्लू लाल ने "प्रेमसागर" लिख जिन दिनों वर्त्तमान हिन्दी की नींव डाली थी, उन्हीं दिनों हमारे सदलमिश्र ने भी "चन्द्रावती" लिख कर बिहार का गौरव बढ़ाया था। अभी तक इसके पढ़ने का सौभाग्य मैं प्राप्त नहीं कर सका, पर सुना है कि पुस्तक अच्छी और भाषा भी साफ है। इसके बाद भी हम देखते हैं कि बिहार हिन्दीसेवा से वंचित नहीं है। यहाँ के जमींदार और रईसों ने समय समय पर बिहार का गौरव बढ़ाने का उद्योग किया है। सबसे पहले डुमराँव के श्रीयुत महाराजकुमार शिव-प्रकाश सिंहजी का शुभ नाम याद आता है। इन्होंने तुलसीदास की "विनयपत्रिका" पर रामतत्वबोधिनी नाम की टीका लिखी है। इसके सिवा 'सत्संग विलास', 'लीलारसतरंगिणी', 'भागवततत्व-भास्कर', 'उपदेशप्रवाह' और "वेदस्तुति की टीका" इनकी रचना है।

[illegible]पुर निवासी बाबू हितनारायण सिंह जी की मृत्यु सं० १८६६ ई० में हुई है। यह बड़े स्वदेशप्रेमी थे। कविता भी करते थे। यह स्वदेशी वस्तु का व्यवहार अच्छा समझते थे। आपका उपदेश है कि—

"बनी यहां की वस्तु जो, ताकर करु सन्मान।
अपर देशकी वस्तुतें, होत यहां अति हान॥
कृषीकर्म्म वाणिज्य पुनि, शिल्प अधिक उर आन।
महराठिन की रीत पर, सजग होहु मतिमान॥"

इत्यादि।

ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी बात जाने दीजिये। बिहार के शूद्र भी सरस्वती माता की सेवा करते थे। छपरे के ठाकुर कवि इसके प्रमाण हैं। यह मधेसिया कान्दू थे। यह पढ़े लिखे तो साधारण ही थे, पर सत्संगी होने के कारण कविता अच्छी करते थे। इनका एक पद सुनिये। देखिये इसमें भक्ति कैसी कूट कूट कर भरी है, और भाषा भी कैसी भव्य है।

हरि मोहि संवरी सेवक कीजै।
पादोदक प्रहलाद दैन्य को निश्चर नफर करीजै।
गनिका अनुग अजामिल अनुचर गीध गुलाम गनीजै।
दास करो रविदास कबीर को सुपच्च पंगती लीजै॥
ठाकुर ठौर ठाढ़ होइबेको सदन सदन मोहि दीजै॥

मैथिल कोकिल विद्यापति ठाकुर को कौन नहीं जानता? बंगाली इन्हें बंगला का आदि कवि मानते हैं और इन्हें बंगाली बनानेके लिये सदा चेष्टा करते हैं। इनकी कविता मैथिल बोली में होने

पर भी हिन्दी की सम्पत्ति है, क्योंकि मैथिल हिन्दी भाषान्तर्गत एक बोली है।

"करतल कमल नैन ढर नीर।
न चेतय समरन कुन्तल चीर॥
तुअ पथ हेरि हेरि चित नहि थीर।
सुमरि पुरुब नेहा दगध शरीर॥
करि का माधव साधव प्रान।
विरहि युवति मांग दरसन दान॥
जल मध कमल गगन मध सूर।
आंतर चान कुमुद कत दूर॥
गगन गरज मेघ सिखर मयूर।
कत जन जानसि नेह कत दूर॥
भनइ विद्यापति विपरित मान।
राधा-वचन लजायल कान॥"

भला इसे कौन हिन्दी नहीं कहेगा?

आप यह न समझें कि केवल ब्रज भाषा की ही कविता बिहार में होती थी। खड़ी बोली के कवि भी यहां हुए हैं। यही नहीं, खड़ी बोली की कविता को खड़ा करने में बिहार ने पूरा उद्योग किया है। इसका श्रेय मुजफ्फरपुर के स्वर्गवासी बाबू अयोध्याप्रसाद जी खत्री को है। बाबू साहब खड़ी बोली की कविता के बड़े भारी हिमायती थे। आपने ही पहलेपहल खड़ी बोली के पद्यों का संग्रह सन् १८८८ ई० में किया था। इसका सम्पादन फ्रेडरिक पिनकौट

साहब ने किया और लंडन की डबल्यु० एच० एलेन कम्पनी ने इसे छापा था।

बिहार के खड़ी बोली के कवि की कविता की भी चाशनी देख लीजिये। मुजफ्फरपुर जिले के मानपुरा के बाबू लक्ष्मीप्रसाद सन् १८७६ ई० के 'विहार बन्धु' में भारत की दशा का वर्णन करते हैं।

"जहां मन्दिर थे खड़े वां हैं कांटे उपजे।
बस्तियां बस गयीं शृगाल खर औ शूकर से॥
यांके लोगों कि दशा कैसी थी क्या कोई कहे।
लेखनी का हिया फट जाय जो लिखने बैठे"॥
आठपख उनका असह दुख देख घटा रोती है।
सूर्य्य की तापग्रसित छिन्न छटा होती है।

पटनावासी बाबू महेश नारायण की कविता भी सन् १८७६ ई० के बिहारबन्धु में मिली है। यह कौन महेश नारायण हैं—Maker of modern Bihar या दूसरे—मालूम नहीं। *इनकी 'स्वप्न' नाम की कविता से कुछ अंश उद्धृत करता हूं।

"मुख मलीन मृगलोचन शुष्क
शशि की कला में बहार नहीं थी।
लब दबे जौवन उभरे
रति की छटा रलार (?) नहीं थी।
गरब, सहब, अफसोस, उम्मीद
प्रेमप्रकाश, भय चंचल चित्त

*हां, आप ही हैं। —सम्पादक।

थे यह सब रुख पर नुमायाँ उसके
कभी यह कभी वह कभी वह कभी यह
मुखचन्द्र निहार, हो यह विचार
कि प्रेम करूँ, दया दिखलाऊं ?"

यह पद्य कैसे हुए इसके बताने की अभी जरूरत नहीं। अभी तो यह दिखलाना है कि बिहार खड़ी बोली की कविताओंसे खाली नहीं है और वह कभी किसी बातमें पीछे नहीं रहा है।

मुंगेर के जान साहब John Christian भी हिन्दी में कविता करते थे। यह पादड़ी थे इससे इनकी कविता का विषय ईशामसीह ही था, पर कविता अच्छी होती थी। इनकी मृत्यु सन् १८८८ ई० में हुई थी। "मुक्तिमुक्तावली" नाम की पुस्तक लड़कपन में देखी थी उसकी एक पंक्ति अबतक याद है।

"मन मरन समय जब आवेगा ईसू पार लगावेगा।"

बिहार के पं० केशवराम भट्ट हिन्दी के अच्छे विद्वान हो गये हैं। इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें "हिन्दी व्याकरण" सबसे मुख्य है। वाजपेयीजी की हिन्दी कौमदी को छोड़ इससे अच्छा व्याकरण और देखने में न आया। इनकी भाषा शुद्ध और सरस होती थी। यह "बिहार बन्धु" पत्र और प्रेस के स्वामी थे। बिहार में इनसे हिन्दी का बड़ा प्रचार और उपकार हुआ है। "शमशादशौसन और "सज्जादसुम्बुल" नाम के दो नाटक भी इन्होंने लिखे हैं।

वर्त्तमान गिद्धौर महाराज के पूज्य पितृव्य स्वर्गीय० कु० बाबू गुरुप्रसाद सिंह जी भी हिन्दी के लेखक और कवि थे। "राजनीति रत्नमाला" "भारत संगीत" और 'चुटकुला' नाम की तीन

पुस्तकें इनकी लिखी हैं। 'चुटकुला' फुटकर पद्यों का संग्रह है। गंगाजी के सम्बन्ध में इनकी एक कुण्डलिया इस प्रकार है—

गंगाजी की विषमता लखि मो मन हरखात।
स्नानक पठवति स्वर्गको आपु निम्नगति जात॥
आप निम्नगति जानि ताहि गिरिशिखर पठावैं।
आप मकर आरूढ़ ताहि दै वृषभ चढ़ावैं॥
आप सलिल तनुधारि ताहि दै दिव्य जु अंगा।
जगत ईश करि ताहि शीस चढि विहरत गंगा॥

मेरे ग्राम मलेपुर के रईस वैकुण्ठवासी बाबू छत्रधारी सिंह जी भी गाने योग्य पद बनाते थे जो आज तक योंही पड़े हैं, छपे नहीं। इनके ज्येष्टपुत्र मेरे सहपाठी बाबू अयोध्या प्रसाद सिंह भी गद्य पद्य लिखा करते थे। शोक की बात है कि दो साल हुए इनका देहन्त हो गया। "जय जगदम्ब" नामकी पुस्तिका में इनके बनाये फुटकर गीतों का संग्रह है।

इसी प्रकार बिहार के बहुतेरे जमींदार हिन्दी की सेवा करते थे और कर रहे हैं। यदि खोज की जाय तो अभी और भी बहुत से लेखकों और सुकवियों का पता चल सकता है।

अन्य प्रन्तों के जिन विद्वानों ने बिहार में आकर हिन्दी का प्रचार किया और भाषाभण्डार भरा है उनका उल्लेख न किया जाय तो बड़ी भारी कृतघ्नता होगी। इनमें मुख्य पजनेश कवि, छोटूराम त्रिपाठी, अम्बिकादत्त व्यास, और रामगरीब चौबे हैं।

कुछ लोग समझते हैं कि पजनेस कवि छपरे के थे पर 'कविता कौमुदी' मिश्रबन्धु विनोद, और ग्रिअरसन साहब के The modern

Vernacular Literature of Hindustan, के अनुसार पज-र्जी पन्ने के, त्रिपाठी जी और श्याम जी बनारस के सिद्ध होते है। मि० काशीप्रसाद जायसवाल तो मिर्ज़ापुर के हैं ही।

अंगरेजों में ग्रिअरसन और ओलढम साहब हैं जिनका हिन्दी से सम्बन्ध है। ग्रिअरसन साहब ने तो हिन्दी का उपकार करते हुए अपकार ही किया है। इन्हींके समय में नागरी के बदले अदालतों में कैथी अक्षर हुए और आरम्भिक शिक्षाकी पुस्तकें कैथी में छपने लगीं। बिहार प्रान्त की भोजपुरी, मैथिली आदि बोलियों में पुस्तकें छपवाकर बिहारवासियों में इन्होंने फूट का बीज बो दिया, जिसका फल मैथिल सभा से हिन्दी का बहिष्कृत होना है। हमारे मैथिल भाई भ्रमवश देश की हानि कर रहे हैं। हमारा सानुरोध निवेदन है कि वह लोग जल्दी न करें। जो कुछ करें सोच समझ कर करें। धन्यवाद है ओलढम साहब को जिनकी कृपासे अदालत के कागज पत्र कैथी के बदले फिर नागरी में छपने लगे हैं।

बेली पोइट्री प्राइज फण्ड

बङ्गाल के छोटे लाट बेली साहब की यादगार में खैरे के राजा रामनारायण सिंह के रुपये से मुंगेर का "बेली पोइट्री प्राइज फण्ड" स्थापित हुआ है जिससे प्रति वर्ष निर्दिष्ट विषय पर सबसे अच्छी कविता करने वाले दो विद्यार्थियों को २५) रु० और १०) रु० पुरस्कार में मिलते है। सन १८९६ ई० में इसका प्रथम पुरस्कार पाने की प्रतिष्ठा मुझे भी प्राप्त हुई थी।

सभा-समितियां

सभा-समितियों से भी हमारा बिहार वञ्चित नहीं है। 'आरा नागरी प्रचारिणीसभा, लहेरियासराय हिन्दी सभा और भागलपुर

हिन्दी सभा' मन्द गति से अपना अपना कर्त्तव्य पालन कर रही है। भागलपुर की सभा ने गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्यों की परीक्षा जारी कर अच्छा काम किया है। इससे तुलसीदास जी की कविताओं का प्रचार होगा और लोग उन्हें पढ़ेंगे और पारङ्गत होंगे। आरे की सभा भी यथासाध्य हिन्दी प्रचार का उद्योग करती है। जरा और उत्साह दिखाया जाय तो अच्छा हो। दुःख की बात है कि बिहार की राजधानी पटने में हिन्दी की एक भी शक्तिशालिनी सभा नहीं। क्या पटने वाले यह अभाव दूर न करेंगे?

पुस्तकालय

बांकीपुर की खुदाबख्श-लाइब्रेरी सा एक भी हिन्दी पुस्तकालय बिहार में नहीं। यह बिहार के हिन्दुओं के लिये बिचारने की बात है। आंसू पोंछने के लिये आरा नागरी प्रचारिणी सभा का पुस्तकालय, लहेरिया सराय का पुस्तकालय, भागलपुर का पुस्तकालय, बांकीपुर का चैतन्य हिन्दी पुस्तकालय, पटने का बराहमिहिर पुस्तकालय, और गया का मन्नूलाल पुस्तकालय अवश्य हैं। सुना है मन्नूलाल पुस्तकालय में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों और नवीन पुस्तकों का अच्छा संग्रह है।

छापाखाना

बिहारबन्धु प्रेस और ब्रह्मचबोधोदय प्रेस बांकीपुर में पहले थे। यहीं हिन्दी की पुस्तकें छपती थीं। सन् १८८० के आसपास स्वर्गवासी म० कु० बाबू रामदीन सिंह जी ने खड्गविलास प्रेस खोला था जो प्रतिदिन उन्नति करता जाता है। इससे बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। क्षत्रियपत्रिकादि मासिक पत्रिकाएं

निकलीं जो अब बन्द हैं। साप्ताहिक शिक्षा आजकल निकल रही है। ग्रिअरसन साहब की मानस रामायण पहले पहल यहीं छपी थी। कहा जाता है कि यह तुलसीदासजी की हस्त लिखित प्रति से मिला कर छापी गई है। भारतेन्दु और प्रताप नारायण मिश्र के ग्रन्थों का स्वत्व इसीको प्राप्त है, पर प्रेस के मालिकों की ढील या उदासीनता के कारण इन पुस्तकों का जैसा चाहिये वैसा प्रचार नहीं हुआ। अब इधर ध्यान देने का समय आगया है।

भारतेन्दु ग्रन्थावली की तरह और ग्रन्थकारों के ग्रन्थों का शीघ्रही सस्ता संस्करण हो जाना चाहिये। खड्गविलास वालों को गुजरात की सस्तुसाहित्य प्रचारक मण्डली का अनुकरण करना चाहिये। यह मण्डली अच्छी अच्छी पुस्तकें छाप कर सस्ते दामों में बेचती है। इससे गुजराती साहित्यको बहुत लाभ पहुँचा है।

इसके बाद फिर धीरे धीरे बहुत से प्रेस खुलते जाते हैं। भागलपुर के बिहार एंजल प्रेस और मुजफ्फरपुर के रत्नाकर प्रेस ने हिन्दी की कुछ पुस्तकें बड़ी सफाई के साथ छापी हैं। हर तरह की छपाई का काम करने वाले प्रेस की अभीतक कमी है।

समाचार-पत्र

समाचारपत्रों की अवस्था सन्तोपजनक नहीं। बांकीपुर से निकलने वाला बिहार का क्यों हिन्दी भाषा का सबसे पुराना पत्र 'बिहार बन्धु' बन्द हो गया। यह बड़े खेद की बात है। इसके जिलाने का फिर उपाय होना चाहिये। इसी तरह चम्पारण की चम्पारण-चन्द्रिका, छपरे का सारण सरोज और नारद, पटने का खत्री-हितैषी, भारत-रत्न, हरिश्चन्द्रकला, क्षत्रिय पत्रिका और

हिन्दी बिहारी, भागलपुर का पीयूष–प्रवाह, श्री–कमला, आत्मविद्या और यंग बिहार, आरे का मनोरंजन, मुजफ्फरपुर का सत्ययुग, रांची का आर्य्यावर्त्त और नागरी प्रचारिणी पत्रिका, मोतिहारी की कुसुमांजली आदि पत्र और पत्रिकाएँ एक एक कर निकलीं और बन्द हो गयीं। यह बिहार के लिये बदनामी की बात है।

अब साप्ताहिक पत्रों में पाटलिपुत्र,+ तिरहुत समाचार, मिथिला-मिहिर और शिक्षा हैं। सर्च लाइट का हिन्दी क्रोड़ पत्र भी निकलता है पर इनमें 'पाटलिपुत्र' ने ही हथुआ महाराज का हो कर भी निर्भीकता के साथ राष्ट्रपक्ष का समर्थन किया और बिहार को जगाया है। शिक्षा तो विद्यार्थियों को बस शिक्षा ही देती है। मिथिला-मिहिर मिहर्बानी कर हिन्दी को अन्धकार में रख मैथिली पर ही प्रकाश डालता है।

मासिक पत्रिकामें बस 'लक्ष्मी' का नाम लेना अलम् है। बिहारमें दैनिक पत्र का अभाव बेतरह खटकता है।

धन्यवाद पं० जीवानन्द शर्म्मा को जिन्होंने इस अभाव को दूर करने के लिये प्रजाबन्धु नाम की लिमिटेड कम्पनी बनायी है और उसके चलाने का वह पूरा उद्योगकर रहे हैं। हिन्दी प्रेमी और देशानुरागी मात्र को इस देशहित कार्य्य में पण्डितजी की पूरी सहायता करनी चाहिये। इससे दैनिक पत्र और अच्छे प्रेस का अभाव मिट जायगा, ऐसी आशा है।※

नाटक–मण्डली

साहित्य की उन्नति और प्रचार के लिये नाटक मण्डलियों की भी आवश्यकता होती है। आनन्द की बात है, मुजफ्फर पुर, छपरे

+पाटलिपुत्र बन्द हो गया। ※प्रजाबन्धु कम्पनी टूट गई। सम्पादक।

और मोतीहारी में नाटक मण्डलियाँ हैं और शायद भागलपुर में भी है।

पाठ्य-पुस्तकें

सन् १८७५ ई० के बाद बिहार के स्कूलों में हिन्दी का प्रवेश हुआ। उस समय युक्त प्रान्तवालों की ही बनायी पुस्तकें स्कूलों में पढ़ायी जाती थीं। राजा शिवप्रसाद का "गुटका" यहां भी गटका जाता था। सन् १८७२ ई० के लगभग फैलन साहब बिहार प्रान्त के स्कूलों के इन्सपेक्टर हुए। इन्होंने बिहार में ही पाठ्य-पुस्तकें लिखवाने का प्रथम प्रयत्न किया और उसमें सफलता भी हुई। इनके बाद स्वर्गवासी भूदेव मुखर्जी इन्सपेक्टर हुए। इनकी सहायता से बहुत सी नयी नयी पुस्तकें लिखी गयीं और प्रकाशित हुईं। फिर तो खड्गविलास प्रेस से धड़ाधड़ पाठ्य पुस्तकें निकलने लगीं और निकल रही हैं। इधर मेकमिलन कम्पनी के सिवा ग्रन्थ-माला कार्य्यालय और 'पाटलिपुत्र के मनेजर ने भी पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित की हैं। अबतक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें अधिकांश रद्दी और भद्दी हैं। बिहार प्रान्त के सहज भाषादोष इनमें अधिकता से पाये जाते हैं। इनसे बड़ी हानि होती है। भूलभरी पुस्तकें पढ़कर लड़कों का भूल करना स्वाभाविक है। पीछे लाख समझाने पर भी वह दोष दूर नहीं होता है। एक बार एक लड़के ने लिखा "मुशलाधार वृष्टि होती थी। मैंने कहा, "मूसलधार कहो मुशलाधार नहीं।" उसने कहा मेरी पुस्तक में तो "मुशलाधार" ही लिखा है। यह कह उसने पुस्तक दिखा दी। उसका कहना ठीक निकला। मैंने लाख समझाया पर वह छपी पुस्तक के सामने मेरी बात क्यों मानने लगा? ऐसी ऐसी बहुत

सी भूलें दिखायी जा सकती है ! इसलिये पुस्तक-प्रकाशकों से मेरा अनुरोध है कि वह चढ़ाऊपरी कर शिक्षा का उद्देश्य नष्ट न करें। यदि पाठ्यपुस्तकें शुद्ध छपें तो "बिहारी हिन्दी" का नाम ही न रहे। Baboo's English की बहन "बिहारी हिन्दी" है।

अदालती भाषा

बिहार की अदालती भाषा और लिपि दोनों ही विचित्र हैं। अदालत में तो ऐसी भाषा और लिपि वर्ती जानी चाहिये जो सर्व्व साधारण की समझ में आवे। गँवार देहाती भी बिना किसीकी मदद के समझ ले पर यहां मामला ही दूसरा है। देहातियों की कौन कहे अदालती कागजों के पढ़नेमें बड़े बड़े शहरियों की भी नानी मर जाती है ? अक्षर कैथी और भाषा फारसी—एक तो गिलोय दूसर नीम चढ़ी। फारसीजबान की शिकायत की नीयत से मैं नहीं कह रहा हूँ बल्कि इसलिये कह रहा हूं जिसमें अदालती कागज पत्र समझने में देहात के हिन्दू मुसलमानों को दूसरे का मुंह न देखना पड़े। अदालत में मुन्शी और मौलवी ही नहीं गरीब गंवार भी जाते हैं जो इस्तगासा, दरोगहलफी, जायदाद मुस्तरका, ज़रसमन, जायदाद मनकूला और गैर मनकूला का नाम सुनते ही डर जाते हैं। मतलब समझना तो दूर रहा इन्हें वह अच्छी तरह दुहरा भी नहीं सकते। एक भले आदमी को मैंने सफीया को 'तपसिया' कहते सुना है। गरीबों का बड़ा उपकार हो यदि कैथी के बदले नागरी और फारसी के बदले सीधी सादी बोली का व्यवहार अदालत में होने लगे।

अनुकरणीय दान

भागलपुर के श्रीयुत पं० भगवान प्रसाद जी चौबे ने एक

बहुमूल्य भवन बनवा कर हिन्दी सभा और पुस्तकालय के लिये हिन्दी माता के नाम पर दान कर दे दिया है। आशा है, सर्वत्र इसका अनुकरण होगा।

लेखक और कवि

लेखक और कवियों की संख्या भी उंगलियों पर गिनने के योग्य है। अंगरेजी के विद्वान् तो हिन्दी को Stupid समझते और संस्कृत के पण्डित भाखा कहते और घृणा करते हैं। फिर लेखक आवें कहां से? पर हवा बदली है। श्रीमान् गान्धी जी के प्रभाव से हमारे वकील भाइयों का ध्यान हिन्दी की ओर झुका है। आशा है, और लोग भी शीघ्र ही राह पर आवेंगे। यह आनन्द की बात है, कि दरभङ्गे की बिहार-प्रान्तीय परिषद में हिन्दी को प्रधान स्थान मिला था। इसके लिये प्रशंसा करनी चाहिये, परिषद् की अभ्यर्थना-समिति के अध्यक्ष पं० भुवनेश्वर मिश्र की, जिन्होंने अपना भाषण हिन्दी में लिखा और पढ़ा था। यदि इसी प्रकार प्रत्येक परिषदमें हिन्दी को स्थान मिले तो देश का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। बिहारी छात्रसम्मेलन भी श्रीमान् गान्धी जी की आज्ञा का पालन कर हिन्दी को ही अपने सम्मेलन में स्थान दिया करे तो बड़ा उपकार हो। अंगरेजी-पढ़ों में बाबू व्रजकिशोरप्रसाद, राजेन्द्रप्रसाद, पांड़े जगन्नाथप्रसाद*, बदरीनाथ बर्म्मा, गोकुलानन्द प्रसाद वर्म्मा, पं० राधाकृष्ण झा, गिरीन्द्रमोहन मिश्र, भुवनेश्वरी मिश्र, हरनन्दन पांड़े*, लक्ष्मीप्रसाद, व्रजनन्दन सहाय, गयाप्रसाद सिंह, कालिका प्रसाद, सुपार्श्वदास आदि हिन्दी-भाषा का आदर करते और उसमें लिखते पढ़ते हैं। बाबू रघुवीर नारायण भी Golden

* ये महानुभाव बिहारियों को रुला कर संसार से चल बसे!—सम्पादक।

Ganga के साथ **"सुन्दर सुभूमि भैयाभारत के देसवा से मोरे प्रान बसे हिम खोह रे बटोहिया"** भी कह रहे हैं। इसी प्रकार संस्कृत के विद्वानों में पं० रामावतार शर्म्मा, अक्षयवट मिश्र, शिवप्रसाद पाण्डेय, जीवानन्द शर्म्मा, सकलनारायण शर्म्मा हिन्दी लिखने में अपना गौरव समझते हैं।

बिहार के वर्त्तमान बयोवृद्ध हिन्दी के सुलेखकों और सुकवियों में पं० विजयानन्द त्रिपाठी, पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र बाबू शिवनन्दन सहाय, बाबू यशोदानन्द अखौरी आदि विशेष उल्लेख्य हैं। बाबू शिवनन्दन सहाय ने भारतेन्दु और तुलसीदास के बृहज्जीवनचरित्र लिखकर बिहार का गौरव बढ़ा दिया है।

मुसलमान

बिहार की एक विचित्रता यह भी है, कि यहां के मुसलमान भी हिन्दी से प्रेम रखते और हिन्दी लिखते पढ़ते हैं। इनमें सब से पहले मिस्टर हसनइमाम का नाम याद आता है। यह हिन्दी के हिमायती हैं। बेतिया के पीरमुहम्मद मूनिस और मुजफ्फरपुर के मुहम्मद लतीफ हुसैन हिन्दी के प्रेमी ही नहीं लेखक भी हैं। सलेपुर के खैरुल्ला मियाँ हिन्दी में पद्य बनाते और समस्या-पूर्ति करते हैं।

जिन साहित्यसेवियों के नाम छूट गये हों उनसे क्षमा चाहता हूं।

भाषादोष

यह सब होनेपर भी लोग बिहारियों पर यह दोष लगाते हैं और ठीक लगाते हैं, कि बिहार वाले हिन्दी के लिङ्गप्रकरण और ने विभक्ति पर बड़ा अन्याचार करते और उच्चारण भी ऊटपटांग करते हैं। पर मेरी समझ से इन दोषों के दोषी प्राय. सब ही प्रान्तवाले हैं। मैं अपने "हिन्दी लिङ्ग विचार" नामक लेख में कह चुका हूं, कि

अगर बिहार में 'हाथी बिहार करती है' तो पञ्जाब में 'तारें आती हैं' और युक्त प्रान्त के काशी–प्रयाग में लोग 'अच्छी शिकारें मारकर लम्बी सलामें' करते हैं। अगर बिहार में 'दही खट्टी होती है' तो मारवाड़ में 'बुखार चढ़ती और जनेऊ उतरती है'। बिहारमें 'हवा चलता है' तो झालड़ापाटन में 'नाक कटता' है और मुरादाबाद में 'गोलमाल मचनी' है। अगर पटने में 'वाजाड़ के कड़ैले की तड़काड़ी से पेट में दड़द होता है' तो पञ्जाब में 'मन्द्र के अन्द्र बन्द्र बैठता है' और आगरे जिले में 'बुज्ज पर फस्स बिछा उद्द के खेत में बद्द को मिच्च खिलाते' है। अगर तिरहुत में "सरक पर कोरा मार कर घोरा दौराया जाता है' तो बीकानेर में 'अपने मतबल से चार को कपड़ते हैं,' फिर बिहार ही क्यों बदनाम है?

बिहार में 'आप कहे' प्रयोग होता है, तो पञ्जाब में 'आपने कहा हुआ' प्रयोग होता है। यानी बिहार में 'ने'की न्यूनता है तो पञ्जाब में प्रचुरता। बिहार में र का ड़ और ड़ का र हो जाता है, तो ब्रजभाषा में र का बिलकुल लोप ही हो जाता है। इसलिये बिहारियों को सन्तोष करना चाहिये। पर इसका यह अभिप्राय नहीं, कि मैं इन दोषों का समर्थन करता हूँ। यह बड़े भारी दोष हैं। इनसे जितनी जल्दी आप मुक्त हो जायँ उतना ही अच्छा है। तनिक ध्यान देने से ही आप शुद्ध प्रयोग कर सकते हैं। जो इस बात का ध्यान रखते हैं, उनसे ऐसी भूल बहुत कम होती है।

भाइयो, बिहार ने हिन्दी-भाषा के लिये क्या किया और क्या कर रहा है, यही अब तक मैंने दिखाया है। हिन्दी-साहित्य के सम्बन्ध में अभीतक कुछ नहीं कहा और न कहने की आवश्यकता ही है। क्योंकि हिन्दी–साहित्य का महत्व अब सब लोग जान चुके हैं और हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान चुके हैं। अब फिर पिसे को पीसने की क्या जरूरत है?

हां, इतना अवश्य कहूंगा, कहूंगा क्या 'सिंहावलोकन' नामक पुस्तिका में कह चुका हूं कि ईर्षा, द्वेष, हठ, दुराग्रह और पक्षपात के कारण लोग अपनी अपनी खिचड़ी अलग पका रहे हैं। कोई तीर घाट जाता है, तो कोई मीर घाट। कोई व्याकरण का वहिष्कार करता है, तो कोई कोष का कायाकल्प करता है। कोई हिन्दी की चिन्दी निकालता है, तो कोई काव्य-कलेवर को कलुषित करता है। कोई वर्ण-विन्यास का विपर्य्यय करता है, तो कोई शैली का सत्यानाश करता है। उल्था करने में भी उलट-पलट का चर्खा चलता है। बङ्गला की बू, मराठी की महक और गुजराती की गन्ध से हिन्दी का होश-हवास गुम है। अंगरेजी की आँधी ने तो और भी आफत ढायी है। मुहावरों का मूड़ इस तरह मूड़ा जाता है कि उन्हें मुँह दिखाने का मौका ही नहीं है। नाटक का फाटक बन्द है, पर उपन्यास का उपद्रव बढ़ रहा है। कोई हिन्दी में बिन्दी लगाता है तो कोई विभक्ति का विच्छेद करता है। कोई खड़ी बोली खड़ी करता है और कोई ब्रजभाषा का नामोनिशान मिटाने का सामान जी जान से करता है। कोई संस्कृत के शब्दों की सरिता बहाता है और कोई ठेठ हिन्दी का ठाट बनाता है। मतलब यह कि सबही अपनी अपनी धुन में लगे हैं। कोई किसी की नहीं सुनता। नाई की बरात में सबही ठाकुर हो रहे हैं।"

ऐसी अवस्था में कहिये मैं किसे लूं और किसे छोडूं? सबही आवश्यक विषय हैं और सब पर ही बहुत कुछ कहा सुना जा सकता है। पर समय स्वल्प और बातें बहुत हैं। इस लिये इन विषयों को पटने में होनेवाले सम्मेलन के लिये रख छोड़ता हूं।

एक बात और निवेदन कर मैं अपना भाषण समाप्त करूंगा।

बिहार मेरी पितृभूमि नहीं मातृभूमि है, जन्मभूमि नहीं कर्म्म भूमि है। इसके अन्नजल और वायु से मेरा यह नश्वर शरीर

शोभायमान है। यहीं मेरी शिक्षा दीक्षा परीक्षा हुई है। इसलिये मैं बिहारी न होकर भी बिहारी हूं और इसके द्वार का भिखारी हूं। यह मेरी जननी की जन्मभूमि है, इसलिये इसकी सेवा करना अपना कर्म्म और धर्म्म समझता हूं। आज आप मुझे सभापति रूप से नहीं, सभासद रूपसे बुलाते तो मुझे अधिक आनन्द होता। आपने आज मेरा जो कुछ सम्मान और स्वागत किया है, वह मेरा नहीं सरस्वती-सेवक का किया है। जो हो, आपकी कृपा और दया के लिये आप को बारंबार धन्यवाद देता हूं और हृदय से कृतज्ञता प्रकाश करता हूं। परमात्मा से प्रार्थना है, कि आप सदैव सरस्वती-सेवकों और साहित्य-सेवियों का सम्मान और स्वागत किया करें।

प्यारे नवयुवको, कुछ तुम से भी हृदय की बातें कहनी हैं। मुझे तुम्हारा ही भरोसा है और तुम से ही मेरी अपील है। अब बिहार-भूमि की, भारत-भूमि की, मातृभाषा राष्ट्रभाषा हिन्दी की लज्जा तुम्हारे हाथ है। तुम चाहो तो शीघ्र इसका दुःख दूर हो सकता है। देखो कैसी करुणाभरी दृष्टि से माता तुम्हारी ओर देख रही है! क्या इसकी सहायता न करोगे? इसी तरह दीन हीन तनक्षीण मन-मलीन रहने दोगे? इसे सुखी करना क्या तुम्हारा धर्म्म नहीं है? तुम क्या अपने धर्म्म ओर कर्त्तव्य का पालन न करोगे? नहीं! ऐसा मत करो! उठो, कमर कसो, माता के उद्धार का बीड़ा उठाओ। तन मन धन जन से माता की सेवा करो। अगर उसकी सेवा में प्राण भी जायँ तो उसकी परवा न करो। याद रखो! तुम किसी से किसी बात में कमजोर नहीं हो। लेकिन न जाने क्यों तुम अपने को कमजोर समझ रहे हो। यह तुम्हारी भूल है। सिंह होकर शृगाल मत बनो। देखो, सिंह को जंगल का राजा किसने बनाया। उसके लिये कभी दरबार नहीं हुआ, पर वह मृगराज कहलाता है। सिंह अपने बाहुबल से

मृगेन्द्र बना है। इसी तरह तुम भी अपने बाहुबल से माता के सच्चे सुपुत्र बनो और माता का भाषाभाण्डार ज्ञान-विज्ञान से भरो। क्या करना है वह भी सुन रखो—

(१) तुम ने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है या करोगे उसे मातृ-भाषा द्वारा अपने देशवासियों को बाँट दो। जहां जो अच्छी बातें मिलें उन्हें अपनी भाषा में ले आओ। जापानी लोग अंगरेजी पढ़ते हैं और उसमें जो कुछ काम की चीज पाते हैं उसे जापानी भाषा में उल्था कर लेते हैं। इससे जापानी-साहित्य दिन दिन उन्नति करता जाता है। बङ्गाली, गुजराती और मरहटों ने भी यही करके अपने साहित्य की श्रीवृद्धि की है और कर रहे हैं। तुम भी वही करो।

(२) हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये स्थान स्थान पर पुस्तकालय और वाचनालय खुलवाओ। बिहार में इसका बड़ा अभाव है।

(३) जिस तरह कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने बङ्गला, हिन्दी आदि देशीभाषाओं में एम० ए० परीक्षा का प्रबन्ध किया है, उसी प्रकार पटना-विश्वविद्यालय में हिन्दी को स्थान दिलाओ। कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइसचांसलर कलकत्ता हाईकोर्ट के जज सर आशुतोष मुखर्जी सरस्वती भी चाहते हैं कि भारत की सब युनिवर्सिटियों में एम०ए० की परीक्षा देशी भाषाओं में हो। हबड़ा साहित्यसम्मेलन के सभापति हो कर आपने अपने भाषण में कहा था—"बम्बई, मद्राज, पञ्जाब, इलाहाबाद प्रभृत्ति स्थानों के विश्वविद्यालयों को देशी भाषा में एम०ए० की परीक्षा चलानी होगी। केवल बङ्गाल में चलाने से Reciprocal पारस्परिक फल की सम्भावना बहुत थोड़ी है।" इसलिये पूरा प्रयत्न करो जिसमें पटना-विश्वविद्यालय की एम०ए० परीक्षा में हिन्दी को स्थान मिले। इसके लिये उद्योग करना आवश्यक है।

(४) चौथा काम अनिवार्य्य शुल्क रहित प्रारम्भिक शिक्षा-बिल को कार्य्य में परिणत करना है। इसके लिये पाठशाला स्थापित करना और नागरी अक्षरों में पुस्तकें छपवानी चाहिये।

(५) हिन्दी लिखने पढ़ने और बोलने का अभ्यास सब को कर लेना चाहिये जिस में Reform (सुधार) सम्बन्धी सब बातें अंगरेजी न जानने वाले अपने भाइयों को अच्छी तरह समझा सको। देशहित के विचार से भी हिन्दी का प्रचार करना आवश्यक है।

(६) अदालतों में नागरी-अक्षरों और हिन्दी-भाषा को जारी कराओ।

(७) जमींदारी कागज-पत्र कैथी अक्षरों के बदले नागरी अक्षरों में लिखवाओ। कैथी अक्षरोंके पढ़ने में बड़ी तकलीफ होती है और अकसर अर्थका अनर्थ हो जाता है।

(८) प्रान्तीय परिषदों और छात्रसम्मेलनों में देशी भाषा का व्यवहार कराना भी आप ही लोगों का काम है।

(९) हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में स्वयं सम्मिलित हो और दूसरों को उत्साहित कर सम्मिलित कराओ। संस्कृत की परीक्षाओं में हिन्दी नहीं पढ़ायी जाती। इसलिये संस्कृत के पण्डित हिन्दी से कोरे रह जाते हैं। इसलिये संस्कृत-परीक्षाओं में हिन्दी को प्रविष्ट कराना चाहिये।

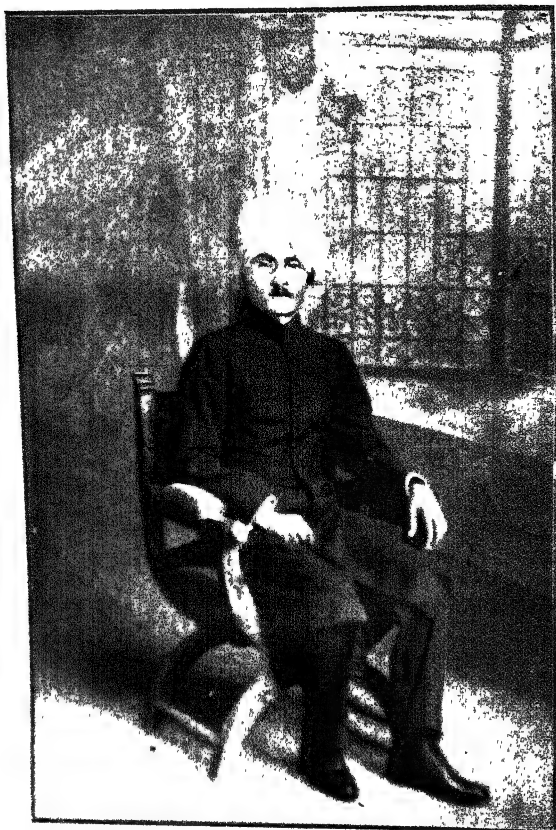
यह सब कोई असम्भव काम नहीं हैं। यदि हों भी तो पुरुषार्थ से उन्हें सम्भव बना सकते हो। जिस देश के साहित्य में अर्जुन के पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने का वर्णन है, जिस देश के साहित्य में प्रह्लाद के सामने खम्बे से नृसिंह भगवान का आविर्भूत होना लिखा है, जिस देश के साहित्य में हनुमानजी के समुद्र लांघ जाने की कथा है, उस देश के निवासियों के लिये असम्भव या असाध्य कुछ

नहीं हैं। इसलिये उत्साह के साथ उठो और हिन्दी-माता का हित-साधन करो। आओ आज माता के सामने हम लोग प्रतिज्ञा करें-

भये उपस्थित आज यहां पै, जो सब भाई।
करें प्रतिज्ञा अटल, यही निज भुजा उठाई।
हिन्दी में हम लिखें पढ़ें, हिन्दी ही बोलें।
नगर नगर में हिन्दी के, विद्यालय खोलें।
हिन्दी के हित साधन में, नित ही चित दैहें।
अंगरेजी को भूलि सदा, हिन्दी गुन गैहें।
यह पन पूरो करे सदा, माधव मंगल मय।
हमहुं कहें हिन्दी जय हिन्दी जय हिन्दी जय॥

इतिशुभम्।





राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह एम. ए.

द्वितीय

बिहार-प्रादेशिक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

एम. ए. का

भाषण

द्वितीय

बिहार-प्रादेशिक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

एम. ए. का

भाषण

श्री:

स्वागत-कारिणी-समितिके सभापतिमहोदय तथा अन्यान्य समुपस्थित सज्जनसमूह !

आज मेरे आश्चर्य्य की सीमा नहीं रही। मेरी समझ में नहीं आता, कि इस प्रान्त में इतने बड़े बड़े साहित्यमहारथियों के होते हुए भी आपने इस विराट् रथ के संचालन का भार उन हाथों में क्यों रखा, जिन्हों ने आज तक कभी बागडोर थामना सीखा ही नहीं। सारथी बनने की आशा मेरे मस्तिष्क में कभी आई न थी; और मैं कभी का भाग खड़ा हुआ रहता, यदि आप की अनुकम्पा की अनुकूल वायु, आपकी सहानुभूति के अनुभवी हाथ, मेरे सामने के कर्त्तव्य-पथ से कांटों को नहीं चुन देते। आपकी सहृदय उदारता इस रथ की धुरी है, इसी के बल पर यह रथ-चक्र आप से आप चल जायगा, मुझे चलाने की आवश्यकता नहीं।

मातृमन्दिर में आसन पाने की योग्यता उन्हीं को है, जिन्हों ने स्वार्थ की चिताभस्म रमा कर, त्याग का मुकुट सरपर पहन कर मातृभाषा की निरन्तर अर्चना की हो—मैं तो अभी पूजा की रीति से भी परिचित नहीं—पुजारी बन कर इस मन्दिर में आना मेरी धृष्टता नहीं तो क्या है?

कालेज छोड़े मुझे अभी कुल पांच वर्ष हुए हैं। ज़मींदारी के झंझट झमेलों में रह कर हिन्दी की सेवा करने का अवसर मुझे बहुत कम मिला है। अभी तो मैं हिन्दी लिखना सीख रहा हूँ। अभी मेरी भाषा की शिशुता नहीं गई, व्याकरण का समुचित बोध नहीं हुआ, अभी मेरे विचार दृढ़ नहीं हुए, लिखने

की शैली स्थिर नहीं हुई और आज आप मुझे इस आसन पर बैठा कर हिन्दी साहित्य के सहस्र प्रश्नों पर बिचार करने को कहते हैं। अब आपही कहें, मेरे "तड़पनेका तमाशा" देख कर आपको क्या लाभ होगा ? आप मुझे भलीभांति जानते हैं, मेरी त्रुटियों से पूरे परिचित हैं, तथापि आपने मुझे इस पदपर निमंत्रित कर मेरा जो स्वागत और समादर किया, वह आपकी महत्ता है मेरी योग्यता नहीं। आज आपने जिस आशातीत सम्मान का सेहरा मेरे सर पर बांधा है, उसके लिये मैं सहस्र धन्यवाद देता हूं। इस समय मेरे हृदय के भीतर जो श्रद्धा और भक्ति की मन्दाकिनी उमड़ी है, उसे प्रकट करने की क्षमता मेरी लेखनी में नहीं।

चम्पारण की भूमि पवित्र भूमि है। यहां एक से एक दानवीर राजा हो गये हैं, जिनकी कीर्त्ति-लतिका अभी तक हरी है। आज भारत के नवीन दधीचि महात्मा गांधी के चरण-स्पर्श से इस भूमि की एक एक कण पुलकित है। बिहार ने यहीं पर अपनी लुप्तप्राय चेतना पाई, यहीं पर हमारा सुप्रभात-नवीन जागरण हुआ है। महात्मा गांधी ने इस प्रान्त में प्रथम-प्रथम यहीं आकर निष्काम धर्म्म की शिक्षा दी। उस गृहस्थ सन्यासी विदेह की तपोभूमि-कर्म्मक्षेत्र यही है। यहीं रह कर उन्हों ने बिहार को त्याग का अमोघ मन्त्र सिखलाया, हमारे नवयुवकों को उनके आत्मिक बल का पता बताया। यहां आकर किसके प्राणों में सजीवता की बिजली नहीं दौड़ती ? आज यह हमारा नया तीर्थ है, हमारी परमपुनीत पुण्यभूमि है। मैं भी इसे सादर प्रणाम करता हूं।

सज्जनो! मैं आपलोगों को फिर अपना हार्दिक धन्यवाद देकर आपकी मनोयोगिता की भिक्षा चाहता हूं। अस्तु।

"अन्धकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है।
है वह मुर्दा देश, जहां साहित्य नहीं है"॥

सचमुच जिस जाति का साहित्य नहीं, वह जाति कोई जाति नहीं। आज जितनी जातियां उन्नति के उच्च शिखर पर आसीन हैं, उन सब की उन्नति का एकमात्र कारण उन जातियों का उन्नत सजीव तथा महत्वपूर्ण साहित्य ही है। जिस समय आर्य्यभूमि-इस देवभूमि भारत-में आर्य्य भाषा-देव भाषा-का सम्मान था, उस समय मर्त्यलोक को कौन पूछे, नन्दनकानन भी हमारी कीर्त्ति लतिका से सुरभित था। जिस समय हमने उस देवभाषा का अपमान किया उसके गुणों का समादर करना छोड़ा, उसी समय से हमारा अपमान आरम्भ हुआ, हमारी अवनति का द्वार खुल गया। संस्कृत के प्रति हमारे भावों के साथ समय प्रवाह ने पलटा खाया और संस्कृत प्रकृति से निकली हुई प्राकृतभाषा का दौरदौरा हुआ। हिमालय की चोटी से चली हुई तीव्र धारा की तरह प्राकृत भागीरथी अपनी तरङ्गों को उछालती हुई दौड़ चली। देखते देखते प्राकृत राष्ट्रभाषा के प्रतिष्ठित पदपर आसीन हो गई। उसी समय हमारे धर्म और समाज में भी एक विराट परिवर्तन हुआ। सनातन धर्म के स्थान पर बौद्ध धर्म की विजय दुन्दुभी बज उठी। जिन सनातन धर्म के प्राणों के सहारे संस्कृत की तूती बोल रही थी, उनकी सजीवता बौद्ध धर्म के प्राणों में चली गई। प्राकृत के दिन पलटे। संस्कृत भाषा के सीमन्त का सिन्दूर धुल गया, बौद्धों के पाणि-ग्रहण

करने से प्राकृत सोहागिन बनी। बौद्ध धर्म ने जनता ही में अपना दबदबा नहीं फैलाया—राजसिंहासनों पर भी बौद्ध धर्म के मुकुट रखे गये। देखते देखते बौद्धों की प्यारी प्राकृत भाषा राजभाषा और धर्मभाषा बन कर समग्र देश के भाल की बिन्दी हो गई! फिर क्या था? समग्र भारत-वर्ष में बौद्धधर्म और प्राकृत भाषा फैल गई। इसी समय जैन धर्म का भी उद्‌गम हुआ; लेकिन इस धर्म के मानने वाले भी, प्राकृत के ही प्रेमी निकले।

इस संसार में एकसे दिन किसके रहे? किसी का राज्य अटल नहीं रहा। प्राकृत के भी दिन बीते। राष्ट्रविप्लव के विराट रूप ने प्राकृत का भी अपभ्रंश करना आरम्भ किया और हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी उस प्राकृत अपभ्रंश-मिश्रित भाषा के गर्भ में आई। हिन्दी के आदि कवि चन्दबरदाई ने पृथ्वीराजरासो के 'एकसरेज़' से उसकी झलक दिखाई। हिन्दी के भक्त बढ़ने लगे। यथा समय संस्कार भी होते गये। अरब और पारस के रंगीन घाघरे इस किशोरी के अंगों की सुषमा हो चले। मोहन के प्रेमियों ने इस मोहनी हिन्दी को ब्रज की पवित्र भूमि में ला रखा। वहीं ब्रजभाषा के नाम से सम्बोधित होने लगी। सूर, तुलसी, बिहारी, केशव प्रभृति साहित्य सूत्रधारों ने प्राकृत के सुरम्य दृश्य पर पर्दा डाल दिया और साहित्य रङ्गमंच पर युवती हिन्दी को ला खड़ा किया। कुछ ही दिनों में हिन्दी ने ब्रज की बोली से संसार को स्तब्ध कर डाला। शृंगाररस में विभोर इस तरुणी की भावभङ्गी जनता की आँखों पर नाच उठी। लोग ब्रज भाषा के हाथों बेमोल बिक गये। कुछ दिनों तक यही धांधली मची रही। अलौकिक माधुर्यमयी ब्रजभाषा का पद्य-

साहित्य दिन दूना रात चौगुना बढ़ता चला गया। एक से एक अलोक-सामान्य प्रतिभाशाली कवि मानव-हृदय के निगूढ़ रहस्यों को सरस रचना द्वारा लोकलोचनों के सम्मुख उज्वल चित्रों के समान प्रकट करते रहे। इसी से हमारी हिन्दी की काव्यसम्पत्ति परम ऐश्वर्यशालिनी है। सदियों बाद पं० सदल जी मिश्र और कविवर लल्लू जी लालने लोगों को एक नये ही क्षेत्र का दर्शन कराया। काव्यानुशीलन में आकण्ठ मग्न कवियों और कविता-प्रेमियों को पद्य की अनन्य सेवा और एकाङ्गी भक्ति की ओर से फेर कर गद्य साहित्य के निर्माण की उपयोगिता एवं आवश्यकता दिखलाई। हम बिहारियों के लिये यह गौरव की बात है कि हिन्दी के सर्वप्रथम गद्य लेखक हमारे ही प्रान्त के निवासी थे, यद्यपि अभाग्यवश उनकी रचना लल्लू जी लाल के प्रेमसागर के बहुत बाद छपी और वैसी प्रचलित न हो सकी; पर हिन्दी का इतिहास उनके पक्ष में न्याय करने को तैयार है।

तदनन्तर राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ये दो ज्योतिष्मान् नक्षत्र साहित्य-गगन में उदित हुए। इनकी अलौकिक प्रभा और सदुद्योगका ऐसा प्रकाश हमारे साहित्य के जीवन पर पड़ा, कि जिससे ब्रजभाषा की संकीर्णता हटी और राष्ट्रभाषा हिन्दी की महाप्रणता झलकने लगी। ब्रजभाषा कभी समग्र भारत की बोली नहीं थी और सभी प्रान्तों के निवासी ब्रजभाषा में सपाटे के साथ कलम नहीं दौड़ा सकते थे। जिस समय साहित्य के रङ्गमञ्च पर ब्रजभाषा की विजय वैजयन्ती फहरा रही थी, उस समय भी भारत के अधिकांश हिस्से में उस बोली के बोलने वाले नहीं थे। भारत के एक तृतीयांश में भी वर्त्तमान हिन्दी के द्वारा जितनी सुविधा के साथ काम चल सकता था, उतनी सुविधा के साथ और किसी

भाषा द्वारा काम चलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। आधुनिक हिन्दी में आज भारतवासी जिस सुविधा के साथ अपना काम चला सकते हैं, सम्भव नहीं कि उस सुविधा के साथ ये किसी दूसरी भाषा द्वारा अपना काम चला सकते। ऐसी दशा में आधुनिक हिन्दी के जन्म दाता भारत-भूषण भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने जिस दूरदर्शिता और महाप्राणता से काम लिया है, उसकी प्रशंसा करना मेरी क्षमता के अतीत है। आज उसी अमरबेलि को हरी भरी रखने के लिये-पल्लवित पुष्पित तथा फल समन्वित करने के लिये हमारा भगीरथ प्रयत्न है—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रान्तीय सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा प्रभृति की प्राण-प्रतिष्ठा है।

सज्जनो ! भाषा और राष्ट्र में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। राष्ट्रीय जगत में जो खलबली मच रही है, इसे आप भली भाँति जानते हैं। यूरोप में जो प्रलय-ताण्डव मच चुका, उसका धक्का यहां तक पहुंच चुका है। तोपों की आवाज़ यहां तक घहरा गई। हम सब स्वभाव से निरीह हैं, हमारी नींद बड़ी गहरी है—मानो, हमारी रात का प्रभात नहीं, लेकिन आज न जाने कहां से ठोकरों ने आ आ कर हमारी सुपुप्त चेतना को जगा डाला-हमारी हृदय-तन्त्री को भी न जाने किसने अपनी ओजस्विनी उँगलियों से बेतरह छेड़ डाला। हम अब देखते हैं—समझते हैं। तीन तीन साम्राज्य बात की बात में धूल में मिल गये। अन्याय, अत्याचार अथवा अहंकार अब एक दम टिक नहीं सकते। दुर्बल और आर्त्त की आह में वह शक्ति भरी है, जो शत्-सहस्र कैसर-केशरी की धज्जियां उड़ा दे।

आज नया जागरण है—नवीन स्पन्दन है। आकाश से बदली

फट चली। किरणें छिटकी हैं—हवा चल रही है। ज्वार निकला जा रहा है, जिसे चलना है, अपनी नौका खोल दे, उस विराट अनन्त की ओर, उस स्वाधीन दिगन्त की ओर। यह धारा पलट नहीं सकती, यह हवा बदल नहीं सकती। अब आंख मांजने से क्या फल है? नौका पर पाल उठा दो, रोकने की क्षमता किसी में नहीं। तीर का बन्धन आप से आप खुल जायगा और नौका तीर की तरह बह चलेगी। यदि खैंचातानी रोक थाम हुई, तो फिर यह प्रलयिनी धारा चट्टानों की चोट से नौका की भुस्सियाँ उड़ा देगी। समग्र जीवन की बोझाई पसीने की कमाई न जाने कहां विलीन हो जायगी।

सज्जनो! आपका कहना ठीक है कि साहित्य सम्मेलन में इन बातों को उधेड़ना ठीक नहीं। लेकिन आप विचार करें, मेरा दोष क्या है। इन तरङ्गों का आघात यहां तक पहुँच चुका। मैं उसे रोक नहीं सकता, मेरी क्षमता नहीं। हिन्दी-साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। दस वर्ष पहले इसकी अवस्था कुछ और थी, आज कुछ और है। संसार ही परिवर्त्तनशील है-फिर साहित्य क्यों न हो? न जाने यह कैसा जीवन्त स्फुरण है—कहां से आया है, जिसने हमारे जीवन को, आचार विचार को, साहित्य को, सबको अपने रङ्ग से रंग डाला। अब कालिन्दी-कूल की लीला थमचली। कदम्ब की छाया में अब वह माया नहीं रही। कृष्ण की वंशी में अब वह शक्ति नहीं रही। अब गोपियों का विराग—सोहाग, उनका विरह-मिलन, उनका आनन्द-विषाद, ये हमारे चित्त को लुभाते नहीं, कविता अब वह गान गाती नहीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय तक सब लोग उसी रस में विभोर थे; लेकिन उनके बाद ही धारा जो पलटी, वह फिर बदली नहीं। अब तो

किसी में क्षमता नहीं रही, कि इस धारा को पलट दे। पुराने साहित्यिक अभी तक उस सुमधुर रस का आस्वादन नहीं भूले। आज उनका भावविभोर हृदय अवश्य पीड़ित है—उनका स्वर्ग-सहोदर मायाराज्य टूट टूट कर उनके चारो ओर गिर रहा है। कोई लाख आंखों को बन्द करे—हजार कानों में उंगलियां डाले; लेकिन आज उस नवीन जागरण की वाणी अन्तर-तन्त्री पर बजही उठती है। जिनके कानों पर आज तक मुरली की सुकोमल काकली कूकती रही, शतशत गोपबाला के चपल चरणों का मञ्जीर-शिञ्जन निरन्तर बजता रहा; आज उन्हीं कानों पर राष्ट्रीय वीणा का वज्रगम्भीर झनन्कार पड़ रहा है। जिन अन्तरों में गोपियों के पुनीत प्रेम की रस-लहरी उमड़ी रही, आज वहीं स्वदेश-प्रेम तथा जातीयता की धारा आ कर प्लावित करना चाहती है। अब हमारे मनोराज्य में माखन का मटका सर पर रखे गोपियों की झुरमुट में झूमती हुई, आखें बचा बचा कर, आंखें मिलाती हुई राधिका का ध्यान रहा नहीं। आज उसी जगह पर मुक्त-केशिनी, शुभ्र-वसना राष्ट्रीय वीणा को बजाती हुई भारत-जननी का स्वागत है। हमारे कालिन्दी तट पर गोपियों की उंगलियों में उंगलियां दे कर रस रङ्ग में विभोर नटराज नागर का ध्यान रहा नहीं। आज हमारे सामने कालान्त सेना के बीच में घोड़ों की बागडोर खैंचे वह सारथी कर्म्मवीर कृष्ण दीख पड़ता है, जो अपनी ओजस्विनी वीर वाणी से स्खलित-गाण्डीव अर्जुन के प्राणों को नवीन शक्ति से भर रहा है।

मेरा यह मतलब नहीं, कि आप राधा-माधव को छोड़ दें। मैं आपके प्रमोदवन को श्मशान बनाना नहीं चाहता। यदि कालिन्दी कूल नहीं होता, तमाल निकुञ्ज की छाया नहीं रहती,

ब्रज की बनिताएं नहीं रहतीं, तब आज हमारी काव्य-फुलवारी में न ये कुसुम रहते, न यह रस माधुर्य्य। सूर, देव, केशव और बिहारी जिस ललाम लीला को अपनी पुलकमयी भावगर्भिता भाषा में लिख गये, आज वही हमारे प्राचीन हिन्दी-साहित्य का गौरव है। लेकिन आज इस देश की दशा भिन्न है। हमारे विचारों में हमारे अनुभवों में युगान्तर मच रहा है। साहित्य, समाज देश या समय का मुकुर है। आज हमारे अन्तर की विराट उद्वेलना इसी दर्पण में प्रतिफलित हो रही है, लेकिन इस बात का ध्यान अवश्य रहे, कि समयानुसार दो चार ओजस्विनी कविताएं, दो चार प्रभावशाली प्रबन्ध अथवा दो चार स्वदेश-वन्दना लिख ही देना साहित्य का विकाश नहीं, किंवा नायकनायिका भेद, ऋतु-वर्णन, अथवा किसी तरुणी का नखसिख रूप खड़ा कर देना हमारे साहित्य की महत्ता नहीं—चाहे लिखने की भङ्गी हजार अच्छी हो, प्रतिभा की अनवरत भरमार हो; पर दो घड़ी जी को खुश कर देना ही साहित्य का आदर्श नहीं। आज कल किधर की हवा है? कौन सा नवीन फ़ैशन है? पाठकों की कैसी रुचि है? यही ढूढ़ते ढूढ़ते हमारे लेखक व्यस्त हैं। जब तक लेखकों की एक आंख पाठकों को करतालीकी ओर और दूसरी अपनी गृहिणी के अलंकार शून्य कलेवर की ओर लगी है, तब तक आपकी लेखनी में न मौलिकता होगी और न सजीवता। मुझे आप क्षमा करें। मैं यहां किसी के ऊपर कटाक्ष नहीं करता। लेखकों का दायित्व बहुत बड़ा है—हमारा चरित्र-गठन आपके हाथों है। समाज क सुधार आपके हाथों में है। हमारी मनोवृत्तियों को नीचा करना, उनके अनुसार लिखना या उनको ऊंचा करना सब आपके हाथ है। हमारी दशा अच्छी नहीं है, इससे साफ ज़ाहिर होता है, कि

मारा साहित्य उच्च नहीं। आप याद रखें, जैसा आप लिखते हैं, सी के अनुसार हमको चलना है। आप जानते नहीं, कि आपके लखने का प्रभाव हमारे भावों पर, हमारे आचार-विचार पर कितना पड़ता है। तुलसीदास ने रामायण में जिस आदर्श परि-ार का चित्र खींचा है, आज तक उसी को हिन्दू जनता आदर्श ान कर अनुसरण करने की कोशिश करती चली आई। हम आपकी कठिनाइयों से परिचित हैं। आपके अभाव को खूब जानते हैं; लेकिन हमारी बिनती इतनी है, कि अपने दैन्य के बदले समाज के दैन्य तथा मानव-अन्तर के दैन्य की ओर दृष्टि देकर लिखना ही आपका विशेष ध्येय होना चाहिये।" आपका अभाव पूर्ण भी तो नहीं होता है। दो चार दिलचस्प प्रबन्ध लिख कर कभी अभाव की पूर्ति नहीं होगी। हां, यदि आप समय देकर, पसीने बहा कर, कठिन साधनानन्तर कुछ ऐसे महत्व पूर्ण ग्रन्थ तैयार कर सकें, जो विश्व-साहित्य में आदर के पात्र समझे जायं, तब न आप ही का अभाव रहेगा, न हमारा ही।

आप संस्कृत-साहित्य ग्रन्थों की ओर दृष्टि डालें। आज वे नहीं रहते, तो आप दुनिया के सामने आंखें उठाकर क्या एक क्षण भी देख सकते थे? ऋषियों ने किंबा हमारे कवियों ने अपने प्राणों के लहू से जिन बातों को लिख छोड़ा है, आज उन्हीं के सहारे हम त्याग में शान्ति, बन्धन में मुक्ति अथवा विराग में सोहाग पाते हैं। जो शुचिता, जो संयम, जो शृंखला संस्कृत-साहित्य में हैं, उसे आप लाख ढूंढ़ कर भी हिन्दी में नहीं पा सकते। यद्यपि भारतवर्ष का इतिहास नहीं है; तथापि हमारा अतीत गौरव, हमारा आत्मिक बल, हमारा जीवन-सर्वस्व सब कुछ प्राचीन साहित्य में अमर हो कर विराजमान है। भारतवर्ष किस समुन्नति

के शिखर पर था, हम कौन थे? हम क्या थे ? और आज क्या हैं ? कहां हैं ? सारी बातें हमारी अन्तर-दृष्टि पर झलक उठती हैं।

खैर, अब अतीत की चिताभस्म को कुरेद कर क्या होगा? आज हमें हिन्दी साहित्य की वर्तमान दशा को देखना है। हिन्दी में अब काव्य रहा नहीं। सच तो यह है, कि अब काव्य के दिन रहे नहीं। अब विज्ञान के दिन आये। राष्ट्र निर्माण के दिन आये। आज हमारे युवकों के सामने कठोर ब्रत है, देश एक बिराट आन्दोलन में रत है। कविता विचारी चुप है, किंवा "जैसा देश वैसा भेष" के प्रथानुसार हमारी भारत-जननी की पदांगुली पर अपनी पुष्पाञ्जली दे रही है। आप कवि हैं, आज भी कविता लिखते हैं, अपने मनोनुकूल माला गूँथते हैं; लेकिन आपही कहिये, क्या इन फूलों में वह पारिजात-परिमल है? वह स्वर्गीय सौरभ है? वह रस माधुर्य्य है, वह प्राणस्पर्शी पुलक है? कम से कम मैं तो नहीं पाता। कविता जिस स्वर्गीय आनन्द को लाती है, जिस सुदूर अनन्त से जा मिलाती है; आप ही कहिये, क्या आज आप उसे पाते हैं? जो दो एक पुराने ढङ्ग के कवि रह गये हैं वे विचारे प्रतिभा का बोकचा पीठ पर बांधे दर दर पेट बजाते चलते हैं। एक दिन था, कि राज दरबारों में काव्य का समादर था, बिहारी की अमृत-निस्यन्दिनी वाणी, गोपगोपियों की करुण कहानी, झंझट-झमेलों में क्षण भर उन्हें शान्ति लाती थी, आज उनकी चित्त वृति किसी और ही रङ्ग में सराबोर है। अब देव, मतिराम, बिहारी और केशव की चर्चा दिनोदिन कम हो रही है; उन्हें अब कोई बिरला ही पूछता है। सूर और तुलसी अभी तक हैं; लेकिन आज वे वैष्णव भक्तों की खंजरी पर डोलते हैं। हां, गोस्वामी

जी की रामायण आजतक अपनी जगह पर कायम है। आज भी हमारे मानस–राज्य में जनक की फुलवारी हरी भरी है, पत्तियों की आड़ में किसी श्याम छटा को ढूढ़ते हुए दो त्रस्त चकित करुणलोचन आज भी हमें देख पड़ते हैं, धनुष तोड़ने की आवाज़ आज भी हमारे कानों पर किस उल्लास के साथ बजती है और रावण के बध की चीत्कार आज भी हमारे हृदय-पञ्जर को कंपाये डालती है। भिखारी के कुटीर से अथवा साहूकारों की बैठक से खेतों के मथारे शाम को गौएं लेकर लौटते हुए चरवाहे बालक के गले से अथवा मखमली फर्श पर घुंघरू के ताल ताल पर नाचती हुई वारविलासिनी के सुशिक्षित कण्ठ से जिधर देखिये, उधर ही से प्रसन्न पुण्य सलिला जाह्नवीकी कलकल काकली की तरह श्री रामजानकी की रस कथा आज भी हमारे कानों में पीयूष की वर्षा कर रही है।

मैं जानता हूँ, गोस्वामी तुलसीदास का समादर अभी तक यथेष्ट है, तथापि विद्वज्जनों में आज खड़ी बोली की कविता चल रही है। जो कवि हैं, वे खड़ी बोली में किंवा पड़ी बोली में सभी बोल लेते हैं. लेकिन ब्रज बोली के मुकाबले कोई बोली भी है? ब्रज भाषा की कविता में जो रसमाधुरी है, उसे हम आज कल नवीन प्रणाली के पद्यों में पाते नहीं। मैं आपकी खड़ी बोली पर कटाक्ष नहीं करता। काव्य का आनन्द खड़ी बोली में भी मिलही जाता है। किस बोली में मिल नहीं सकता? कवि की मानस मन्दाकिनी जिधर बहेगी, उधर ही शीतल करती जायगी। लेकिन दोनों का आनन्द समान है या कमवेश, इस बात का निर्णय आप के हाथ है। आज कल के नवीन सभ्य साहित्यिकों का ख़याल है, कि ब्रजभाषाके काव्यमें कुरुचि की गन्दी बू है, अश्ली-

लताकी कालिमा लिपटी है। आप शृंगार रस के विरोधी हैं। आप का बिचार है, कि शृंगाररस की सुकोमल सरस शीतल धारा ने हमारे अन्तर के पोर पोर में प्रवेश कर हमारी धमनी के रक्तप्रवाह की उष्णता को ठंढा कर डाला, हमें जनखा बना डाला। मुझे स्वयं खेद है, कि ऐसी भावमयी प्राणमयी भाषा देशकी सुषुप्त चेतनाकी जागृति की ओर नहीं झुकी, मानव–अंतर के विचारोंको उच्च करने की ओर नहीं फिरी; लेकिन इस के साथ साथ मुझे यह भी कहना है, कि आजकल की नीरस–निर्जीव–भाषा की कविता में वह बसन्त-चाञ्चल्य, वह मलयहिल्लोल नहीं मिलता, जो धीरे धीरे आकर हृदय-कानन के एक एक फूल को नवीन परिमल–नवीन पुलक से भर दे। आज आप नये रंग से अपना चमन तैयार करते हैं, विदेशीय मालियों से सीख सीख कर नई नई क्यारियां बनाते हैं, तरह तरह के खाद और रस देकर पुष्ट करते हैं तथा निरन्तर काट छांट से सुडौल सुचारु बनाते हैं; लेकिन हजार प्रयत्न करने पर भी आप के चमन के फूल बन के फूलों को नहीं पाते। न वह रंग है न वह बू। न भौंरों का गुञ्जार है, न मलय का फुत्कार। आज इस वैज्ञानिक युग में भी कभी कभी आपका चित्त न जाने किस वेदना से विकल हो उठता है और फिर भी आप उसी बांस की बंशी की टेर के लिये, यमुनातट की उसी ललाम लीला के लिये अचानक नाच उठते हैं।

"सघन कुञ्ज छाया सुखद, शीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा यमुना के तीर" ॥

महानुभावो! जो कवि हैं, उन्हें तत्वों के भीतर डूबना अवश्य है। प्रकृति के सौन्दर्य्य को दिखाना कुछ दुस्तर नहीं, ऊषा की लाली तथा पत्तियों की हरियाली को अपनी वर्णन चातुरी से और भी मनोहर कर देना कोई बड़ी बात नहीं; लेकिन जब तक वे

मानव-अन्तर के रहस्यों की खबर नहीं लाते, हमें किसी अज्ञात महत्व की सूचना नहीं देते, प्रकृति के प्रशस्त हृदय की मूक प्रशान्त वाणी से परिचित नहीं कराते, उसकी अनन्त उदारता का पता नहीं लाते, तब तक उनका नाम काव्य जगत् में अमर नहीं होता।

बिहार में कवियों का अभाव नहीं; पर दुःख की बात है, कि वे छोटी मोटी कविताओं के लिखने में इस तरह उलझे रहते हैं, कि साहित्य के लिये स्थिर काव्य ग्रन्थ की रचना करने की ओर उनकी प्रतिभा नहीं प्रवृत्त होती। बिहार के कवि–समाज से मेरा इसके लिये उलाहना है।

आज कल उपन्यासों की बड़ी भरमार है। जब हम बच्चे थे, हमारी माता या हमारी धाय भूत वो बैताल की कहानियां सुना सुना कर हमको फुसलाया करती थीं; आज हम सयाने हुए, तब हमारे उपन्यास–लेखक तिलस्मी और जासूसी झमेलों को खड़ा कर हमें चक्कर में रखते हैं। जिसे दो घूट पीने की आदत हैं, उसे शाम को खाने के पहले अगर अपनी 'मामूली' न मिले, फिर उसके सामने अगर आप ज़ाफ़रानी कोरमें भी लाकर रखें तो उसका जी मिचलाया ही करेगा। वही दशा हमारे पाठकों की है। जब तक दिमाग को चक्कर में देने वाला कुछ नशीला मसाला न हो, तब तक किसी आख्यायिका के अन्दर उन्हें मजा नहीं मिलता। आज विश्व-हृदय के चिरन्तन प्रश्नों की ओर, समाज के उसी सरल सुन्दर चित्र की ओर उनका जी नहीं चलता। अद्भुत घटनाओं की शृंखला बांध कर शरीर के रोंगटे खड़े कर देना कुछ दुस्तर नहीं। काल्पनिक करामाती करिश्मों की लड़ी बांध कर किसी किशोर हृदय को विस्मित अथवा कण्टकित कर देना, कुछ

बड़ी बात नहीं. कामिनी की नग्न सुडौल शोभा. उसकी शत शत भाव भङ्गिमा को दिखा दिखा कर हमारी लालसा-वह्नि में घी की आहुति देना बड़ा ही सुलभ है. तथा प्रेम की चुहचुहाती चटकीली चटकार से हमारे चित्त को चमत्कृत करना बड़ा सहज है; लेकिन प्रिय लेखक–प्रवर ! आप ही कहिये, इससे साहित्य के किस अङ्ग की पुष्टि हुई. या समाज के किस चित्र का चित्रण हुआ ? हम मानते हैं कि आप लाचार हैं. आप करें क्या ? कल्पना के भाण्डार से रस के गरम गरम मसाले लगा लगा कर आपको अपने उपन्यासों को रुचिकर बनाना आवश्यक है । हमारे वैचित्र्य हीन समाज से जब आपको साहाय्य नहीं मिलता. तब कल्पना का सहारा भी आप क्यों कर छोड़ दें ? विलायती लेखकों को बड़ा सुभीता है । उन्हें रसमय प्लाट मिलना कुछ मुश्किल नहीं । वहां अन्तर्वासना किसी सामाजिक अवरोध से बद्ध नहीं । वहां प्रेमिकों की विविध भावभङ्गिमा शत सहस्र रस-लीलाएं घर घर चलती हैं । हमारे यहां प्रणय का प्रादुर्भाव परिणय के पश्चात् है, और वहां प्रणय चरितार्थ होने के पहले ही सुख दुःख, घात–प्रतिघात, विरह मिलन तथा रस की सारी बातों की समाप्ति हो जाती हैं । वहां परिणय, प्रणय की समाधि है । हमारे यहां वह आजादी नहीं । यहाँ परदा है. केवल बाहरी परदा नहीं. चेष्टाएं भी परदा हैं । इसी से बाध्य हो कर वननील उपवन में पूजनार्थ फूलों को तोड़ती. कलसी सर पर रखे नदी के घाट से घर को लौटती तथा टिकट खरीदने के निमित्त किसी स्टेशन के मुसाफिर खाने में हताश दौड़ती या मेले में किसी बिछुड़े हुए संगी को ढूढती हुई एक अनिन्द्य सुन्दरी को खड़ा कर आप अपने चरित्र नायक के प्रेम में फांसते हैं; फिर जब वह प्रेमतरी बह चली,

तब उसे विविध घटना की तरङ्गों पर सुख दुःख के शैवाल–जाल से निकालते हुए तथा सामाजिक चट्टानों से बचाते हुए अन्त तक पार पहुँचाते हैं। कभी कभी बाल विधवा के स्वर पर आप अपनी रचना की नींव डालते हैं। यही आज कल का चलता हुआ उपन्यास या गल्प है।

आपके पड़ोस ही में बंकिम बाबू अपने उपन्यासों में ऐसी सामाजिक समस्याओं के समाधान की कोशिश कर गये, मानव अन्तर के निगूढ़ रहस्यों की छानबीन कर गये, कि आज उनका नाम प्रत्येक भारतीय के मुख पर है, उनकी विजय पताका घर घर फहराती है। आपको विदेशीय मसाले लगा कर अपने उपन्यासों को चटक दार करने की आवश्यकता नहीं–आपके वैचित्र्य–हीन समाज में भी अभी तक इतनी जटिलता है, कि आपकी प्रतिभा के संक्रीडन का अवसर कुछ कम नहीं। कल्पना की प्रबलता हम नहीं चाहते, भावों की जटिलता हम नहीं ढूढते। कर्म्मरत गृहस्थ के व्यस्त जीवन में भी जो आनन्द, जो विषाद, जो आशा, जो आकांक्षा, जो तृप्ति, जो अतृप्ति, मेघ और रौद्र की तरह अहर्निश आंख मिचौनी खेल रही है, उसी चिरन्तन द्वन्द्व का एक सरल सुन्दर भाव मय चित्र खींच कर अपनी प्रतिभा के रंगीन रंग से रंग कर आप हमारे सामने ला कर रख दें, ताकि उसी में हम अपनी भी प्रति मूर्ति देख लें, अपने अपने दुःख की कहानी भी पढ़ लें। हमारे हृदय का रुद्ध कपाट आप से खुल जायगा और यह अन्तर-पुरुष विश्व-हृदय की असह्य-वेदना की ओर आप से आप निरन्तर खिचता जायगा।

आध्यात्मिक और धार्म्मिक बातें बड़ी कठोर और नीरस होती

हैं । नैतिक और भौतिक विषयों की कठिन मीमांसा से जी उकता जाता है । राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक दशा पर कोई जटिल गम्भीर विचार पूर्ण प्रबन्ध पढ़ने कलेजा कांप उठता है । लेकिन इन्हीं बातों को जब हम दिलचस्प कहानियों के परदे के भीतर से एक नवीन प्राणमय रंग में रञ्चित तथा मनोनुकूल पाते हैं, उस समय इनका असर हमारे अन्तरपट पर बड़ी सुगमता के साथ पड़ता है । टाल्सटाय ने सरल और मनोरञ्जक गल्पों के द्वारा अपने देश के सर्वसाधारण को बड़े बड़े गंभीर प्रश्नों से परिचित करा दिया । डिकिन्स ने अपने हास्यमय, भावमय उपन्यासों में दैन्य और अत्याचार के मर्म्मस्पर्शी चित्र खींच कर अपने देश की दुर्दशा की ओर-अपने समाज की संकीर्णता की ओर किस की दृष्टि न फेर डाली ? प्रिय लेखक–प्रवर ! आप भी गल्पों की मीठी चाशनी दी हुई हजार हजार उपदेश–वटी के द्वारा हमारे कुरुचि रोग को दूर कर सकते हैं । आप मनोरञ्जक कथा के रंगीन कपड़े पहना कर समाज और देश के विविध प्रश्नों से सर्वसाधारण को परिचित करा सकते हैं ।

प्रसन्नता की बात है, बिहार न तो जासूसी उपन्यासों के घन चक्कर में पड़ा है और न उसने तिलस्म के फेर में पड़ पाठकों के दिल और दिमाग़ को ही परीशानी में डाला है । जहां तक मैंने देखा है, आरा के सुप्रसिद्ध लेखक बाबू व्रजनन्दन सहाय के सौन्दर्योपासक और लाल चीन ये ही दो उपन्यास हैं, जिनकी गणना हो सकती हैं । अन्यान्य युवक साहित्यिकों ने आज मातृ–भाषा हिन्दी के चरणों पर जो श्रद्धा की पुष्पाञ्जलि रखी है, वह उनका प्रारम्भिक प्रयत्न भी अवश्य प्रशंसनीय है ।

नाटकों की दशा और भी शोचनीय है। हमारे यहां एक तो नाटक ही नहीं। जो दो चार हैं भी, उन्हें साहित्य की दृष्टि से किम्बा अभिनय की दृष्टि से-किसी दृष्टि से देखिये, कुछ ऐसे नहीं, कि शतवर्ष बाद भी उनके अवलोकन के लिये जनता की क्षुधा जागती रहे। हमारे ही एक पूर्व पुरुष ने किसी एक तापस की कन्या का चित्र खेंच कर विश्वलोचन के सामने भारत की प्रतिभा का नमूना दिखा दिया है तथा जर्मनी के जगद्विख्यात साहित्यिक गेटी की मेधा की धज्जियाँ उड़ा दी हैं और आज उसी जगन्मनोहर की सन्तान हम एक ऐसा नाटक भी न लिख सके, जो विदेशीय रङ्गमञ्च पर अभिनय के योग्य समझा जाय। प्रिय लेखक-प्रवर, हताश होने की बात नहीं। आज तक आपने प्रयत्न नहीं किया। अपकी धमनी में अभी तक वही शक्ति है, यद्यपि आप इससे अभी परिचित नहीं। कारण यह है, कि परिचित होने की आपने कोशिश नहीं की। आपके यहां ऐतिहासिक तथा सामाजिक नाटक बहुत कम हैं। जो कुछ हैं, पौराणिक हैं जिन्हें आप आज सुभीते के साथ खेल नहीं सकते। मेरी विनती यह है, कि आप खेलने के लिये नाटक लिखें; केवल पढ़ने ही के लिये नहीं। उपन्यास और नाटक में कुछ विशेष अन्तर नहीं है। जिन बातों को कमरे के अन्दर पलंग पर लेटे हम उपन्यास में पढ़ते हैं उन्हीं बातों का अभिनय हम रङ्गमञ्च पर देखते हैं। जिन चरित्रों को एक मनुष्य एक समय किताब में देखता है, उन्हीं चरित्रों की लीला हजार हजार मनुष्य दो घण्टे के अन्दर आंखों में प्राण भर कर एक साथ देख लेते हैं। जो भाव यहां अकेले एक हृदय पर पड़ता है, वही भाव, वहां वाणी, चेष्टा और दृश्य द्वारा प्रबल हो कर शतशत प्राणों को वशीभूत करता है। इसलिये हिन्दी के प्रचार के लिये समाज

के सुधार के लिये उपन्यास के बदले नाटक और नाट्यशालाओं की विशेष आवश्यकता है। शायद शिक्षा देने के लिये या असर डालने के लिये नाटक खेलने के बराबर कोई दूसरा सुगम उपाय नहीं। जी भी लगा और प्राण के भीतर एक निर्म्मल उदार करुण भाव चुपचाप आकर बैठ गया। लेकिन आजकल की चलती कम्पनियाँ जिन हिन्दी उर्दू मिश्रित नाटकों को खेलती हैं उनसे जनता के हित के बदले अहित ही विशेष होता है। व्यापार के ख्याल से जो कम्पनी होगी, उसकी दृष्टि हमारी पूंजी की ओर होगी—हमारी उन्नति की ओर नहीं। उसे वही खेल इस भाव से खेलना है, जिससे हमारी कामना की वह्नि कभी बुझे नहीं। आप आजकल किसी नाट्यशाला में जाकर देखें, वहां की क्या दशा है। वहां वह सुन्दरी अभिनेत्री झूमती खेलती हंसती बोलती घुंघरू को बजाती आंखों को नचाती परदे से निकल कर विद्युतविभासित रंगमञ्चपर आई. आप चटपट अपनी कुर्सी पर तनकर बैठ गये और आपकी झिपकी आंखें फिर सजीव होकर खड़ी हो गईं। फिर आप ऐसे बिभोर हो चले, कि तमाशे का क्या उद्देश्य है, किस सुख दुख की लीला चल रही है, यह सब कुछ ध्यान में आते नहीं, केवल किसी के गालों की दूकान की खरीदी गुलाबी विलायती बुकनियों से बनी दो क्षण की गोराई, सन के रेशों से बने काले मायावी बाल, शिल्पी की तूलिका से खैंची वङ्किम भौं तथा चाबुक की चोट पर सिखाई नव नव भावभङ्गिमा आपकी आंखों को न जाने क्या पिला देती है, कि नशा कई दिनों तक नहीं उतरता। उधर एक जीवन्त सौन्दर्य्य रंगमञ्च पर नाचता है और इधर एक विप्लवी प्राण किस उल्लास के साथ हृदय-पञ्जर पर नाचता है। जिस घड़ी उसने

बाज़ार की मारी हुई किसी खेमटा की धुन छेड़ी, फिर आपने "गनकोर गुनकोर" की आवाज से अभिनय-भवन की दीवारों को कंपाडाला। और जब अचानक तमाशा बन्द हुआ, उसी गाने को गुन गुनाते उसी नशे में मस्त आप घर लौटते हैं और धड़ाम से पलंग पर जा गिरते ह। फिर यह ध्यान नहीं, कि सिरहाने के पास सर पर पंखा झलती तथा गरम दूध के कटोरे को मुख की ओर बढ़ाती यह कौन खड़ी है। उधर रंगमञ्च पर वह नक़ली अभिनय है, इधर संसार रंगमञ्च पर यह असली अभिनय होता है। प्यारे सज्जन! आप क्षमा करें, यदि मेरी लेखनी कुछ बहक गई। मैं क्या करूं? मैं रोक नहीं सका। कलकत्ते में मैं इस अभिनय को इन्हीं आंखों से देख चुका हूँ; इस लिये इसका एक छोटा चित्र खींचकर आपके सामने रख दिया। आपही कहिये, जिसे कल की रात आपने शहीदा बनकर स्टेज पर थिरकती हुई किस दृष्टि से देखाथा, वही जब आज सीता बन कर उसी भाव से अठिलाती परदे से निकल कर आपके दृष्टिपथ पर आती है, फिर जनकनन्दिनी के आदर्शचरित्र की महिमा किसे सूझती है; वरञ्च वही सूझती है, जो कल सूझती थी, होठों के प्रान्त पर वही रेखा रहती हैं, जो कल खिंची थी। हां दोचार धर्म्मप्राण हिन्दू के हृदय पर गहरी चोट बैठती है। रामलीला-मण्डली भी अब इसी चाल पर चलती है। इसी तरह मायावी मसालों से रङ्गी हुई घुंघरु पहनी हुई सीता को दर्शकों की करतालों के तालताल पर किस उल्लास से नचाती है! मुझे विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं, आप स्वयं जानते हैं, थियटरों के पीछे कितने युवक बिगड़ गये—कितने भरे घर श्मशान बनगये।

अब आप इधर से दृष्टि फेर कर उसे बंगाली भाइयों के रङ्गमञ्च पर लाइये। दीनबन्धु के 'नीलदर्पण' ने बंगाल में ऐसी धूम मचा दी, कि

निलहे साहबों की स्थिति जड़ से हिल गई; द्विजेन्द्रलाल ने राणाप्रताप लिख कर बंगालियों के प्राणों में स्वदेशप्रेम एवं जातीयता की बिजली दौड़ा दी तथा बङ्किम के 'चन्द्रशेखर' ने नाटक के रूप में आकर मानव अन्तर के विविध रहस्यों को दिखा कर शतसहस्र भारतीयों के हृदय को उदार अनुकम्पा से भर डाला।

महानुभावों! इसी से आप समझें, कि इस समय देश में रोचक तथा उपदेशप्रद नाटकों की कितनी ज़रूरत है। हिन्दी का प्रचार भी होगा, जनता का उपकार भी होगा। हमारी रुचि यदि अच्छी नहीं, तो उसे मार्ज्जित करना आप ही का धर्म है, हमारे समाज में जो संकीर्णता है, जो अन्याचार अभी तक हमारे आचार विचार, हमारे भावों के साथ सम्मिलित हो कर निश्चिन्त ठहरा है, उसे आप रंग मञ्च पर सर्व साधारण की आँखों के सामने रखें, ताकि लोग जिसे प्रति दिन देख कर भी कुछ देखते नहीं थे, आज उसी का परिणाम स्टेज पर देख कर अपनी भूल को समझ लें।

अब आप अपने यहाँ के नाटकों को देखिये। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों को प्रकाशित करने का सौभाग्य बिहार को ही प्राप्त है; पर नाटक लिखने के काम में बिहार अब तक अन्य प्रांतों से पीछे ही पड़ा है। मझौली के लाला खड्ग बहादुर मल्ल के बालविवाह विदूषक, भारत आरत, भारत-मोहिनी सब पुराने-पड़ गये। पं० केशव राम भट्ट के शमसाद सोसन, सज्जाद सम्बुल, प्रभृति नाटक समय-प्रवाह में न मालूम कहाँ विलीन हो गये, बाबू ब्रजनन्दन सहाय के सत्यभामा मंगल और उद्धव नाटक अब समयानुकूल नहीं, बाबू महेशचन्द्र का सावित्री सत्यवान उपयोगी होते हुए भी उसमें सामयिकता का अभाव है। पं०

जीवानन्द शर्मा के भीष्म प्रतिज्ञा और बाबा का व्याह इन दो नाटकों में सामयिकता है और ये प्रभाव शाली भी हैं, फिर भी आज कल बिहार में कोई ऐसा नाटक नहीं लिखा गया, जिसे हम गौरव की सामग्री समझें।

महोदयगण! जिस जाति का इतिहास नहीं, उस जाति की गणना ही नहीं। संस्कृत के ग्रन्थों से जिस इतिहास का पता चलता है, वह कदापि यथेष्ट नहीं। आज भी यदि अतीत के चिताभस्म को कुरेदा जाय, पुरानी, हस्त लिखित पुस्तकों की खोज की जाय तथा ताम्रपत्र, शिला लेख और सिक्कों की छानबीन की जाय, तब यह सम्भव है, कि भारत का गौरव मार्तण्ड फिर इस तिमिरजाल को नाश कर समग्र जगत पर अपने प्रकाश का विस्तार कर देगा। प्रसन्नता की बात है, कि काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा इस काम को बड़ी खूबी से कर रही है। मुझे खेद यही है, कि हमारे बिहार के साहित्य सेवियों की दृष्टि अभी तक इस अभाव की ओर नहीं फिरी। केवल आरा के बाबू अवध विहारी शरण का "मेगास्थनीज का भारत विवरण" बिहार का आंसू पोंछने के लिए पर्याप्त नहीं है।

सज्जनो! लौकिक और पारलौकिक कोई भी हमारा काम बिना देवियों की पवित्र सहायता के कभी नहीं सम्पादित हो सकता। देवियां, हमारे राष्ट्र चक्र की धूरी हैं। हमारा कर्त्तव्य है, राष्ट्रीय महारथियों का धर्म्म है, कि राष्ट्रचक्र की इस पुनीत धूरी में वह आत्मिक बल भरें, जो कुन्ती के हृदय में था। जिस शक्ति के सहारे सुमित्रा ने फूट का अंकुर उखाड़ फेंका, सावित्री ने अपने पति के विगत प्राणों को कृतान्त के हाथों से वापस पाया; उसी

आत्मिक बल, उसी शक्ति का संचार देवी-समाज में करने के लिये आप उनमें वीर-साहित्य का प्रचार करें। गार्हस्थ्य धर्म की शिक्षा दीजिये, साहित्य-सूर्य के प्रकाश में उनका कर्तव्य-पथ उन्हें दिखलाइये। जब तक उनकी शिक्षा नहीं होगी—उनकी जागृति नहीं होगी, तब तक आपकी शिक्षा, आपकी जागृति अधूरी रहेगी। दुःख की बात है, कि ऐसे आवश्यकीय उपयोगी विषय की ओर से हमारे प्रान्त के साहित्य सेवक उदासीन हैं। यदि एक विधवा देवी के हाथों से हमारी देवियों के करों में 'महिला दर्पण' का उपहार नहीं रक्खा जाता, तो वे अपना वास्तविक स्वरूप देखने से वञ्चित ही रह जातीं। प्रसन्नता की बात है, कि मुजफ्फरपुर की बर्म्मन कम्पनी ने मातृ भाषा हिन्दी के गले में रमणी रत्नमाला का उपहार देने का साधु प्रयत्न किया है। अच्छा होता, यदि बर्म्मन कम्पनी कलकत्ते के प्रसिद्ध पुस्तक-व्यवसायी बा० रामलाल वर्म्मा के यहां की प्रकाशित 'सावित्री-सत्यावान' जैसी सुन्दर और सुपाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करती। आशा है, बिहार के साहित्य सेवक सज्जन स्त्रियों के उपयोगी साहित्य के अभाव की पूर्ति करने के लिये प्रयत्न शील होंगे।

आज बिहार में बालकों की सुरुचि बढ़ाने वाली बालोपयोगी साहित्य की बड़ी आवश्यकता है। जिन आशाकुसुमों पर हमारा जीवनसौरभ अवलम्बित है, जिन माङ्गलिक सुनहरी किरणों से हमारा अंधेरा घर उंजेला होगा, उनकी ओर से हम कान में तेल दे कर बैठे हैं। आने वाली पीढ़ियों से लाँछित होना, यदि आपको पसंद हो, राष्ट्र रथ को पीछे घसीटना यदि आपको रुचिकर है, तभी आप अपने इस कर्त्तव्य से मुख मोड़ सकते हैं। बिहार में बड़े बड़े पुस्तक प्रकाशक हैं; किन्तु दुःख की बात है, कि इस

आवश्यक कार्य्य की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती । आज सदुपयोगी और मनोरञ्जक पुस्तकों का अभाव ही एक प्रधान-कारण है, कि छोटी उमर से हमारे बालक आशिकी के गजलें याद कर बैठते हैं, गन्दी दिलचस्प कहानियों की ओर बेतरह दौड़ते हैं तथा लड़कपन हीमें उनके हृदय में लाखों तरह की कुत्सित कामनाएं पैदा हो जाती हैं । जहां एकबार भी कीट ने फूलों की कली में पैर रखा, फिर वह धीरे धीरे परिमल को चाट लेगा, सुकोमल पांखुरी को जर्जर बना देगा । फिर न फूल का विकाश होगा, न शुभ्र सुन्दर सौरभ रहेगा । शिशुता में जो रंग चढ़ता है, युवावस्था में वह और भी गाढ़ा हो जाता है । छोटी उमर में जब कुरुचि उत्पन्न होगी, वह दिन दिन भयंकर होती जायगी । सतसंग और उपयोगी पुस्तकें, यही दोनों इस रोग की औषधि है । आज इन्डियन प्रेस की बाल-सखा पुस्तकमाला के समान, यदि विहार के पुस्तक प्रकाशक भी इस कार्य्य को अपने हाथमें लेते तो साहित्य के एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति के साथ साथ बालसमाज में सुरुचि तथा जागृति का बीजारोपण कर राष्ट्रनिर्माण मेंभी हम बड़ी सफलता पाते ।

जीवन चरित्र भी साहित्य का एक प्रधान अंग है । हर्ष की बात है, कि बाबू शिवनन्दन सहाय ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी तथा गोसाई तुलसीदास की जीवनी लिख कर हमारे साहित्य की श्री वृद्धि की है । इन दोनों पुस्तकों को मैं साहित्य के गौरव की सामग्री समझता हूं ।

प्रोफेसर राधाकृष्ण झा ने अर्थ शास्त्र पर एक मौलिक-विचार पूर्ण ग्रन्थ लिख कर साहित्य का एक बहुत बड़ा अभाव दूर किया है । साथ ही विहार के साहित्य सेवियों का मुख उज्वल किया है ।

आजकल कृषि सम्बन्धी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। गया से जो 'गृहस्थ' निकलता है, उस में गृहस्थों के काम की बहुत सी बातें रहती हैं। फिर भी उनके अभावों को देखते हुए मुझे यह कहना पड़ता है, कि अकेला गृहस्थ उस अभाव को दूर करने के लिये दाल में लवण के समान है। कृषिप्रधान भारत में किसानों ही की उन्नति पर अखिल भारत का जीवन निर्भर है। खेद की बात है, कि उन्हीं किसानों की उन्नतिसाधन के लिये उपयोगी साहित्य की रचना हम नहीं करते। संयुक्त प्रान्त की किसान सभा से नये नये खादों के द्वारा पृथ्वी की उर्व्वरा शक्ति और फसलों की पैदावार बढ़ाने के सम्बन्ध में जैसी उपयोगी और सरल पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, वैसी पुस्तकों का अभाव रहना हमारे लिये लज्जा की बात है।

विज्ञान, व्यापार, शिल्प तथा पर्यटन की पुस्तकें हिन्दी में पर्याप्त मिलती नहीं। इस अभाव को भी पूर्ण करना हमारा ध्येय है। राजनीतिक साहित्य की ओर भी बिहारियों की दृष्टि नहीं फिरी।

जाति की जातीयता ही उस के जीवित होने का चिन्ह है। हिन्दी साहित्य के लिये गौरव की बात है, कि जातीय साहित्य में यह अन्य सभी प्रान्तीय भाषाओं में अग्रसर है। प्रताप प्रेस के संचालकों ने जातीय साहित्य के द्वारा मातृ भाषा हिन्दी के साथ साथ देश का जो उपकार किया है वह प्रशंसनीय है। जिस प्रकार प्रताप संचालकों के उक्त कार्य्य का अनुकरण अन्यान्य प्रान्तों ने किया है, उस प्रकार बिहार प्रान्त ने नहीं किया। वे दिन गये, जब राजनीति को हौआ समझ लोग इसका नाम लेते ही बगलें झांकने

लगाने थे। अब तो हमारे बैठते उठते सोते जागते राजनीति छाया के समान हमारे साथ रहती है। ऐसी दशा में राजनीतिक साहित्य की ओर से उदासीन रहना विहार के लिये लज्जा की बात है।

अब आप अपने यहां की समालोचना की ओर दृष्टि फेरिये। जो कवि हैं, वे अपने मायाराज्य में बैठ कर अपनी कल्पना का जाल बुनते हैं—जो लेखक हैं, वे अपनी ही धुन में मस्त नई नई चीजों को गढ़ कर तैयार करते हैं; लेकिन समालोचक को न कोई माया राज्य है, न कोई धुन। वह एक जीव ही अलग है। उसका काम पैदा करने का नहीं है, उसे दूसरे की सृष्टि को परेखना है—जांचना है। वह जौहरी बन कर रत्नोंको परेखता है—रत्नोंको माला स्वयं नहीं गूथता। हमारे कवि या लेखक जिस भवनको निर्माण करते हैं समालोचक उसी भवन की कारीगरी को जांचता है; रोशनी काफी है या नहीं, कहीं सङ्कीर्णता तो नहीं रह गई, दीवालों पर रंग गाढ़ा तो नहीं पड़ गया, गच में कहीं फांक तो नहीं है, इन्हीं बातों को विचारपूर्वक देख कर उसे अपनी मति देना है, ताकि भविष्य में किसी शिल्पी की सृष्टि में कोई त्रुटि न रहे। यह भवन कैसा बना है—इस से और सुन्दर हो सकता है या नहीं—इन्हीं बातों को जांचना है; यह किस का है या किस ने बनाया है, इन बातों के जानने की जरूरत नहीं। समालोचक का सम्बन्ध कवि से नहीं, कवि की कविता से है; लेखक से नहीं—लेखक के लेख से है। लेकिन आज कल लोग लेख को छोड़कर लेखक ही की जांच करना ज़्यादा पसंद करते हैं—उसी की धज्जियां उड़ाना अपना कर्तव्य समझते हैं। आप किसी की वाटिका से झाड़ जंगल ज़रूर साफ़ करें, वृक्षोंको उखाड़ कर अवश्य फेंक डालें, लेकिन वहां की मिट्टी खोद

कर कींच करना और उसी कीचड़ को हाथों से उठा उठा कर बिचारे माली के मुख पर फेंकना मेरी समझ में कोई देखने योग्य दृश्य नहीं। आप का क्या ख्याल है, इसी पङ्क से आप के साहित्य सरोवर में पङ्कज होंगे ?

हम मानते हैं, लेखक, समालोचक का पिता है; परन्तु समालोचक भी लेखकों के लिये गुरुवत् पथप्रदर्शक होता है। यदि न्याय पूर्ण हृदय, सूक्ष्म विचार और सचाई के साथ समालोचक अपना कर्त्तव्य पालन करे, तो साहित्य का महान उपकार हो, साहित्य का बेड़ा पार हो; पर दुःख की बात है, कि हिन्दी-साहित्य के समालोचक अपना उत्तरदायित्व नहीं समझते। समालोचना के नाम पर निष्पक्षपातिता की हत्या होती है, सत्य का गला घोटा जाता है और विचार-शक्ति का दुरुपयोग किया जाता है। सम्पादक मुझे क्षमा करें, वे अपने इस कर्तव्य का पालन करते हुए या तो लग्गी से घास टालते हैं या मित्रों की पुस्तकों के लिये भांट बन जाते हैं। मुझे सम्पादकों की झंझटें मालूम हैं, पर झंझट झमेलों में पड़ कर भी अपने कर्तव्य को सभांलना ही तो बुद्धिमानी है। यद्यपि गया की 'लक्ष्मी' में समालोचना और पत्रों से कुछ अधिक रहती है, पर हिन्दी के मर्मज्ञ लेखक और कवि लक्ष्मी-सम्पादक लाला भगवान दीन जी यदि व्यक्तिगत कटाक्षों से रहित समालोचनाएं अपने पत्र में प्रकाशित करें, तो उनके पत्र की प्रतिष्ठा ही होगी, अप्रतिष्ठा नहीं।

सज्जनो ! आज आप बिहार में हिन्दी साहित्य की दशा पर विचार करें। पता लगाने पर मालूम हुआ है, कि अन्य प्रान्तों की उपयोगी पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों की खपत जितनी बिहार में

होती है, उतनी शायद ही कहीं होती हो। अब आप ही कहिये, हम गर्व करें, कि हम रे प्रान्त में इतनी उदारता इतनी गुणग्राह-कता है, अथवा दुःख करें कि हम अपना अभाव स्वयं दूर नहीं कर सकते और आज हम अपनी बुभुक्षा का शमन करने के लिये दूसरों के दान पर निर्भर हैं। किसी और के पसीने की कमाई पर पेट पालना उन्हीं को शोभा दे सकता है, जिनके हाथ पांव की शक्ति जाती रही है। लेकिन जिन्हें परमात्मा ने शक्ति दी है—जो स्वयं पैदा करके खा सकते हैं, वे भी किसी पड़ोसी के दो मुट्ठी अन्न के भरोसे रहें, उन्हें मैं भिक्षा का पात्र भी नहीं समझता। हृष्ट पुष्ट, पर दीन बिहार की यह परान्न–जीविका डूब मरने की बात है।

आप अपने यहां 'सरस्वती' को स्थान नहीं देते, 'मर्यादा' की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य नहीं समझते, 'प्रभा' से अलग ही रहना चाहते हैं, 'प्रतिभा' से और हम से क्या सम्बन्ध ! न तो हम "श्री शारदा" की सेवा से अपने को धन्यभागी बनाना चाहते हैं और न अपनी किसी 'हितकारिणी' ही को प्रश्रय देना कर्त्तव्य समझते हैं। यदि आज 'लक्ष्मी' की हमारे ऊपर कृपा न रहती, तो आज हमारी दशा क्या होती, उसे आप स्वयं समझ सकते हैं। बिहार के लिये इससे बढ़ कर लज्जा की बात और क्या होगी, कि उसने अपने 'बन्धु' को मार कर अपनी 'मनोरंजन'–प्रियता को भी गंवा दिया। अब न तो हरिश्चन्द्र की कला ही है, और न वह प्राचीन पर निर्मल चन्द्रिका ही।

साप्ताहिक पत्रों में 'पाटलिपुत्र' ने बड़े गाढ़े समय में अपने प्रान्त की समुचित सेवा की है, और अपने कर्त्तव्य का उत्तरदायित्व

समझते हुए यह दिनों दिन कर्त्तव्य-क्षेत्र में अग्रसर होता जाता है। हर्ष की बात है, कि इसके अभिनव सहयोगी 'देश' ने भी 'पाटलिपुत्र' की सहायता करने की ठानी है। भगवान, बिहार के इन असमय बन्धुओं को चिरायु करें।

आप कहते हैं, कि बिहार में अब जागृति हो चली, हमारे सोने की रात कट चली; लेकिन कहां की जागृति, कहां का सुप्रभात! आप के यहां आज एक दैनिक पत्र भी नहीं है। ऐसी दशा में आप के यहां किसी बात का आन्दोलन होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

बिहार में पुस्तक-प्रकाशन का उल्लेख योग्य कार्य्य 'पुस्तक भण्डार प्रेस'। 'सत्साहित्य ग्रन्थ माला', खड्ग विलास प्रेस और प्रेम मन्दिर कर रहे हैं; पर खड्ग विलास प्रेसके अध्यक्ष महोदय साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशनका कार्य्य और तत्परता से करते, तो हिन्दी का बड़ा उपकार होता। हिन्दी के प्राचीन सेवक खड्ग विलास प्रेस से हमें बहुत कुछ आशा है, और प्रिय प्रवास तथा भारत की शासन पद्धति के समान महत्व पूर्ण ग्रन्थ रत्नों के लिये मातृ भाषा हिन्दी लोलुप दृष्टि से उसकी ओर देख रही है। प्रेम मन्दिर ने प्रेम सम्बन्धी पुस्तकों को प्रकाशित कर हिन्दी में अभिनव साहित्य की सृष्टि की है। साथ ही समयानुकूल उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करने की ओर भी अब उनका ध्यान गया है, यह प्रशंसनीय है।

हिन्दी के मैदान में इस समय जो सैनिक काम कर रहे हैं, उनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथी वयोवृद्ध पं० विजयानन्द जी त्रिपाठी (श्री कवि) बा० शिवनन्दन सहाय, पं० चन्द्रशेखर

शास्त्री. बा० व्रजनन्दन सहाय, पं० सकल नारायण पाण्डेय, प्रो० पं० राधाकृष्ण झा, पं० अक्षयवट मिश्र प्रभृति बिहारी लेखकों का नाम उल्लेख योग्य है । साहित्याचार्य्य पाण्डेय रामावतार शर्म्मा का नाम हिन्दी लेखकों के लिये गौरव जनक है; पर दुःख की बात है कि शर्म्मा जी की प्रवृत्ति अब इस ओर नहीं है। नवयुवकों में पं० ईश्वरी प्रसाद शर्म्मा प्रभृति हिन्दी की अच्छी सेवा कर रहे हैं ।

हां, यहां पर एक बात के सम्बन्ध में उल्लेख करना परमावश्यक है । वह है, बिहारी हिन्दी । बिहारियों के ऊपर, बड़ी आसानी से जो चाहता है, वही बिहारी हिन्दी लिखने का अभियोग लगा कर उन्हें कलङ्कित करने का दुष्प्रयत्न करता है । प्रिय सज्जनवृन्द ! बिहारी हिन्दी, भोजपुरी, मगहिया, मैथिली बोली के समान कोई न तो दूसरी बोली है और न दूसरी भाषा; पर बिहार प्रान्त के लेखकों के द्वारा लिखी हुई पुस्तकों, कविताओं या लेखों में एक दो प्रान्तीय शब्दों को देख कर ही लोग नाक भौं चढ़ा लेते हैं और बस चटपट वे बिहारियों के ऊपर बिहारी हिन्दी लिखने का दोष मढ़ देते हैं । मैं पूछता हूं, कौन ऐसा प्रान्त है, जहां के लेखक प्रान्तीयता के रोग से मुक्त हैं । लेखक जिस प्रान्त का रहता है, जो बोली उसके चारो ओर रात दिन उसे सुनाई पड़ती है, उसके लेखों में उस बोली का समावेश हो जाना स्वाभाविक है ; इस लिये बिहारियों के ऊपर अन्य प्रान्तों की ओर से न तो ऐसा दोषारोपण होना उचित है और न बिहारियों को उस ओर ध्यान देना ।"

महानुभावो ! साहित्य के सम्बन्ध में मुझे जो कुछ कहना

था. मैं कह चुका। आप ही समझें, आज आपके साहित्य की दशा कैसी शोचनीय है—आप ही कहिये, विश्वसाहित्य को आपने क्या दान किया है? विश्वमन्दिर में आपने कहां स्थान पाया है? कारण क्या है ! आप की हलकी चीजों की ओर रुचि है—किसी भावपूर्ण महत्वपूर्ण विषय की ओर आपकी रुचि नहीं। शत वर्ष के अन्दर बंगभाषा आज किस उन्नति के शिखर पर पहुंच गई? आप शतवर्ष के अन्दर कहां तक पहुँचे? इधर जो कुछ आपने लिखा है, उसको समय-प्रवाह न जाने कहां बहा ले जायगा। थोड़ा ही लिखिये; पर अच्छा लिखिये । थोड़ा ही बोलिये. पर बात बोलिये। मिल्टन ने बहुत किताबें लिखी हैं; लेकिन आज Paradise lost नहीं रहता. तब मिल्टन के नाम का पता भी नहीं रहता । एक ही दृष्टि मनुष्य के जीवन को फेर देती है। एक ही लेख, एक ही पुस्तक किसी को अमर बना देगी। यदि चन्द्र कान्ता की शत सहस्र सन्तति हो, आज से कुछ वर्ष बाद उनका पता भी नहीं मिलेगा। आप हजार हजार रुपये खर्च करके आतशबाज़ियां बनाते हैं· दो छन की छटा आँखों को चकाचौंध कर डालती है। फिर वही अंधेरा का अंधेरा । दो घड़ी चमन के फूल किसी फूलदान की शोभा हैं, दो घड़ी किसी कबरी की सुषमा हैं; फिर मेहतर का झाड़ू है. नाबदान का पानी है। आपकी किताबों में जब तक मरीचिमाली की स्थिर किरणें न हों-पारिजात का स्थिर सौरभ न हो. फिर दो घड़ी के जी बहलाने के निमित्त लिखने से फ़ायदा ! आज हिन्दी में न बंकिम हैं, न रवीन्द्र नाथ; न गिरीश हैं, न द्विजेन्द्र नाथ। इस अभाव को दूर करना हमारा एकांत धर्म्म है।

आज हमारे समाज का रूप दिन दिन परिवर्तित हो रहा है, हमारे भावों में, हमारे उद्देश्यों में एक विकट चाञ्चल्य देख पड़ता है, हमारे अन्तरका पुञ्जीभूत हाहाकार समग्र वाह्यिक बन्धनों को तोड़ कर ऊपर जाना चाहता है. ऐसी दशा में साहित्य का आदर्श स्थिर रहना कठिन है, लेकिन आप इस दो घड़ी की खलबली को भूल कर उस चिर सत्य, हमारे जातीय जीवन तथा मानव जीवन के अजस्र प्रश्नों की ओर दृष्टि देकर अपने साहित्य की सृष्टि करें ताकि आपकी कीर्तिलता जगत की फुलवारी में सदा के लिये हरी भरी रहे।

प्रिय सज्जनों! अब आप अपनी राष्ट्र–भाषा के प्रचार पर विचार करें। इस सम्बन्ध में पहला नाम महात्मा गान्धी का है। आज उन्हीं के प्रयत्न का फल है, कि सुदूर मद्रास प्रान्त में भी हिन्दी की चर्चा है। पुराणों में हम पढ़ते हैं, कि भगीरथ ने असाध्य परिश्रम करके स्वर्ग की मन्दाकिनी इस आर्य–भूमि में लाकर अपने पूर्वजों का उद्धार किया था। आज हिन्दी की सजीव धारा को पंजाब से मद्रास तक विस्तार करने का प्रयत्न मेरी समझ में भगीरथ प्रयत्न से कुछ कम नहीं। वही मनुष्य, इस जगत में असाध्य साधन कर सकता है, जिसे अपने लिये कोई साधन न हो। भगवान, महात्मा गांधी को चिरंजीवी करें।

आपके विहार प्रान्त में भी हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता है। सम्मेलन के अवसर पर "पाटलि पुत्र", में 'छोटानागपुर में हिन्दी' शीर्षक एक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ था, जिसमें अकाट्य

युक्तियों से बताया गया था, कि वहां हिन्दी का प्रचार कैसे हो सकता है। जहां तक मुझे स्मरण है, लेखक ने इस बात पर ज़ोर दिया था, कि वहाँ समाचार पत्रों द्वारा हिन्दी का प्रचार बड़ी सुविधा के साथ हो सकता है। मेरा तो विश्वास है, कि समाचार पत्र, पुस्तकालय, वक्तृता और नाटक मंडलियों के द्वारा किसी भी प्रान्त में हम हिन्दी का प्रचार बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। अब हिन्दी का प्रचार करते समय हमारे मार्ग में रुकावटें नहीं आ सकतीं। हमारे मुसलमान भाई भी कबीर, रहीम, रसखान प्रभृति की तरह अब हिन्दी की सेवा करना अपना सौभाग्य समझते और हमारे राष्ट्रीय मुसलमान अपनी राष्ट्र भाषा का घर घर प्रचार देखने के लिये उत्कण्ठित हो रहे हैं। जिस समय अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता पर ध्यान जाता है, उसी समय हमारा कृतज्ञ हृदय मि० मज़हरुलहक, मि० सरवद हसन इमाम, नवाब सरफराज हुसैन खां, श्रीयुत पीरमुहम्मद मूनिस प्रभृति मुसलमान सज्जनों की ओर देख आनन्द से भर उठता है। अब मैं उन भयंकर दिनों की चर्चा करना नहीं चाहता जब हिन्दी की उन्नति के मार्ग में एक से एक अड़चनें लगाई जाती थीं। अब तो हमारा कर्त्तव्य यह होना चाहिये, कि हिन्दू मुसलमानों की सम्मिलित शक्ति के सहारे हिन्दी की विजय वैजयन्ती घर घर फहरा दें। दुःख की बात है, कि इस पुनीत कार्य में हमारे हिन्दू भाई पूरी दृढ़ता के साथ अग्रसर नहीं होते। कहां मुसलमान तो उर्दू को हिन्दी के गर्भ में विलीन कर अपने राष्ट्र-प्रेम का ज्वलन्त परिचय दें और कहां हमारे हिन्दू वकील, कचहरियों में

धड़ल्ले के साथ "मुद्दई के दावा में तमादी लग गई" की जगह "बदावी मुद्दई तमादी मसिर है" और "दस्तावेज़ जिसकी नालिश हुई है" के स्थान पर "वसीके मुबनाय अलैहदावी" प्रभृति कर्णकटु बम्बास्टिक शब्दों का प्रयोग कर भोली भाली ग्राम्य जनता की परेशानी बढ़ा रहे हैं। ऊपर के जिन दो शब्दों का मैंने उल्लेख किया है, उन्हें मैं इस लिये बुरा नहीं समझता, कि वे अरबी फारसी के शब्द हैं, बल्कि इस लिये, कि इन शब्दों को सुन कर साधारण पढ़ी-लिखी हिन्दू और मुसलमान दोनों जनता भौंचक हो जाती है। मैं यह भी कह देना चाहता हूँ, कि संस्कृत के कड़े कड़े अप्रचलित शब्दों का व्यवहार तथा समासों की भरमार भी सर्व साधारण में आपकी राष्ट्र भाषा के प्रचार के पथ में रुकावटें होती हैं।

मेरी समझ में हिन्दी और उर्दू को दो समझ कर विरोध करना भूल है। लिपि अवश्य भिन्न है; लेकिन भाषा और भाव में कुछ विशेष अन्तर नहीं। दोनों का व्याकरण भी करीब२ एक ही है। हिन्दी की छोटी बहन उर्दू की जन्मभूमि भी इसी देश में है। दोनों का रूप समान है-चाल चलन एक है; लेकिन आज दो परिच्छेदों में सज कर दो घर में जा कर बिलकुल दो हो गई हैं। पण्डितों ने संस्कृत के मोटे मोटे गहने पहना कर हिन्दी को सर्व साधारण के प्रेम से अलग कर दिया। मौलवियों ने फारस और अरब के बांकरे पहना कर दरबारों के क़ायदे सिखा कर उर्दू को खास अपने घर की चीज़ बना डाली। एक दिन दोनों बहिनें एक

ही जगह पर एक ही साथ पली थीं। आज ये विरोधिनी हो कर हमारी उन्नति में बाधा होती हैं। आज जो भेद पड़ गया है, इसे मिटाना पहाड़ तोड़ना है। कम से कम बोलचाल की भाषा से तो यह भेद उठा दिया जाय, ताकि आपकी राष्ट्र भाषा के प्रचार का पथ सुगम हो। आज हिन्दु-मुसलमानों की जन्मभूमि एक है, जल वायु एक है–राजनीति एक है–फिर भाषा एक क्यों न हो ?

नागरी लिपि बड़ी सुगम है। रोमन और फारसी लिपि एक तो हमारे देश की नहीं, दूसरे बड़ी टेढ़ी हैं–आसान नहीं। आज बड़े बड़े धुरन्धर विद्वानों का मत है कि नागरी लिपि ही राष्ट्र लिपि बनने के योग्य है। स्वर्गवासी पं० केशवराम भट्ट के प्रयत्न से बिहार की कचहरियों में नागरी लिपि को स्थान मिल गया है। सरकारी सूचनाएं कचहरियों से जितनी निकलती हैं, वे प्रायः सभी देव नागरी लिपि में ही निकलती हैं ; पर दुःख, लज्जा और कलङ्क की बात है, कि हमारे वकील समुदाय और कचहरी के अन्यान्य अमले देव नागरी की ओर से उदासीन हो, वही पुरानी लकीर पीटे जाते हैं। कैथी का प्रेम अब तक नहीं टूटता। अच्छा होता, यदि प्रान्तीय हिन्दीसाहित्यसम्मेलन और नागरीप्रचारिणी सभाएं युक्त प्रान्त के समान अपने यहां भी कचहरियों में कुछ वैतनिक नागरी प्रेमी नवयुवकों को नियुक्त करतीं, जो कचहरियों के अर्जीदावे वगैरः जरूरी जरूरी चीजें मुफ्त में नागरी लिपि में लिख दिया करते। क्या प्रान्तीयसाहित्यसम्मेलन एक दो भी ऐसा साहित्यिक संन्यासी नहीं तय्यार कर सकता है, जिनके द्वारा

हिन्दी के मुख की गौरव–लाली बढ़े ? दुःख की बात है, कि यहां काशी की नागरीप्रचारिणी सभा के समान एक भी कार्य्य कुशल ऐसी संस्था नहीं, जो इस पुनीत कार्य्य को अपने हाथ में ले सके ।

आजकल दिनोंदिन जो नागरीप्रचारिणी और हिन्दी हितैषिणी संस्थाओं की उत्पत्ति हो रही है, उनसे मेरी यह बिनती है, कि वे काशी की नागरीप्रचारिणी सभा का अनुकरण करें, तो बड़ा काम निकले और हमारी मातृभाषा का महान उपकार हो । प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का काम यदि गया की मन्नूलाल–लाइब्रेरी की तरह किया जाता, तो साहित्य के एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति होती ।

प्रचार का काम सुसम्पन्न करने के लिये हिन्दी की नाट्य मण्डलियों की बड़ी आवश्यकता है । नाटक मण्डलियों के द्वारा एक पंथ दो काज होगा । हिन्दी का प्रचार, रुचि का परिमार्जन, और मनोरञ्जन ये तीन काम नाटक मण्डलियां बड़ी आसानी से कर सकती हैं । यदि बिहार का शिक्षित समुदाय अवकाश के अवसरों पर अपनी नाटक मण्डली ले उड़ीसा, संथाल परगना प्रभृति स्थानों में जा कर हिन्दी के प्रचार का प्रयत्न करें, तो बड़ा उपकार हो ।

सज्जनो ! बिहार को हिन्दीभाषा–भाषी प्रान्त कहते हुए भी मैं उन तीन बोलियों को कदापि नहीं भूल सकता हूं, जो हिन्दी

की उन्नति में रुकावट पहुँचाती हैं। आप लोग समझ गये होंगे, उन तीन बोलियों से मेरा मतलब भोजपुरी, मगहिया और मैथिली बोलियों से है। दुःख की बात है, कि कुछ लोग अपनी इन घराऊ बोलियों को भाषा का रूप देने का दुराग्रह कर रहे हैं। जो बोली रात दिन हम लोग अपने घरों में बोलते हैं, उन बोलियों में भी कविता या सङ्गीत का होना स्वाभाविक है। भोजपुरी बोली में विरहा प्रभृति ग्राम्य छन्दों को छोड़ दीजिये, चुटीली चुटीली कविताएं भी हैं। मगही बोली में भी हैं ; पर इस लिये इन्हें राष्ट्र भाषा हिन्दी के सामने भाषा कह कर पुकारना पुकारने वाले की अयोग्यता और अदूर दर्शिता ही नहीं बताता, बल्कि उनके लिये वह एक खन्दक भी तैयार कर रहा है, जिसमें पतित हो कर वे अपना अस्तित्व गंवा देंगे। वह ज़माना गया, जब अपनी अपनी खंजड़ी पर अपना अपना राग आलाप कर हम अपनी जड़ खोद रहे थे। जिस समय विशाल भारत की जनता, राष्ट्र भाषा हिन्दी का विजयस्तम्भ अपने हृदय में स्थापित कर रही है, उस समय आप अपने जले हुए हृदय पर डेढ़ ईंट की मस्जिद उठाने का प्रयत्न कर उपहास के पात्र मत बनिये। इसमें आपका कल्याण नहीं है।

महोदय गण ! सभी देशों में उस देश की भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती है ; पर भारत वर्ष ही एक अभागा देश है, जहां उसके बालकों को विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा दे, उनकी प्रतिभा का ह्रास किया जाता है। Committee of Public Instruction

के सभापति लॉर्ड मेकाले ने भारतीय भाषा को शिक्षा विभाग से दूध की मक्खी के समान निकाल कर जो अनुचित प्रयत्न किया था, वह हमारे दुर्भाग्य से सफल हुआ। उस पर से अंगरेजी के राजभाषा होने के कारण प्रायः सभी महकमे के काम अंगरेजी भाषा में होने से नौकरी पेशा लोगों को विवश हो कर अपनी मातृभाषा की प्यारी सुखद गोद छोड़ कर विदेशी बीबी के प्रेम में लुब्ध होना पड़ा। विदेशी शासन का भाव हमारे सामाजिक तथा नैतिक भावों पर पड़ने के साथ साथ हमारे साहित्यिक जीवन पर भी बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। अब हमारे बच्चे अंगरेजी के पीछे पड़ शरीर, प्राण, तथा सम्पत्ति सब नष्ट कर रहे हैं। आज अंगरेजी के बज्रपात से सैकड़ों नहीं लाखों करोड़ों भारत के आशा-कुसुम अपना अस्तित्व गंवाकर न मालूम कहां विलीन हो गये, जिनका कुछ नामो निशान नहीं है। यह क्षति हमारे लिये असह्य है।

कर्म्मवीर महात्मा गांधी ने बरोच के गुजराती शिक्षा-सम्मेलन के सभापति की हैसियत से कहा था, कि "शिक्षा में निपुण लोगों की सम्मति है, कि जो शिक्षा आंगल भाषा को माध्यम रखकर १६ वर्षों में दी जाती है, वह मातृ भाषा में १० वर्षों में दी जा सकती है। यदि हमारे हजारों नवयुवकों की जवानी के ६ वर्ष बच जायं, तो देश को क्या कम फायदा है!" इस एक बात से आप लोग समझ सकते हैं, कि अंगरेजी द्वारा शिक्षा देने से हमारे नवयुवकों की, देश की, कितनी बड़ी क्षति हो रही है। यूरोप के बेन साहब कहते हैं:—

"Much is possible in the way of economising the plastic power of human system and when we have pushed this economy to the utmost, we have made perfect the art of education in one department"

अंगरेज़ी में हमारी समग्र शिक्षा का प्रबन्ध होना हमारे लिये हानिकर ही नहीं, अस्वाभाविक भी है। अब जागृति का युग है। अपनी हानि लाभ का ज्ञान हमें भली भांति हो गया है। ऐसी दशा में अब हमें उचित नहीं, कि कोई हमें ज़हर की घोंटी देता जाय और हम उसे घोंटते जांय। राष्ट्रीयता के युग में राष्ट्रीय विद्यालयों द्वारा भाषा की प्रधानता रख हमें चाहिये, कि हम अपने बालकों को सुशिक्षित करें। माननीय मालवीय जी के हिन्दू विश्वविद्यालय से हम लोगों को ऐसी ही आशा थी। अब हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये रुपये देने वाले सभी प्रान्त वासी एक स्वर से हिन्दी की राष्ट्रीयता स्वीकार कर रहे हैं, ऐसी स्थिति में कोई कारण नहीं रह जाता, जिस से हमारी राष्ट्र भाषा का हमारे विश्वविद्यालय से अपमान हो और हिन्दी को प्रधानता न दी जाय।

सरकारी स्कूलों में जो हिन्दी पढ़ाई जाती है, उसका प्रबन्ध अच्छा नहीं है। यद्यपि स्कूलों में जितनी हिन्दी पढ़ाई जाती है, वह पर्याप्त नहीं है; पर उसकी भी स्थिति संतोष जनक नहीं। कुछ दिनों तक इतिहास के प्रश्नों का उत्तर वर्नाक्युलर में लिखने की आज्ञा थी। दुःख की बात है, कि पटना युनिवर्सिटी ने हिन्दी के

इस अल्प अधिकार पर भी अंगरेजी का अधिकार जमा दिया। युनिवर्सिटी के इस प्रबन्ध से हिन्दी संसार के हृदय में बड़ी गहरी चोट बैठी है।

कौलेजों में भी हिन्दी की पढ़ाई का समुचित प्रबन्ध नहीं है। वहां जो हिन्दी पढ़ाई जाती है, वह एक खिलवाड़ की तरह है। यदि युनिवर्सिटी की ओर से हिन्दी को कुछ महत्ता दी जाती, तो इसका सुधार हो जाना सहज था। अच्छा हो, यदि पटना युनि-वर्सिटी हमारी राष्ट्रभाषा को अपने हृदय में स्थान देती। और हिन्दी को भी अन्यान्य विषयों के समान पद देती।

कितने दुःख की बात है, कि कलकत्ता युनिवर्सिटी में तो हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा हो और पटना युनिवर्सिटी हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त की युनिवर्सिटी होकर भी हिन्दी में एम० ए० की पढ़ाई का प्रबन्ध न करे।

महानुभावो! आज कल अंगरेजी का दौर दौरा है। हमारे कितने देश-शिरोमणि आज अंगरेजी के भक्त बने हैं। उनके प्राणों की समग्र प्रतिभा, उनकी लेखनी की समग्र शक्ति, आज एक विदे-शीय भाषा के निमित्त खर्च होती है। यही प्रतिभा, यही शक्ति, यदि मातृभाषा की सेवामें अर्पित होती, तब आज हम अपने कर्त्तव्य पथ पर न जाने कितना आगे बढ़े रहते। अंगरेजी साहित्य एक विराट समुद्र है। इसका मन्थन करना कुछ आसान काम नहीं। आप अपना शरीर देकर, मस्तिष्क देकर इसका लाख मन्थन करें— लेकिन जिस रत्न को आप ढूंढ़ते हैं—उसे आप पाते नहीं। यदि

आजीवन मन्थन के बाद लक्ष्मी मिली, तो क्या मिली। चंचला की दृष्टि दो घड़ी की चिकनी चांदनी है। यदि मदिरा का मटका मिला तो क्या मिला? उच्च पदवी की लपट में जो नशीली मोहिनी मदिरा है, उसी से मस्त रहना जीवन की चरितार्थता नहीं। लेकिन जिस चीज की तलाश है, वह अमृत का घड़ा तो मिलता नहीं, जिसकी दो घूट पीकर आप सदा के लिये अमर हो जायँ, अनन्त की सीमातक पहुंच जायं। और अगर कहीं विष निकला, तो यहां कोई नील कण्ठ नहीं, कि उसे अपने कण्ठ में रख कर आप या आप के समाज का परित्राण कर सके। मधुसूदन ने इसी समुद्र के मथने में अपने प्राण-धन यौवन को गला डाला। लेकिन अमृत का घड़ा तो दूर रहे, न लक्ष्मी ही मिली न मदिरा। उन्हें मिली एक भयङ्कर विभीषिका, एक तीव्र हलाहल, जिस ने शरीर, कुल, धन, धर्म आचार सभी को जला कर खाक कर डाला। बायरन बन कर जगत स्तम्भित कर देने की लालसा भीतर ही भीतर हृदय पञ्जरों को तोड़ती रह गई। और यदि वह अपने मित्रों के अनुरोध पर फिर अपनी मातृभाषा की शरण में नहीं गिरे रहते-अपने देश की बोली में अपनी प्रतिभा का उद्गार नहीं दिखाते, तब कब सम्भव था, कि खैराती अस्पताल के लांछित एक कुलाङ्गार दरिद्र ईसाई का जनाज़ा शत शत वंग-शिरोमणि के कंधे पर अपनी समाधि को पहुंचता। यदि मेघनाद-वध की मृत्युञ्जयी वाणी नहीं रहती तब आज Captive Lady के प्रणेता को कवियों की अमरावती में उच्च आसन कहां से मिलता? रमेश दत्त, सिविलियनों में शिरोमणि थे, अंगरेजी के धुरन्धर विद्वान थे। लेकिन आज कौन

ऐसी उनकी अंगरेजी की पुस्तक है, जो उन्हें मरने से बचा सके ? यदि बङ्किम बाबू की बातों में आकर उनकी चित्तवृत्ति बंग भाषा की सेवा की ओर नहीं फिरती, तब आज घर घर शत सहस्र बंग नारियों के अवसर का चिरन्तन सङ्गी उनका बंगविजेता कहां से होता ? इसी लिये रवि बाबू ने अंगरेजी में अनुवाद के अतिरिक्त किसी मौलिक ग्रन्थ पर लेखनी नहीं उठाई। आज दुनियां उनकी गीताञ्जलि को उनकी अपनी जबान में समझती, तब Noble Prize कौन पूछे, उन्हें क्या नहीं दे देती ? सज्जनो ! मैं यह नहीं कहता, कि आप अंगरेजी पढ़ना छोड़ दें। जिसका राज है, उसकी भाषा जानना जरूरी है। आप अंगरेजी अवश्य पढ़िये; लेकिन अंगरेजी ही के रंग में रंग मत जाइये, उसी के मन्थन में अपना सर्वस्व मत खो डालिये। जिस मिट्टी को बचपन में आप की माता ने आपके मुख से उगलवाया है, उस मिट्टी की माया कभी छूट नहीं सकती। जिस ज़बान में आप की माता ने आपको तुतलाना सिखलाया है, उस ज़बान की ममता किस सपूत के हृदय से जायगी ? अंगरेजी कभी आपकी अपनी नहीं हो सकती। उसमें आप गाते नहीं, रोते नहीं, हंसते नहीं तथा अन्तर से बोलते नहीं। जिस भाषा के साथ केवल आपके मस्तिष्क का संयोग है, प्राणों का नहीं, उस भाषा में आपके प्राणों का निसर्ग उच्छ्वास कैसे आ सकता है ? विदेशीय भाषा में आपकी प्रतिभा कभी खेल नहीं सकती। दूसरे की ज़बान में आपकी अन्तर आत्मा कभी अमर नहीं होगी।

प्यारे नवयुवक, हम अंगरेजी के विद्वान अवश्य हों, अंगरेजी के भक्त कदापि नहीं। अभी तक हम सब जब मिलते हैं, तो

बिलावजह अंगरेजी में बातचीत करते हैं ; नहीं तो आधी हिन्दी आधी अंगरेजी बोलते हैं। अंगरेजी ही में ख़त लिखते हैं, यद्यपि हिन्दी लिखने की क्षमता कुछ कम नहीं। नौकरी के लिये निवेदन पत्र हो, प्रेम की चुहचुहाती बातें हों, आपस का समाचार हो, दूकान से चीजें मंगानी हों, सामान्य बातें हों, या बड़ी बातें हों, सभी बातों में आज अंगरेजी का सिलसिला जारी है। हमारी लेन देन, व्यवहार बिहार, मेल जोल सब अंगरेजी ही में है। हम डायरी भी लिखते हैं अंगरेजी में, अपने घर का प्रति दिन का खर्च भी अंगरेजी ही में टांकते हैं। सभा, समिति के सभी कामों को अङ्गरेजी में चलाते हैं। यहां तक, कि जो लोग अङ्गरेजी नहीं जानते, वे भी अङ्गरेजी में स्वाक्षर करना अवश्य सीख लेते हैं। यदि किसी हिन्दी के विद्वान के साथ संलाप का अवसर आया, तब हिन्दी के शब्द टटोलते टटोलते नाकों पर दम आ जाता है। आज पचास वर्ष से हमारे यहां यही हवा थी ; परन्तु प्रसन्नता इतनी है, कि अब हवा पलटी है। प्रिय नवयुवक वृन्द, तुम्हीं हमारे आशा कुसुम हो। अब तुम्हारे ही स्कंधों पर मातृभाषा की सेवा का भार है। तुम्हारे अन्तर में आज नवीन पुलक है—नवीन उत्साह है। तुम्हारी दृष्टि हिन्दी साहित्य की ओर तथा हिन्दी के प्रचार की ओर फिरी है। तुम्हारे ही नेता, देश के सच्चे-भक्त अङ्गरेजी के धुरन्धर विद्वान, बिहार के नवीन गौरव, हमारे बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने प्रथम-प्रथम बिहार प्रान्तीय राजनीतिक सभा (Behar Provincial Conference) में सभापति के आसन से अपनी पूरी वक्तृता हिन्दी में दी है। यही हमारे आज पथप्र-

दर्शक हैं। तुम्हारी ही देखा देखी आज हमारे बड़े बड़े देश नायक भी बाध्य हो कर हिन्दी में स्पीचें देते हैं। तुम्हारे ही प्रयत्न से हिन्दी साहित्य सजीव हो उठा है। हिन्दी के कट्टर-कट्टर विरोधी आज हिन्दी के भक्त बन रहे हैं। तुम्हारी रुचि अब वह पुरानी रुचि नहीं। अब तुम अपना उत्तर दायित्व समझते हो। तुम्हें आज अपने देश का, अपने साहित्य का अभिमान है। अब तुम जानते हो "मुहूर्त्त ज्वयितंश्रेयः न च धूमायितम्बरं"–अब तुम समझने लगे हो कि विश्वलोचन के सामने तुम्हारी बातों की, तुम्हारे लेखों की' तुम्हारे कामों की परीक्षा होगी। मुझे पूर्ण विश्वास है, अब वह दिन दूर नहीं, जब एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त वालों से अपने विचारों को अङ्गरेजी के बदले राष्ट्र भाषा हिन्दी में प्रकट करेंगे। वह दिन भी दूर नहीं, जब हमारा सामयिक साहित्य भी अपनी महत्ता को पहुंच कर विश्ववाटिका का एक अनुपम सौन्दर्य्य होगा। तुम्हारे ही भरोसे हमारी माता के मुख की लाली है। अभी तुम्हारे कामों का श्रीगणेश हुआ है–अभी तुम्हारा पथ सुगम नहीं–तुम्हें पहाड़ ढाहना है। भगवान तुम्हारे संकल्प दृढ़ करें, तुम्हारे प्रयत्न सफल करें, तुम्हारे मुख में तुम्हारी वाणी वह स्फुरन्त धारा हो, कि वह जिधर चले, उधर प्रलय मच जाय। तुम्हारे हाथों में में तुम्हारी लेखनी वह जीवन्त शक्ति हो, कि वह जिधर झुके, उधर संसार झुक जाय।

प्यारे नवयुवको! मुझे जो कुछ कहना था, मैं कह चुका। केवल अब एक बात रह गई। आज तुम्हारे धर्म्म पर, तुम्हारे

साहित्य पर, तुम्हारे समाज पर सैकड़ों योजन से आकर एक विदेशीय प्रभाव पड़ रहा है। तुम इससे भाग मत खड़े हो। जहां तक तुम्हारे भीतर बिना विप्लव उठाये, यह खप सके, इसे खपने दो। यदि यह तुम्हारे प्राणों की गति को मुक्त करता है—तुम्हारे विचारों को उदार, उच्च, स्वाधीन बनाता है—इसे बे रोकटोक आने दो; परन्तु इसका यह मानी नहीं है, कि तुम इस रंग से इस तरह रंग जाओ, कि तुम्हारे अपने रंग का फिर पता न चले। तुम्हें इससे जो कुछ सीखना है, अवश्य सीखो; पर इस सीखने में कहीं अपने घर की शिक्षा मत भूल बैठो। जब तक तुम्हारी अपनी जातीयता है, अपनी विशिष्टता है, तभी तक तुम्हें पराये भी पूछते हैं और कहीं पराये के प्रेम में फंस कर तुम पराये बनने चले, तब जो पराया है, वह पराया ही रहेगा और तुम्हारा अपना भी तुम्हारे हाथों से छूट जायगा। तुम्हारा धर्म्म, तुम्हारा साहित्य तुम्हारा समाज ये कुछ आज के नहीं। इनके बने न जाने कितने वर्ष हो गये। इन्हीं में तुम्हारे पूर्वजों की प्राण शक्ति भरी है। इसी धर्म्म, साहित्य और समाज संगठन से तुम्हारा जातीय जीवन बना है। अभी तक यह बिराट मन्दिर समय के चपेटों को—हजार हजार विप्लवी झकोरों को सहता हुआ खड़ा है। जगत के और कितने पुराने मन्दिर भूतलशायी हो चुके; लेकिन यह अभी तक उसी भाव से ठहरा है। आज इस पर एक नवीन प्रलयी धक्का आ रहा है, जो इसकी नींव को भी हिलाया चाहता है। अब तक तुम अपने मन्दिर को बाहरी धक्कों से बचाते रहे; लेकिन आज तुम्हीं में से कितने हैं, जो इसे जड़ से उखाड़ कर इसकी जगह पर

एक दूसरा नया मन्दिर बनाना चाहते हैं। ऐसा मत करो। फिर ऐसा जगतसुन्दर मन्दिर तुम निर्माण नहीं कर सकते। हां, जहां २ इसका रंग धुल गया हो, वहां वहां नया रंग चढ़ा दो. दीवालों पर जमी हुई काई को निचोड़ कर फेंक दो, जहां तुम्हें फांक दीख पड़े नई गच से भर दो। हम मानते हैं–इतने दिनों का बना हुआ मकान अब समयोपयोगी नहीं हो सकता। तुम्हारे खयालात अब पुराने नहीं, तुम जगत की हवा से वञ्चित हो कर बन्द नहीं रह सकते। ठीक है–तुम कोठरियों में खिड़कियां खोल दो. जहां अंधेरा मालूम हो. वहां नई रोशनी की किरण भर दो, जो जगह संकीर्ण हो. उसे प्रशस्त. उदार कर दो; लेकिन इन मजबूत दीवालों को तोड़ मत डालो–इस किले के टुकड़े उड़ा कर अपने ही हाथों से अपनी स्थिति का तख़्त मत उलट दो। अब वे शिल्पी नहीं—वे कारीगर नहीं. जो ऐसी इमारत तैयार कर सकें; वे पत्थर नहीं–वे मसाले नहीं. कि ऐसी लोहे की दीवाल खड़ी कर दें। इसके मिटाने से तुम्हारा नामोनिशान मिट जायगा। तुम्हारे पूर्वजों ने अपना सर्वस्व गला कर इसकी नींव डाली है–अपनी धमनी की अमर तरुण शक्ति दे कर इसे इतना बड़ा बनाया है। तुम्हारा गौरव यही है–तुम्हारा सौन्दर्य्य यही है। जगत का मनोहर—स्वर्ग का सहोदर यही है। भगवान, इस मन्दिर को चिरजीवी करें।



तृतीय

बिहार-प्रादेशिक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

बाबू शिवनन्दन सहाय

का

भाषण

श्रीः

स्वागत कारिणी समिति के माननीय सभापति तथा प्रान्तीय प्रिय प्रतिनिधि सज्जन और भ्रातृगण !

आज बड़े आनन्द का समय है कि आप लोग इस पुरातन पुण्य स्थान में मातृभाषा की सेवा सम्बन्धिनी बातों के विचार और निर्णय के लिये इकट्ठे हुए हैं; और हमारा सौभाग्य सूर्य्य उदय हुआ है कि आप लोगों ने इस महान् यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये हमें भी बुला भेजा है। पुराकाल में इस सुखद शरद ऋतु में श्री माता भगवती की नवरात्र-पूजा सम्पन्न कर एवं विजयादशमी का उत्सव मनाने के अनन्तर, भारतवासी वणिज व्यापार के लिये और राजे महाराजे देशाटन, शत्रु-दमन तथा राजकाज साधन के लिये घर से प्रस्थान करते थे। अच्छा किया कि आप लोग भी विजया-दशमी की पूजा से निवृत्त हो श्री सरस्वती की आराधना और मातृभाषा के सेवासाधनार्थ उपर्युक्त समय पर यहां उपस्थित हुए हैं। नवरात्र में सरस्वती शयन करती हैं। परन्तु इस समय तो वे शयन में नहीं हैं; निश्चय जाग रही हैं। इस समय एकाग्रचित्त हो उनकी पूजा कीजिये, एक स्वर से उनकी वन्दना कीजिये, स्तुति कीजिये, प्रार्थना कीजिये; वे निस्सन्देह द्रवित हो कर हमलोगों की मनोकामना पूर्ण करेंगी, कार्य्य सिद्ध होगा।

हम आपलोगों को स्वच्छ हृदय से सहस्र धन्यवाद देते हैं, इस लिये नहीं कि आप लोगों ने आज हमें यह उच्च आसन प्रदान कर हमारा गौरव बढ़ाया है, वरन् इसलिये कि आप लोगों ने अपनी असीम कृपा से हमें भारतवर्ष के एक परमपवित्र स्थल के दर्शन का तथा इस

मातृमन्दिर में मातृसेवा में भाग लेने और योग देने का सुअव-सर दिया है।

हमारी अवस्था के लोगों को तीर्थपर्यटन तथा पुण्यभूमि भ्रमण में सहायता करना तो कर्तव्य है, पर यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि आप ने किस विचार से हमारा आज इतना बड़ा सम्मान किया है। मातृसेवा तो हम से कुछ ऐसी नहीं बन आई जिस से हम ऐसे बड़े पुरस्कार का अपने को अधिकारी समझें। आप लोगों के द्वारा इस प्रकार सम्मानित होने से आज हमें यह पश्चात्ताप और खेद हो रहा है कि हा! हम माता की सेवा में आदि से क्यों नहीं प्रवृत्त हुए। जहां तुच्छ सेवा का ऐसा पुरस्कार, वहां उत्कृष्ट तथा अखण्ड सेवा का क्या पुरस्कार मिलता! प्यारे युवक भ्रातृगण! हम से भूल हुई, बड़ी भूल हुई, समय भी चला गया। अब हाथ मलने और पछताने के सिवाय हमारे लिये कुछ नहीं है; पर आप लोग न चूकें। आप लोग समय की चोटी पकड़ रखें, इसे हाथ से न जाने दें। अभी से मातृभाषा की सेवा में कटिबद्ध हो जाइये। इसके लिये तन, मन, धन सब अर्पण करने को तैयार हूजिये। माता चारोंपदार्थ आप ही आप आप के हाथों में धर देगी।

परन्तु इस खेद के साथ ही हमारे हृदय में आनन्द की लहरें भी लहरा रही हैं, उमंग की तरंगें भी उठ रही हैं। क्यों न हो? स्मरण कीजिये, देखिये, आज हम लोग कहां हैं? आज हमलोग सचमुच माता की गोद में हैं, यहां माता कई रूपों से हमें दीखती हैं। जो नित्य माता के निकट रहते हैं, वे भले ही इस आनन्द का अनुभव न करें, परन्तु हम देखते हैं कि यह जगज्जननी की जन्म-भूमि है, यह वही स्थान है जहां सन्त महन्तों के दिये हुए करस्वरूप

रुधिर बिन्दुओं से पूर्ण घट को परम उद्दण्ड, महा अधर्मी, और अत्याचारी राक्षसपति रावण ने गड़वा दिया था।

उस कलुषित कार्य्य के प्रभाव से जल के अभाव के कारण प्रजा-वर्ग को दुर्भिक्षपीड़ा से पीड़ित देख, जहां स्वयं राजर्षि जनक महाराज ने हल चलाया था, और जहां जगज्जननी जनकनन्दिनी जानकी जी ने भूगर्भ से जन्म धारण कर भक्तजनों का भयमोचन और जगत् का कल्याण साधन किया। उन्हीं के कोप से प्रबल प्रतापी रावण को सपरिवार रणभूमि में भूशायी होना पड़ा और संसार में सदाचार का पुनः प्रचार हुआ।

देखिये वहां लकड़ी के पुल के पास लखनदेवी नदी के किनारे जन्मस्थान की पवित्रता सूचित करते कितने मन्दिर आकाश की ओर देख रहे हैं। आप लोग जानते ही हैं कि इन्हीं की यादगार में श्री जानकीनवमी के दिन यहां भारी मेला होता है। आज नगर २ में, गांव २ में, बस्ती २ में श्रीमाता की मूर्ति मन्दिरों में विराज रही है, परन्तु श्रीसरस्वती के एक जगद्विख्यात प्रिय प्रेमपात्र ने हिन्दी-साहित्य-वाटिका के रामायण रूपी रचना-मन्दिर में विविध भावों से भूषित और अनगिनित अलंकारों से अलंकृत माता की जो मूर्ति खड़ी की है वह सहज सोहावनी और महा मनमोहनी है। उसकी सौंदर्य्य-छटा देख केवल यहीं के लोग मुग्ध नहीं होते, अन्य देशीय भी मोहित हो रहे हैं। श्रीसीताराम की बनयात्रा के सम्बन्ध में पादड़ी एडविन ग्रीव्स कहते हैं—"मेरी समझ में सम्पूर्ण रामायण में ऐसी सुन्दरता और रोचकता कहीं नहीं मिलती जैसी इस स्थान में दिखलाई देती है।" आइये, हम लोग यहीं से श्री जानकी माता के पदजलजों में युगल कर जोर नमस्कार करें।

वही करुणामयी माता अन्य रूप से आप के सम्मेलन में विराज

रही है। अब आप लोग इनकी सेवा में चित्त दीजिये। अपने काम को देखिये। सुनिये, हम प्रचलित प्रथा के अनुसार शिष्टाचार की बातों में, अपनी नम्रता निवेदन में, अयोग्यता और कार्य्य अक्षमता प्रकट करने में, आपलोगों का समय व्यर्थ नष्ट करना नहीं चाहते। योग्यता हो या न हो, काम कर सकते हों, या नहीं, पर जब शिष्ट जनों की आज्ञा हुई है, बन्धुओं का अनुरोध है तो करना ही होगा। घर में कोई कार्य्य उपस्थित होने से, कोई उत्सव होने से, घर के सभी लोग मिल जुल कर जिससे जो कहा जाता है यथाशक्ति करते ही हैं, आवश्यकता होने से दूसरे भी उनका हाथ बटा लेते हैं। आप लोगों ने हमारे सिर पर निश्चय भारी बोझा दिया है पर यह तो दृढ़ विश्वास है कि जहां तलमलाते देखेंगे हाथ थाम कर अवश्य कुछ सहारा देंगे। इसी विचार से अपनी कमज़ोरी, काहिली, सब कुछ देखते और जानते हुए भी, हम इस विषय में कुछ कहना व्यर्थ समझ, केवल काम की थोड़ी सी बातें कहने की चेष्टा करेंगे।

सब से पहले हम बिहार के सुप्रतिष्ठित पत्र पाटलिपुत्र के प्रधान सम्पादक प्रिय सोनासिंह चौधरी और प्रेममन्दिर के प्रसिद्ध पुजारी आरा निवासी कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट करते हैं जिससे बिहार दो बड़े हिन्दी साहित्यसेवियों से शून्य हो गया। वेङ्कटेश्वर समाचार के सञ्चालक और हिन्दी में धर्म्मसाहित्य के प्रचारक बम्बई निवासी सेठ खेमराज और पटने के दशम सम्मेलन के सभापति पं० विष्णुदत्त शुक्ल, बी० ए० की आकस्मिक मृत्यु ने भी हृदय को कम व्यथित नहीं किया है। हम इन स्वर्गीय साहित्यसेवियों के लिये आन्तरिक शोक प्रकाश करते हैं।

कोई बिहारियों का हिन्दी भाषा से दूर का सम्पर्क बताते हैं; कोई बिहार में बोली जानेवाली विविध बोलियों के बोलनेवालों में

वैमनस्य का बीज बोते हैं, और कोई बिहारियों के लेखों में दोष ही दिखाने में उद्यत होते हैं। दोष प्रायः ये ही दिखाये जाते हैं कि बिहारी लेखक " ने " विभक्ति तथा लिङ्ग प्रयोग में भूलें करते हैं। ऐसी भूलें होनी सम्भव हैं। इसका कारण भी है। बिहार की उप-भाषाओं में, जिन का घर में व्यवहार होता है "ने" विभक्ति नहीं है; एवं कई कारकों में तथा विशेष्य विशेषण में लिङ्ग का झमेला नहीं। और लिङ्ग प्रयोग में तो हम अन्य प्रान्त के लोगों को भी भूलते देखते हैं। सच पूछिये तो बहुत से शब्दों का अभी तक लिङ्ग निर्णय हुआ ही नहीं और होने का भी नहीं। तब ऐसी भूलों की लाञ्छना केवल बिहारियों पर ही क्यों ? बिहारी लेखकों के लेखों में ऐसी भूलों का अब सर्वथा ह्रास हो गया है। केवल पुरानी धारणा के संस्कार से लोग बिहारी लेखकों में ऐसे दूषण बताते हैं।

बिहार में बोलीजानेवाली किसी उपभाषा का कोई प्रेमी यदि उसे हिन्दी से पृथक् रखना चाहता है तो यह उस की भूल है। इस में उसका लाभ नहीं, उस की क्षति है। सम्मेलन में जो लाभ और प्रतिष्ठा है, वह पार्थक्य में नहीं। देखिये, यदि हिन्दी भाषा के साथ, जो निश्चय कुछ काल में राष्ट्र भाषा बन जायगी, हमारी मैथिलीभाषा सम्मिलित रही, तो उस को सदा के लिये एक उच्च स्थान प्राप्त रहेगा क्योंकि मैथिल-कोकिल (विद्यापति) को हिन्दी साहित्य में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। सुविस्तृत हिन्दी साहित्य आम्रकानन में इस कोकिल की प्रेमभरी मधुर "कुहू कुहू" रव बड़ी उत्कंठा से सुनी जाती है। मैथिली उपभाषा हिन्दी राष्ट्र-भाषा से बिलग कर लीजिए, फिर वह बात कहां ? उस आम्र कानन में इसे कूक के सुनाने का अवसर कहां ? इस कोकिल के विचरण की सीमा परिमित हो जायगी। उद्यान छोड़ाकर इसे

पिंजड़े में बन्द रखने के समान हो जायगा। जैसे कोई बड़े विशाल भूखंड का राजा वा प्रधान एक क्षुद्र गांव का मालिक बना दिया जाय वैसी ही इस की दशा हो जायगी। हमें दृढ़ विश्वास है कि हमारे सुपठित विज्ञ मैथिल बन्धुवर्ग इस पर विचार कर राष्ट्रभाषा से अपना संसर्ग छोड़ाने का ध्यान कदापि स्वप्न में भी नहीं आने देंगे।

जिसका मन चाहे वह हिन्दी भाषा से हमारा दूर का सम्बन्ध बतावे, पर हम बिहारी तो हिन्दी को अपनी भाषा, मातृभाषा मानते हैं और मानते आये हैं। मानते ही नहीं, वरन् आदि काल ही से इस की सृष्टि में, इस की उन्नति में योग देते आये हैं। परन्तु यह सिद्ध करने के पूर्व हम हिन्दी की उत्पत्ति के विषय में कुछ कहने का विचार करते हैं।

बौद्धों की प्रथम सभा के समय अपभ्रंशित संस्कृत गाथा का प्रचार था। संस्कृत भाषा के प्राकृत में परिवर्तन की वह पहली अवस्था थी। ईस्वी के पूर्व ६ ठी शताब्दी से गाथा बोल चाल की भाषा थी। ईसा के पूर्व ३ री शताब्दी में पाली भाषा का जन्म हुआ। अशोक की ओर से बौद्ध भिक्षुकगण इसी भाषा में धर्म्मो-पदेश करते थे और उस समय की प्रशस्तियां भी इसी भाषा में पाई जाती हैं। वह प्राकृत का रूपांतर है और वररुचि तथा पाणिनि की संस्कृत भाषा की मध्यवर्तिनी पाई जाती है। भारत-वर्ष के सर्वसाधारण की बोल चाल की भाषा पाली होने में लोगों का मतभेद है परंतु डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि लोगों की बोल चाल की भाषा पाली ही थी। हम उन से सहमत हैं, क्योंकि अशोक के एक समर्थ राजा होने पर भी यह कदापि सम्भव नहीं कि वे किसी नूतनभाषा का प्रचार

कर उसमें उपदेश दिलवाने लगते और लोग तुरत ही उस भाषा में निपुण हो उपदेशों को समझने के योग्य हो जाते । भाषा सर्व साधारण के मुंह से बनती है, किसी राजा के बनाये नहीं बनती ।

संसार की सारी वस्तुओं के समान भाषा भी परिवर्तनशीला है। समयानुसार उसका रूपान्तर हो जाया करता है। इसी से ईसा की प्रथम शताब्दी में मागधी, सौरसेनी, महाराष्ट्री, गुजराती, पैशाची, और अपभ्रंश, इन कई रूपों में प्राकृत का दर्शन होता है।

इन भाषाओं का कहां २ प्रचार था, इस के सविस्तार वर्णन की आवश्यकता नहीं दीखती। और प्राकृत भाषा का कितने काल तक प्रचार रहा, उसका क्या २ अवस्थान्तर हुआ, उसके उपरान्त और किस २ भाषा का व्यवहार हुआ, इन बातों पर कदाचित् अभी तक घनपटल पड़ा हुआ है किन्तु प्राकृत के उद्भव के लगभग सहस्र वर्षों के पश्चात् ईस्वी दसवीं शताब्दी में हिन्दी भाषा का रूप दृष्टिगोचर होता है। हार्नली साहब के विचारानुसार ८ वीं से १२ वीं शताब्दी के मध्य में प्राकृत का युग सर्वथा लोप हो कर गौडीय भाषा अर्थात् हिन्दी, बंगाली, नैपाली आदि की उद्भव हुई ।

हिन्दी का प्राकृत से समुद्भूत होना जर्मनदेशीय विद्वज्जन म्यूर साहब, दीतासी, हार्नली स्वीकार करते हैं। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो हिन्दी की 'का' विभक्ति को तुरानी भाषा के "क" से उत्पन्न बता कर इसकी उत्पत्ति तुरानी से कहते हैं; और कोई इस के 'को' का द्राविड़ के 'कू' से सम्बन्ध बना कर उसी भाषा से इस का जन्म मानते हैं। परंतु हार्नली तथा डाक्टर राजेन्द्रलाल ने इन लोगों का खूब धुर्रा उड़ा कर इसका जन्म प्राकृत ही से प्रतिपादित किया है।

हमने "हरिश्चन्द्र" नामक पुस्तक के एक परिच्छेद में इस विषय की आलोचना की है। हिन्दी ग्रन्थ में इस विषय का कदाचित् वही पहला लेख था। उसके पीछे कई एक प्रबन्धों और पुस्तकों में इसका विचार किया गया है। कौन विचार कैसा हुआ है, यह पाठक उन्हें स्वयं पढ़ कर जान सकेंगे; पर हिन्दी का प्राकृत से जन्म होना अब प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। इसी से भागलपुर में साहित्य-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन के समय "गत ५० वर्षों में बिहार में हिन्दी की दशा" शीर्षक लेख में हमने लिखा था कि जैसे गंगा हिमालय की गहन गुफा से गंगोत्री की राह बहिर्मुख होकर गंगा सागर की समीपवर्तिनी होने पर द्विधाराप्रवाहिनी हो गई है, वैसे ही हिन्दी भाषा संस्कृत की गम्भीर गुहा से प्राकृत द्वारा समुद्भूत हो कर अवस्थान्तरित होते २, परिपक्वता के समीप पहुंचने पर, हिन्दी तथा उर्दू (हिन्दुस्तानी) दो प्रत्यक्ष रूपों में शोभायमान है। ये दोनों वस्तुतः एक ही हैं, यदि पक्षपात की दृष्टि से नहीं देखी जायँ।

"बाग़ोबहार" के कर्ता ने उर्दू का जन्मस्थान दिल्ली के बाज़ार में बताया है। यह ठीक नहीं। यह पहले से वर्तमान थी। इसका शुद्ध रूप अब भी मेरठ प्रान्त में व्यवहृत होता है।

लखनऊ में सम्मेलन के ५ वें अधिवेशन के सभापति श्री श्रीधर पाठक जी ने भी कहा था कि हिन्दी भाषा का देववाणी संस्कृत से प्राकृत द्वारा उत्पन्न होना सर्वविदित है और हिन्दी शब्द का पंजाब के प्रसिद्ध नद सिंधु से सम्बन्ध होना प्रायः सर्व सम्मत है। कोई हिन्दी और संस्कृत का एक ही उद्गम स्थान बताता है। इससे भी इसका सम्बन्ध संस्कृत ही से सिद्ध होता है।

परंतु हिन्दी के उद्‌भव के समय का अभी ठीक पता नहीं लगा है। ठीक पता लगता है चन्द बरदाई के समय तक का। उस कवि का "रासो" ग्रंथ अब तक वर्तमान है। किन्तु उसके पहले भी किसी न किसी रूप में हिन्दी की निश्चय स्थिति थी। द्विवेदी महावीर प्रसाद जी कहते हैं कि "हमारी हिन्दी भाषा विकाश-सिद्धान्त का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। धीरे २ एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्राप्त हुई है और एक प्रकार से अनादि है। नहीं कह सकते कब से मानवजाति उसके सबसे पहले रूप वाली उसकी पूर्ववर्तिनी भाषा बोलने लगी।"

"हिन्दी" शब्द भी बहुत पुराना है। पारसियों के ग्रन्थ ज़ेन्दावस्ता में "हिन्दव" शब्द का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। वहीं से यह शब्द "इन्दव" रूप धारण कर हिब्रू भाषा में गया है, जिससे अर्बी भाषा की उत्पत्ति हुई है। "दसातीर" नामक ज़रतुश्त की आयतों में "हिन्दू" शब्द व्यवहृत हुआ है। यह शेर "अगर आं तुर्क शीराज़ी बदस्त आरद दिलेमारा। बख़ाले हिन्दुबशबख़शम समरक़न्दो बोख़ारारा" स्मरण रहते भी हम यह स्वीकार करने पर तैयार नहीं हैं कि विजयी मुसलमान घृणासूचक अर्थ में हिन्दू शब्द प्रयोग करने लगे थे। मुसलमानों के माथे हम यह कलंक लगाना नहीं चाहते। फ़ारसी भाषा में इस शब्द का अर्थ "काला" है सही, और उणादि से संस्कृत में इसका वही अर्थ होता हो, पर हमारी हिन्दी भाषा में इसका यह अर्थ नहीं है। हिन्दू और हिन्दी शब्द के प्रयोग में हमें संकोच का कोई कारण नहीं दीखता।

अब हिन्दी-साहित्य, इसकी उपयोगिता, इसका विकाश, बिहार में इसकी भूत और वर्तमान दशा, इसकी त्रुटियां और उनकी पूर्ति के उपाय–इन कई बातों का जानना आवश्यक है।

इसके बिना जाने सम्मेलन अपना कर्तव्य पालन नहीं कर सकता।

साहित्य शब्द का साधारण अर्थ है-सहित होना। सुन्दर भाषा में विविध भाव, विभाव, रस व्याकरण, अलङ्कारादि के सहित नाना प्रकार के पद्य और गद्य में जो रचनाएं की जाती हैं और जिन रचनाओं में माधुर्य्य, मनोहरता, सरलता और रमणीक पदयोजना इत्यादि गुणसमूह सम्मिलित होते हैं, वस्तुतः वही साहित्य कहलाता है। इन्हीं गुणों से भूषित हिन्दी भाषा में जो रचना होती है, उसे हिन्दी भाषा का साहित्य कहते हैं।

साहित्य जातीय शरीर का बल है, प्राण है। जिस जाति में साहित्य का ह्रास है, अभाव है, वह मृतक समान प्राणहीना जाति है। जितनी जातियां पुरातन काल में शक्तिशालिनी थीं और उन्नति के शिखर पर पहुंची थीं, या आजकल विभवपूर्ण देखी जाती हैं उनका साहित्य भी वैसाही श्रीसम्पन्न पाया जाता है। अतएव साहित्य जातीय स्थिति का दर्पण है। सामयिक साहित्य में जातीय स्थिति सर्वदा प्रतिविम्बित रहती है। किसी जाति का जब जिधर रुचि प्रवाह होता है, साहित्यधारा भी उसी ओर बहने लगती है। जाति की उन्नत और अवनत अवस्था का भी पूरा प्रतिविम्ब साहित्य पर पड़ता है। किसी जाति के सामयिक साहित्य से हम लोग जान सकते हैं कि उस विशेष जाति की कब, कैसी, अवस्था रही। साहित्य से विगत कालीन अवस्था ही का पता नहीं लगता, भविष्य की झलक भी नज़र आने लगती है। इससे हम साहित्य को एक दूरबीन ही नहीं, "भूत और भविष्य बीन" भी कह सकते हैं। जाति और साहित्य में अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है। साहित्य की हम उन्नति करते हैं, साहित्य हमारी उन्नति करता है। योग्य तथा दक्ष साहित्यकार अपने साहित्य-बल से जाति के

रुचिस्रोत को भी फेर देता है; अधःपतित जाति को फिर उठा कर खड़ा कर देने की शक्ति रखता है। आगामी अवस्था को पहले से ही नेत्रपथ में खड़ा कर देता है।

आज अपना देश, अपना भेष, अपनी भाषा,—इसी की धुनि चतुर्दिक् से कानों में समा रही है और इसीके यत्न में सब लोग प्राणपण से लगे हुए देखे जाते हैं। किन्तु आज से ४० वर्ष पूर्व कानपुर-निवासी सुविख्यात सुलेखक और कवि पूज्यवर प्रताप नारायण मिश्र ने इस छप्पै में सबों को इसी की चेतावनी दी थी, और इसी की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था :—

"जब लगि तजि सब संक सकुच अरु आस पराई।
नहिं करिहौ अपने हाथन आपनी भलाई॥
आपनि भाषा, भेष, भाव, भाइन भोजन कहँ।
जब लगि, जग मों नहीं जानिहौ उत्तम सब मँह॥
तब लगि उपाय कोटिन करत अगनित जन्म बिताइहौ।
पै साँचो सुख सम्पति कबहुँ, सपनेहुँ नहिं पाइहौ॥

पश्चात् देश का भीषण महाभारत श्रीहरिकृपा से हाल ही में समाप्त हुआ है। परन्तु बहुत दिन पूर्वही लार्ड टेनिसन ने स्वप्रणीत "लोक्सले हाल" नाम्नी कविता के निम्नोद्धृत पदों में भविष्यत् में ऐसी घटना की सम्भावना को प्रगट कर दिया था।

"For I dipt into the future,
far as human eye could see,
Saw the Vision of the world,
and all the wonders that would be;
Saw the heavens fill with commerce,

argosies of magic sails,
Pilots of the purple twilight,
dropping down with costly bales;
Heard the heavens fill with shouting,
and there rain'd a ghatly dew
From the nations' airy navies
grappling in the central blue;
Far along the world-wide whisper
of the south-wind rushing warm,
With the standards of the peoples
plunging thro' the thunder-storm;
Till the war-drum throbb'd no longer,
and the battle-flags were furl'd
In the Parliament of man,
the Fedration of the world."

इतना ही नहीं; साहित्यकार तथा कवि का ख़याल भावना के विमान पर सदा भ्रमण किया करता है। मन में उमंग होने ही से वे आकाश पाताल को एक कर देते हैं। जिसका अस्तित्व नहीं उस को भी एक आकार देकर, उस में भी रंग रूप देकर, मानो उसे सजीव कर दिखाते हैं और उसी से जगत् का कितना उपकार करते हैं। इसी से शेक्सपियर ने कहा है।

"The poet's eye, in a fine frenzy rolling,
Doth glance from heaven to earth,
from earth to heaven,
And, as imagination bodies forth
The forms of thigs unknown, the poet's pen

Turns them to shapes and gives to airy nothing
A local habitation and a name."

अँखिया सुकबीन की घूमि भले उनमत्त समान लखै कबहीं।
नभ मंडल सों भुव ओर कबौं, भुव सों निरखै नभ की दिस हीं॥
सिव ज्यों २ अपूरब वस्तु अजान सुबुद्धि गढ़ै छिन हीं छिन हीं।
कबि लेखनि ताकर चित्र खिंचै, अरु ठाम औ नाम कहै सबहीं॥

प्रायः सब भाषा का साहित्य, गद्य और पद्य, दो खंडों में विभक्त है। हिन्दी साहित्य की भी यही दशा है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही की कृपा और यत्न से इस साहित्य वाटिका का काव्यखंड सुन्दर एवं मनोहर पेड़ पौधों तथा लतागुल्मों से सुशोभित हो रहा है। पूर्व काल में मुसलमान-बन्धु हिन्दी भाषा के कभी द्वेषी नहीं थे। मुसलमानी शासन काल में मुहम्मद क़ासिम से लेकर सम्राट अकबर के राज्य के २५ वें वर्ष तक दरबार में हिन्दी का अधिकार बना रहा। मुसल्मान बादशाहों ने इसे दरबार से बाहर भी नहीं किया। हमारे हिन्दू भाई सुप्रसिद्ध टोडरमल्ल ही की कृपा से हिन्दी को दरबार से बोरिया-बस्ता उठाना पड़ा। उन्होंने जिस गूढ़ और लाभदायक विचार से ऐसा किया हो, परन्तु उनकी मातृभाषा इस कार्य्य के लिये उन्हें आशीर्वाद नहीं देगी। यदि उस समय इस की गोड़ी जमी रह जाती तो इसकी-उन्नति के लिये आज साहित्य—सम्मेलन की आवश्यकता नहीं होती।

मुसल्मानों ने हिन्दी भाषा में फ़ारसी शब्दों का प्रवेश भी नहीं कराया। पहले हिन्दू ही इस में फ़ारसी शब्द घुसाने लगे। मुसलमान लोग तो हिन्दी बहुत अच्छी तरह सीख गये थे। इस भाषा में खूब बात चीत करते थे।

दरबार से तो इसकी बिदाई हुई, परन्तु अकबरादि सम्राटों की इस पर कृपा बनी रही। अकबर ने स्वयं कविता करने की योग्यता प्राप्त कर ली थी, जहांगीर को हिन्दी पढ़ाई, अपने पोते खुसरो को छः ही वर्ष की अवस्था में भूदत्त भट्टाचार्य्य के पास हिन्दी पढ़ने को भेजा। खुसरो ने पीछे "ख़ालिक़ बारी" नामक पद्य बद्ध फ़ारसी, हिन्दी का कोश बनाया। हिन्दी और फ़ारसी के संयोग के समय इसकी रचना हुई थी। फ़ारसी पढ़ने वालों को वर्णमाला की पुस्तक समाप्त करने पर प्रायः यही पुस्तक पढ़ाई जाती थी। हमें भी इस के पढ़ने की बारी आई थी। इस के कुछ पद अब भी याद हैं।

"ख़ालिक़ बारी सिर्जनहार। वाहिद एक बड़ा करतार ॥
रसूल पैग़म्बर जान बसीठ। यार दोस्त बाले जा इष्ट ॥"

शाहजहाँ अच्छे फ़ारसीदां के सिवाय सब से हिन्दी में बात चीन करते थे।

बड़े २ पदाधिकारी मुसलमान और नवाब हिन्दी में कविता करने लगे थे और कवियों को मान, दान से सन्तुष्ट रखते थे।

अकबर के समय हिन्दी काव्य की बड़ी उन्नति हुई। हिन्दी भाषा के सुन्दर तारे भी उसी समय छिटके। हिन्दी कविता नभो मंडल के सूर और चन्द्र का भी उसी काल में उदय हुआ।

हिन्दी काव्य से मुसल्मानों को इतना प्रेम हो गया था कि वे लोग इसी भाषा का गीत भी पसन्द करते थे। उन के गवैये इसी में गान करते थे। इसी से आज भी गाने वाले हिन्दी के गीत अधिक तर गाते हैं।

भारत, धर्म्मभीरु देश होने के कारण यहां की सब भाषाओं

के साहित्य पर धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा है। जब हम हिन्दी साहित्य दर्पण हाथ में उठाते हैं तो उस पर वैष्णव, सिक्ख जैन सब धर्म्मों का विम्ब न्यूनाधिक देखते हैं। वैष्णव धर्म्म का आदि ही से इस के विशेषांश पर अधिकार पाया जाता है। हिन्दी साहित्य का काव्य खंड वैष्णवों के प्रधान उपास्यदेव श्री राधाकृष्ण तथा श्री सीताराम सम्बन्धिनी कविताओं से परिपूर्ण है। वीर रस प्रधान "रासो" में भी चन्द बरदाई ने श्री लक्ष्मीश की वन्दना एवं दसों अवतारों का वर्णन किया है। हिन्दी कविता-नभ के सूर, चन्द्र एवं प्रधान २ नक्षत्र वैष्णव ही थे।

सिक्ख गुरुओं ने भी हिन्दी पर अच्छा छाप दिया है। सब गुरुओं का उपदेश जिस का संग्रह "श्री आदि ग्रंथ" के नाम से प्रसिद्‌ध है प्रायः हिन्दी ही में हुआ है। किसी २ गुरु के वाक्यों में जहां तहां पंजाबी भाषा के शब्द आते गये हैं, परन्तु पांचवें गुरु श्री अर्जुन जी की वाणियां तथा नवें गुरु श्री गुरु तेग बहादुर जी का विनय तो शुद्‌ध सरल हिन्दी में हैं। दसवें गुरु श्री गुरुगोविन्द सिंह जी तो महान कवि ही थे। आप के दरबार में बहुत से कवि रहा करते थे। सिक्खगुरुओं से हिन्दी को कैसी सहायता मिली है यह बात पटना श्री हरि मन्दिर में विराजमान दोनों ("आदि" तथा "दसवीं पादशाही के") ग्रंथों के देखने ही से स्पष्ट विदित हो सकती है। अक्षर पंजाबी है, किन्तु उसकी भाषा हिन्दी है। अन्य सिक्ख महात्माओं तथा लेखकों ने भी हिन्दी की बड़ी सहायता की है। वे सब बातें आगे कही जायँगी।

हां! यहां पर यह कह देना अनुचित नहीं होगा कि सिक्खगुरुगण भी वस्तुतः वैष्णव ही थे। यह बात उन की वाणियों से प्रकटित है—

१–राम नाम सँग मन नहीं हेता। जो कछु कीनो सोउ अनेता।
बातें उत्तम गनिये चँडाला। नानक जिहि मन बसहिं गोपाला॥

२–लाल गोपाल गोविन्द प्रभु, गहिर गँभीर अथाह।
दूसर नाहीं और कोउ, नानक बेपरवाह॥

३–निर्गुन आप सगुन भी ओही। कलाधारि जिउ सगले मोही॥

ये पांचवे गुरु के शब्द हैं। सब गुरु अपने नाम की जगह 'नानक' ही लिखते थे।

ई० १६ शताब्दी से जैन महात्मागण भी हिन्दी में ग्रंथ लिखने लगे। बनारसी दास आदि अच्छे २ जैन कवि देखे जाते हैं। अब इन के पत्र भी हिन्दी भाषा में छपते हैं।

ये सब बातें पद्यखंड के विषय में कही गई हैं। हिन्दी साहित्य वाटिका का गद्यखंड अभी उजाड़ सा पड़ा था। अपने समय की प्रचलित हिन्दी में भले ही कोई चिट्ठी पत्री लिख लेता हो, उस में आज्ञापत्र निकलते हों, परन्तु गद्य-रचना नहीं होती थी। गद्य-रचना तो दूर रहे, उस की नींव भी नहीं पड़ी थी। इसका भाग्य-सूर्य्य उदय हुआ १८६० ई० में।

हमने हरिश्चन्द्र पुस्तक में लल्लू लाल जी को गद्यात्मक रचना का मार्निंगस्टार (शुकवा) होना लिखा और सदल मिश्र को उनका समकालीन होना लिखा है। अब सदल मिश्र कृत चन्द्रावती तथा नासिकेतोपाख्यान प्रकाशित हो जाने से और निज के कुछ अनुसन्धान से हम यह कहेंगे कि लल्लू लाल जी यदि गद्यरचना के प्रातःतारा वा ऊषा स्वरूप हुए तो सदल मिश्र से गद्यात्मक रचना का सुप्रभात हुआ और यह सुप्रभात बिहार प्रान्त के ही आरा नगर में हुआ।

इन लोगों के पहले भी श्री गोरखनाथ, श्री बिट्ठलनाथ, स्वामी पं० विष्णुदत्त तथा जटमल्ल आदि की गद्यरचना की बातें सुनी जाती हैं। परंतु प्रथम तो विष्णुपद तथा जटमल्ल को छोड़ अन्य लोगों ने सर्वथा ब्रजभाषा में कुछ गद्यरचना की है, दूसरे उन लोगों का गद्य लिखना उन तारों के उदय के समान कहा जायगा जो सौ पचास वर्ष पर कभी अकस्मात् आकाश मंडल में कुछ काल नजर आ जाते हैं। परन्तु न उन में प्रभात ही होता और न प्रभात आगमन की सूचना ही होती। और यहां तो सदल मिश्र के समय से हिन्दी गद्य-प्रभा बराबर धीरे २ प्रसारित होती चली।

सदल मिश्र तथा लल्लूलाल जी के समसामयिक एवं साथी होने पर भी सदल मिश्र को सुप्रभात मानने का मुख्य कारण यह है कि इन की रचनाएं देखने से भान होता है कि इन की भाषा लल्लूलाल जी के ग्रन्थों की भाषा से कहीं प्रौढ़ तथा परिमार्जित है। उन में अपेक्षाकृत खड़ी बोली का अधिकतर प्रयोग हुआ है और साहित्य—लालित्य भी विशेष देखा जाता है। अब देखिये हिन्दी भाषा से आप का दूरवर्ती सम्बन्ध कहे जाने पर भी इसकी वर्तमान गद्य शैली का सुप्रभात बिहार ही में हुआ।

जो हो, सुप्रभात होने ही से कुछ साहित्य मालियों की निद्रा-भङ्ग हुई। वे इधर उधर हाथ पैर चलाने लगे। पर उन में इतनी कार्य्य कुशलता नहीं थी। कुछ काल के बाद राजा लक्ष्मण सिंह तथा राजा शिवप्रसाद का ध्यान इस वाटिका की ओर आकर्षित हुआ। वे इस की शोभावृद्धि के लिये यत्नवान हुए। इसी मध्य में श्री हरिकृपा से एक परम प्रवीण माली भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस वाटिका में उपस्थित हो अपनी विचक्षण बुद्धि से इस के गद्य

खण्ड में भी अनेक प्रकार के पेड़ पौधे को यथा स्थान आरोपित कर थोड़े ही दिनों में इस को ऐसा लहलहा दिया कि सब लोग इसे देख मुग्ध होने लगे और सब के सब एक स्वर से इन्हीं को इसका प्राणदाता मानने लगे। उन्हीं की दिखाई हुई रीति का अवलम्बन कर आज तक लोग इस वाटिका के शोभावद्र्धन में लगे हुए हैं और अब यह फूलों फलों, से भरी ऐसी सोहावनी दीखने लगी है।

अब देखिये इस वाटिका के प्रत्येक खण्ड के सजने सजाने में बिहार ने कितना योग दिया है। यह देखने के लिये हम समझते हैं कि काल विभाग करने से कुछ सुविधा होगी।

प्रथम युग में विशेषतः काव्य ही का राज देखा जाता है। सर्वत्र उसी की सेवा होती थी और जातीयता की स्थिति धर्म ही में थी। इसी से कविता भी उसी ओर जाती थी। इसी से बिहार के सुविख्यात कवि विद्यापति ठाकुर ने भी श्रीराधाकृष्ण तथा शिव जी के सम्बन्ध में कविता की है। हिन्दी साहित्य में इनको उच्च आसन प्राप्त है। श्रीगौराङ्ग महाप्रभु इनकी कविता पर मुग्ध रहते थे और इसी से इनकी कविता का बङ्गाल में इतना प्रचार हुआ कि वहां के निवासी इन्हें वंगदेशीय कवि मानने लगे। जिस काल में चौसर इंगलैंड में कविता सिखा रहे थे, विद्यापति ठाकुर हमारे वंगदेशीय बन्धुओं को कविता की शिक्षा देने में लगे थे। इससे आप भी यह न समझ बैठे कि ये बंगाली थे। कालेजों में शिक्षा देनेवाले अंग्रेज़ प्रोफेसर हिन्दुस्तानी नहीं कहला सकते।

मुज़फ्फरपुर ज़िले के हलधरदास कायस्थ ने "सुदामा चरित्र" की रचना की है। सुदामाचरित्र कई एक लिखे गये हैं। पर इसके समान कोई प्रसिद्ध नहीं है।

धरणीधर कायस्थ महात्मा के उपदेश और भजनावली बड़ी ही अच्छी है। आप छपरा ज़िला के रहनेवाले थे। आपकी एक छोटी जीवनी भी छप गई है।

एक बिहारी कवि लक्ष्मीनारायण सं० १६८० के लगभग रहीम ख़ानख़ाना के दरबार में थे।

भोजपुर (शाहाबाद) में पन्मारवंशीय क्षत्रियों के राज्य की नीव डालनेवाले राजा रामनारायण सिंह शाहजहां बादशाह के समय में हो गये हैं। इन्हों ने श्री तुलसीदास आदि के ग्रंथों से एक अच्छा नीतिसंग्रह तैयार किया था।

श्री म० कु० बाबू शिवप्रकाश सिंह, डुमरांव के श्रीमान जय-प्रकाश सिंह के भाई थे। १७८७ ई० में आप का जन्म हुआ था। पहले इन्होंने "सत्संगविलास", "लीलारमनरङ्गिणी" तथा "भागवततत्व" आदि लिखा। फिर वैराग्य होने पर इन्होंने "विनयपत्रिका" की बड़ी मधुर टीका की।

बकसर के महाराज श्रीगोपालशरण जी ने तुलसीकृत रामा-यण की एक टीका करके प्रसिद्धि पाई है। इन्हीं के दरबार में कदाचित् मयंक के रचयिता पं० शिवलाल पाठक रहते थे। आप ने अपनी टीका की प्रतियां बँटवाई थीं और साथ २ पचीस २ रुपये दक्षिणा भी दी थी। आप के पुत्र म० कु० उदयप्रकाश सिंह ने भी "विनयपत्रिका" की एक अपूर्व टीका की है।

बेतिया के श्रीमन्महाराज आनन्दकिशोर जी ने "राग सरोज" की रचना की है।

छपरा ज़िला के इसुआपुर के भक्तवर शंकरदास ने शिवाशिव, गंगा, यमुना आदि के माहात्म्य में बहुत सी कविताएं की हैं और लगभग दस हज़ार भजनों की रागमाला गूथ कर काव्यकुमारी को

पहनाया है। आपके पुत्र श्री जीवाराम जी ने "रसिक प्रकाश भक्त माल" लिख कर भक्तों को भक्तिस्रोत में भसाया है।

आरा के अम्बागांव के रहनेवाले वन्दीजन चन्दनराम ने १८०९ ई० में "नामार्णव" तथा "अनेकार्थ" की रचना की है और अमात्रिक हरस्त्रोत्र की एक छोटी सी पुस्तक बनाई है जिसमें कहीं एक मात्रा भी नहीं है। इनके पिता साहबराम ने भी "रसदीपिका" आदि रच कर रस बरसाया है। बाप बेटे दोनों ने कवित्व शक्ति से कविराज की उपाधि प्राप्त की थी।

छपरे का एक भदेसिया कान्दू भी कविता करता था। उसकी बनाई हुई एक होरी का कुछ अंश सुन लीजियेः—"कलि के खल खेलत होरी। होत प्रात लबनी भरि तारी घरघर खरी चुओरी॥ पीवत खात ललात परस्पर जूता लात मचोरी। नगन ह्वै बमन करोरी।"

डुमरांव के निकटवर्ती घनगाईं के बच्चूमलिक का जन्म १८२७ ई० में हुआ था। ये महाराज जयप्रकाश सिंह के समय ही से राज दरबार में रहते थे। बड़े प्रसिद्ध गवैये और कवि थे। इन्होंने संगीत के चार ग्रन्थों की रचना की है। इनके पितृव्य धना मलिक ने "कृष्णरामायण" रचकर छपवाया है।

गया—पाठक बिगहा के महात्मा हरिनाथ जी ने "ललितरामायण" लिख कर भक्तों को लुभाया है।

श्री राधावल्लभ जी भी डुमरांव ही को सुशोभित करते थे। इनके रचे "रसिकरंजन रामायण" और "कृष्णलीला मृतध्वनि" आदि १३ ग्रन्थ छप चुके हैं।

१८२६ ई० में टेकारी के दिनेश कवि ने "रसरहस्य" लिख कर रसिकों को अष्टयाम आनन्द का सुख दिया है। यह प्रसिद्ध ग्रंथों में है और छप भी चुका है।

छपरा के चिरान गांव के रहने वाले हरि कवि ने बिहारी सत-सई की "हरिप्रकाश" टीका की है और लिखा है "फेरि बिहारी पढ़न को पड़े न काहू पास। ऐसो टीका करत है हरि कवि हरि प्रकाश ॥" यह टीका सचमुच उत्तम है और प्रामाणिक मानी जाती है।

श्री महात्मा हरिहर प्रसाद जी ने श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत सब प्रधान ग्रंथों की टीकाएं रच कर भक्तजनों का बड़ा उपकार किया है। आप छपरा—बगौरा के रहनेवाले थे और विरक्त साधु हो गये थे।

बनैली नरेश श्रीमान् वेदानन्द जी महाराज ने "वेदानन्द विनोद" द्वारा आनन्द बरसाया है। एवं शिवहर के राजकुमार श्रीमान् देवानन्द जी ने "शाक्तप्रमोद" का मोदक वितरण किया है।

श्रीमान् वेदानन्द जी के प्रपौत्र श्रीमान् म० कु० कीर्त्यानन्द जी बी० ए० स्वयं हिन्दी प्रेमी और हिन्दी प्रेमियों के उत्साहवद्र्धक हैं। हमारे युवक मित्र बाबू रघुवीर शरण—जिन्होंने अपने "बटोहिया" द्वारा लोगों का मन अपहरित किया है—आपके प्राइवेट सिक्रेटरी हैं।

छपरा—मोबारकपुर के मुं० तपस्वीराम ने "सीताराम-चरण चिन्ह", "अयोध्यामाहात्म्य" तथा "प्रेमगंगतरंग" आदि रच कर भक्तों का हृदय तरंगित किया है।

आरा—अख़्तियारपुर के मुन्शी लक्ष्मीनारायण और धमार के अ० कन्हैया लाल ने भजन गान से लोगों को आनन्दित किया है। लक्ष्मी नारायण के पुत्र मं० नागेश्वर प्रसाद भी कविता कर के कवि समाज में भेजते थे और भतीजे मुं० सत्यनारायण जी आज भी हिन्दी की सेवा किया करते हैं।

गायघाट—बिह्यिा के पं० दिवाकर भट्ट ने "नख शिव" की छवि दरसाई है। पहले आरा कोरी निवासी मुं० परमानन्द के बारहमासे का बड़ा आदर था। बरसात में हिंडोले का आनन्द लेती हुई स्त्रियां उसे गाया करती थीं।

लड़कपन में हमने सुन्दर चौपाई छन्दों में "करीमा" का अनुवाद देखा था। उसकी एक प्रति अपने लिये भी तैयार कर ली थी। वह मुन्शी देवीप्रसाद कृत अनुवाद था। हमारे ग्राम के मुं० रामभजन लाल ने कहा था कि अनुवाद कर्त्ता उनके दादा जी थे। इस समय हमारे पास असल नक़ल कुछ भी नहीं है। केवल उसके दो चार पद स्मरण हैं। यथाः—

"करीमा बे बख़शाय बर हाले मा।
कि हस्तम असीरे कमन्दे हवा॥
(दयावन्त करु मो पर दाया। मैं अरुझाय रहा जग माया)
चेहल साल उम्रे अज़ीज़त गुज़श्त।
मिज़ाजे तो अज़ हाले तिफ़्ली न गश्त॥
(चालिस बरस बीत गइ आई। अजहुं न छूट तोर लरिकाई)
तकब्बुर अज़ाज़ील राख़्वार कर्द।
ब ज़िन्दाने लानत गिरफ़तार कर्द॥
(गरब रवनहीं धूरि मिलावा। अजस फंद मों ताहि फँसावा।"

कुछ दिन हुए "भारत मित्र" वाले अखौरी यशोदानन्द जी ने भी करीमा का अनुवाद किया है।

१८७० ई० के लगभग जब पाठशालाओं में हिन्दी जारी हुई, तब हिन्दी का दूसरा युग आरम्भ हुआ। परंतु पहले न तो छात्र ही हिन्दी पढ़ना चाहते थे और न सर्वसाधारण ही की इधर रुचि

प्रवृत्त होती थी। हां, शिक्षा विभाग के कई एक कर्म्मचारियों ने हिन्दी सीख ली थी। मुं० राधालाल की "भाषाबोधिनी" तीन चार भागों में और पटना नार्मलस्कूल के हेडमास्टर सुप्रसिद्ध राय सोहन लाल साहब की "वायुविद्या" तथा पं० केशवराम भट्ट कृत "विद्या की नींव" छप चुकी थीं और स्कूलों में जारी हुई थीं। इनके सिवाय युक्त प्रदेश में रची गई पुस्तकें—गुटका, इतिहास तिमिरनाशक, और भाषा तत्व बोधिनी आदि काम में लाई जाती थीं।

पुस्तक रचने में यहां के लोगों की उदासीनता का कारण यह था कि शिक्षाविभाग के कर्मचारियों की सदा यही चेष्टा रहा करती थी कि जिस पुस्तक में संस्कृत वा उर्दू के शब्द हों उसे निकम्मी कह कर फेंक दें और जिसमें गली कूचों में बोली जाने वाली भाषा हो उसी को ही पसन्द करें और उसी को सच्ची हिन्दी समझें। इससे किसी का ग्रंथ रचना में उत्साह नहीं होता था।

जब १८७५-७६ में बाबू भूदेव मुकर्जी इन्सपेक्टर हो कर यहां आये, उन्हें यह बात रुचिकर नहीं हुई और यहां की दशा देख उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उन्होंने डाइरेक्टर के पास रिपोर्ट भेजी कि "यहां कचहरी की भाषा फ़ारसी का मुंह जोहती है और संस्कृत का तो यहां से ऐसा बहिष्कार हुआ है कि ऐसा बंगाल से भी नहीं हुआ। हिन्दी है जीवित, क्योंकि इसकी मृत्यु हो ही नहीं सकती और हम इसके प्रचार की चेष्टा कर रहे हैं।"

उन्हें पूरा विश्वास था कि एक समय हिन्दी का सितारा अवश्य चमकेगा और लोग देखेंगे कि हिन्दी कैसी सोहावनी और मनोहारिणी भाषा है। एवं बंगाल की नाईं बिहार में भी अंग्रेजी

शिक्षा ही मातृभाषा की ओर लोगों का चित्त आकर्षित करेगी। आज भूदेव की वाणी ब्रह्मवाणी के समान सच्ची सिद्ध हो रही है। ईश्वर ने सचमुच हिन्दी के भाग ही से उन्हें बिहार में भेजा था. बिहार उनका सदा कृतज्ञ रहेगा।

अपने विश्वास पर भरोसा करके आपने भिन्न २ शैली के लेखकों को प्रोत्साहित कर उन्हें ग्रंथ रचना में प्रवृत्त किया। फिर क्या था? मुं० राधा लाल ने "शब्दकोश" रचकर सरकार से पुरस्कार पाया। बाबू रामदीन सिंह ने "क्षेत्रतत्व" तथा "गणित बतीसी" आदि, केशवराम भट्ट ने, "हिन्दुस्तान का इतिहास", बाबू रामप्रकाश लाल ने "भूतत्व प्रदीप", सजीवन लाल ने "ज्यामिति", पूज्यवर बाबू भगवान प्रसाद जी ने "शरीरपालन", लक्ष्मण लाल ने "क्षेत्रमिति", गणपति सिंह ने "भूगोल", श्यामबिहारी लाल ने "देसी लेखा जोखा" गोविन्द बाबू बंगाली ने "पुरावृत्तसार", पं० छोटूराम त्रिपाठी ने "रामकथा", पं० शिवनारायण त्रिपाठी ने "बंगाल का इतिहास" एवं पं० बिहारी लाल चौबे ने "वर्णबोध" लिखा। इन सब महाशयों की शिक्षा विभाग से सम्बन्ध था। और उक्त पुस्तकों में से कई एक बंगभाषा की पुस्तकों के अनुवाद थे।

पीछे और लोगों का भी इधर ध्यान गया। दीनदयालु सिंह ने भारतवर्ष का इतिहास और हमने बंगाल का इतिहास लिखा। बाबू साहब प्रसाद सिंह कृत भाषासार ने राजा शिवप्रसाद की गुटका को बिहार से भगाया।

फिर पं० बलदेव राम झा और बाबू गोकर्ण सिंह प्रभृति लेखकों ने विज्ञान आदि की पुस्तकों की रचना की और बिहार की बनी हुई पाठ्य पुस्तकें बिहार में पढ़ाई जाने लगीं। उस समय से

बिहार पाठ्य पुस्तकों के प्रणयन में बराबर उन्नति करता चला आता है। और अब यहां के ग्रंथ प्रकाशकों के उत्साह से पुस्तकों में कुछ विशेष चमक छमक आ जाने से इसकी सराहनीय दशा देखी जाती है। आदि में यह कार्य्य केवल सुप्रसिद्ध खड्गविलास यन्त्रालय ही की कृपा से साधित होता था। यह बात आप लोगों को आगे चलकर विदित होगी।

पाठ्य पुस्तकों के लिखने में कुछ त्रुटियां और असावधानी देखी जाती है। जिस श्रेणी के पाठकों के लिये पुस्तकें लिखी जायं, उसी के अनुसार भाषा भी होनी चाहिये और भाषा की शुद्धता की ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। बच्चों के हृदयपटल पर शुद्धाशुद्ध जो अंकित होगा वह चिर काल तक बना रहेगा। पुस्तकें ऐसी होनी चाहियें जिनके पाठ से बालकों को धर्म, देशानुराग, उत्साहादि सद्गुणों की शिक्षा आदि ही से मिल सके। अच्छे २ सदाचारी, उपकारी, वीर, साहसी पुरुषों का संक्षेप वृत्तान्त पुस्तकों में रहने से इस अभीष्ट की सिद्धि हो सकती है। इन पुस्तकों में पद्य भाग अधिक रहना उत्तम होगा। पद्यों के पढ़ने और कंठस्थ करने में बालकों का बहुत मन लगता है।

इस युग में बिहार केवल पाठ्य पुस्तकों के प्रणयन ही में नहीं लगा रहा। अन्य बातों की ओर भी इसका ध्यान रहा। भारतेन्दु स्थापित कवि समाज में मांझा के श्रीमान् श्रीधर शाही, दिलीप पुर (आरा) के म० कु० बाबू नर्वदेश्वर प्रसाद सिंह तथा गया–दाऊद नगर के बाबू जवाहिर लाल समस्याओं की पूर्तियां सदा भेजा करते थे। इनमें से महाराजकुमार ने पीछे "श्रृङ्गारदर्पण" और "धर्म्म प्रदर्शनी" का दर्शन कराया। आपके काव्यगुरु मुं०

ठाकुर प्रसाद जगदीशपुरी भी अच्छी कविता करते थे। जवाहिर लाल ने "हरगङ्गा" का गीत सुनाया। यह पुस्तक खड्गविलास प्रेस में छपी थी। आज के लोगों के आचरणों पर कटाक्ष था। दो पद हमें अभी भी स्मरण हैं "सतयुग में इक सरवन पूत–हरगङ्गा। कलियुग में बहु पूत कपूत–हरगङ्गा।"

फिर १८९५–९६ में काशी में कविसमाज और कवि मंडल स्थापित हुआ। उस समय गिद्धौर से श्रीमन्महाराज रावणेश्वर प्रसाद सिंह जी, म० कु० श्रीगौरी प्रसाद सिंह जी तथा म० कु० गुरुप्रसाद सिंह, जी, गया से पं० गिरधारी लाल, पं० विश्वनाथ मिश्र और पं० वासुदेव पटना से बाबू पत्तन लाल, पं० गोवर्द्धन पाठक, गुलाबदास, आदि दरभंगा से, राजकवि शिवप्रसाद और उनके पुत्र देवी शरण जी, छपरा से, बाबू बिहारी सिंह, दामोदर सहाय, शिताबबाई बारादर, मांझा के श्रीयुत श्याम शिवेन्द्र शाही एवं आरा से बाबू ब्रजनन्दन सहाय, बाबू भगवती चरण आदि समस्याओं की पूर्ति किया करते थे। इनमें से कई लोगों को पुरस्कार भी मिला था।

और महाराजकुमार गुरुप्रसाद जी ने पीछे "राजनीति रत्नमाला" आदि भी प्रस्तुत किया; पत्तन लाल ने "युविलि साठिका", "सज्जन विलास" और "उजाड़गांव" लिखा; एवं बाबू दामोदर सहाय ने "नृप सूर्य्यास्त," "हरिगीतिका" तथा "भ्रातृभाव" इत्यादि द्वारा हिन्दी की सेवा की। हम समझते हैं कि इस समय इनका "कविता कुसुम" किसी प्रेस में छप रहा है।

बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने "सौंदर्य्योपासक," "लाल चीन," "बृज विनोद", "सत्यभामा मंगल", "राजेन्द्र मालती", "अदभुत प्रायश्चित्त" आदि २०-२२ ग्रंथों की रचना की और सुन्दर टिप्पण

टिप्पणियों के साथ "मैथिल कोकिल" का सम्पादन किया। ये कुछ दिनों तक "शिक्षा" और "साहित्य पत्रिका" का भी सम्पादन करते थे।

फिर आरा-सकला निवासी बाबू भगवती चरण तथा बांकीपुर बिहार नेशनल कालेज के कई छात्रों ने कविसमाज संस्थापित कर पटना हरि मन्दिर के महंथ श्री बाबा सुमेर सिंह जी को सानुरोध उसका सभापति बनाया। उस कवि समाज में बिहार के कविता प्रेमियों के सिवाय अयोध्या से श्री मन्महाराज प्रतापनारायण सिंह बहादुर, म० कु० त्रिलोकी नाथ और कवि लछिराम, कपूरथला से सरदार भगत सिंह C. I. E. बलिया से म० कु० राजेन्द्र प्रसाद देवजू, हमारे परम स्नेही सुविख्यात पं० अयोध्या सिंह, मारकंडे कवि (चिरजीव), कवि शिव प्रसाद एवं पंजाब, युक्त प्रदेश, राजपुताना प्रभृति स्थानों से बहुत से सुजन समस्याओं की पूर्ति करने की कृपा दिखलाते थे। इस सभा से "समस्यापूर्ति पत्रिका" भी निकलती थी। वह भी उक्त ब्रजनन्दन सहाय द्वारा सम्पादित होती थी। इस समाज ने हिन्दी के प्रचार में बहुत सहायता की। यहां तक कि एक कहार मदनेश भी अच्छी कविता करने लगा था।

(डुमरांव के परमेश्वर नामक एक तमोली ने "भक्तिलता" एक छोटी सी पुस्तक बनाकर उसे छपवाया है।)

पाठ्य पुस्तकों के आदिम लेखकों में से केवल तीन ही पुरुष आगे बढ़े। बिहारी लाल चौबे, भट्टजी तथा श्री भगवान प्रसाद जी। भट्ट जी का हाल पीछे कहा जायगा। चौबे जी ने कई अन्य पुस्तकों की रचना की जिन में से "बिहारी-तुलसी-भूषण" प्रसिद्ध है। आप युक्त प्रदेश के रहने वाले थे और पटना कालेजियट में द्वितीय संस्कृताध्यापक थे।

श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद जी विरक्त महात्मा होकर अयोध्या में श्री प्रभु का ध्यान, भजन करते आज भी हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। आप की लेखनी द्वारा प्रसवित १४, १५ पुस्तकें छपी हैं। सब की सब धर्म्म शिक्षा देने वाली हैं। "भक्ति सुधा स्वाद" अर्थात् श्री नाभा जी कृत भक्तमाल का तिलक १३३२ पृष्ठों में लिखा गया है। हिन्दी साहित्य का यह एक अमूल्य रत्न है। इस समय आप लोगों से हमको केवल हिन्दी साहित्य के विषय ही में कहना उचित है। अतः हम महात्मा जी के अन्य गुणों को वर्णन करना नहीं चाहते, आप लोग इन की छपी हुई जीवनी में सब कुछ देख सकते हैं।

भारतेन्दु जी के साथी हमारे पूज्य पाद पं० विजयानन्द त्रिपाठी जी की हम क्या बात कहें। आप तो आज भी गुरु स्वरूप हम लोगों को शिक्षा देते, हम लोगों के सब कामों में सम्मिलित होते हैं। बांकीपुर में दशम साहित्य सम्मेलन के समय आप ही स्वागत कारिणी समिति के सभापति थे। आप का पाण्डित्य तथा साहित्य सेवा सराहनीय है। आदि ही से आप सुन्दर रचनाओं से भाषा भण्डार भरते आते हैं।

आप के भाई पं० शिवनन्दन त्रिपाठी जी ने भी वृद्धावस्था में गिरते हुए बिहार बन्धु को अपनी लेखनी के सहारे फिर चलने को समर्थ कर दिया था।

भारतेन्दु ही के समय के आरा मटुकपुर निवासी वृज-विहारी लाल ने "बालबोध," "नीति दृष्टान्त रामायण" और "संगीत सुधा" से लोगों को तृप्त किया है। और आरा के अग्रवाल वंशीय जैन कवि वृन्दावन की बनाई हस्त लिखित एक पुस्तक आरा के "जैन सिद्दान्त भवन" की शोभा बढ़ा रही है। आरे के अन्य जैन

लेखकों का वृत्तान्त वर्तमान युग के वर्णन के समय सुनियेगा।

हाजीपुर रूपस के शिवराम सिंह ने श्री तुलसीदास कृत रामायण के किष्किन्धा काण्ड की "मानसतत्व बोधिनी" टीका बनाई जो छप कर ९०० पृष्ठों में तैयार हुई है। इसको सावधानता पूर्वक पढ़ने से सातों काण्डों का शंका समाधान और गूढ़ भावों का ज्ञान हो सकता है।

डुमरांव निवासी पं० नकछेदी तिवारी (अजान कवि) ने कठिन परिश्रम से डुमरांव और सूर्य्य पुरा के राज्य पुस्तकालयों एवं अन्यान्य स्थानों से प्राचीन काव्य ग्रन्थों को हस्तगत करके प्रकाशित कराया था। काशी के भारतजीवन प्रेस में जितने पुराने काव्य के ग्रन्थ छपे थे प्रायः सब ही इन्हीं के दिये हुए थे। इस कार्य्य में किसी प्रान्त का कोई पुरुष इनकी समता नहीं कर सकता। इनकी बनाई हुई "कविकीर्ति कलानिधि" इत्यादि छः पुस्तकें प्रकाशित हो कर इन की कीर्ति बढ़ा रही हैं। परन्तु इन का सब से उत्तम ग्रन्थ "अजान हज़ारा" अभी तक अप्रकाशित ही पड़ा है।

चम्पारण बगहा के कवीन्द्र तथा वैद्यचूडामणि वयोवृद्ध चन्द्रशेखरधर मिश्र हिन्दी के एक पुराने सेवक तथा सुप्रसिद्ध कवि और लेखक हैं। आप "विद्याधर्म्म दीपिका" लिख कर और छपवा कर विना मूल्य वितरण करते थे। और आरा निमेज के चन्द्रशेखर शास्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन विद्यापीठ, प्रयाग के प्रधान अध्यापक हैं। आप "शारदा" (संस्कृत मासिक पत्रिका) का भी सम्पादन करते हैं।

बिहार कविकोविदों का सदा से सम्मान भी करता आता है। मिथिलाधिप राजा शिवसिंह के राजकवि सुप्रसिद्ध विद्यापति

थे। वर्तमान काल में चिरजीवी मारकंडे कवि ने दरभंगाराज में रह कर अपनी सुन्दर रचना "लक्ष्मीश्वर विनोद" से सचमुच अपने को चिरञ्जीव बनाया है। वहीं के कवि शिव प्रसाद जी ने "श्री लक्ष्मीश्वर भूषण" से कविताकामिनी को आभूषित किया है।

चिरजीव जी सूर्य्यपुरा के श्रीमान् राजा राजेश्वरी प्रसाद जी के दरबार में भी रहे थे। उस दरबार में संतकवि, इन्द्र कवि और पं० दामोदार प्रसाद आदि का भी बहुत सम्मान होता था। राजा साहब बड़े ही कविताप्रेमी थे, स्वयं भी कविता करते थे। भारतेन्दु से आप की बड़ी मित्रता थी।

आप के प्रिय पुत्र राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी एम० ए० हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। आप गल्प लिखने में वंगदेशीय गल्प लेखकों से टक्कर लगाते हैं। आप की "गल्प कुसुमावली" चित्त को प्रफुल्लित कर देती है एवं "प्रेमलहरी" तथा "तरंग" मन को तरंगित करने लगते हैं। आप के विषय में हम और क्या कहें? आपने तो गत वर्ष आप के सम्मेलन के सभापति के आसन पर सुशोभित हो कर अपने उत्तम और मनोहर सम्भाषण से सबों को लोट पोट कर दिया था।

श्री गुरुगोविन्द सिंह जी के दरबार के कवि हंसराम के वंशज, वीर रस प्रधान काव्य "हमीर हठ" के रचयिता, असनी निवासी कविचन्द्र शेखर भी, सात बर्षो तक बिहार के रजवाड़ों में सम्मानित हुए थे।

आप लोगों पर यह बात अविदित नहीं है कि सिक्खसम्प्रदाय के जगद्विख्यात दसवें गुरु श्रीगुरु गोविन्द सिंह महाराज की बाल बिहारभूमि बिहार ही है। आप की, एवं आप के पूर्ववर्ती गुरुओं

की, कृपा से आज बिहार ही की सिक्खमंडली में नहीं, वरन सारे संसार की सिक्खमंडली में हिन्दी का प्रचार हो रहा है। आप के जन्म स्थान पटना-हरिमन्दिर के महंथ बाबा सुमेर सिंह जी से भी आप लोगों को परिचय हो चुका है। आप अपने समय के काव्यशास्त्र के प्रख्यात मर्मज्ञ थे। वर्तमान काल के सुप्रसिद्ध कवि पं० अयोध्या सिंह तथा पूर्वोक्त मारकंडे कवि का काव्याध्ययन में आप से बड़ी सहायता मिली थी। आप की भारतेन्दु से घनिष्ठ मित्रता थी। आप के रचे १५ ग्रंथ वर्तमान हैं। उन में से "गुरु पद प्रेम प्रकाश" हज़ार से अधिक पदों का ग्रंथ है और "गुरु विलास" सुपर रायल काग़ज़ के ७३० पृष्ठों में गुरुमुखी अक्षर में छपा है, पर भाषा है हिन्दी।

आरा ना० प्रचारिणी सभा ने इसी विचार से "सिक्ख गुरुओं की जीवनी" प्रकाशित की है जिस में बाबा साहब का जीवन वृत्तान्त भी समावेशित हुआ है। आप की हम पर सदा कृपादृष्टि रहती थी।

पं० अयोध्या सिंह क़ानूनगो भी कई पीढ़ियों के सिक्ख हैं। यद्यपि बिहार से आप का जन्म सम्बन्ध नहीं है, तथापि आप के ग्रंथ "अधखिला फूल", "ठेठ हिन्दी का ठाट", "काव्योपवन", "प्रियप्रवास" आदि बिहार ही में खड्ग विलास प्रेस के उत्साह से प्रकाशित हुए हैं।

अब आप लोगों को ज्ञान हो गया होगा (और आगे भी होगा) कि अन्य प्रान्तों के समान बिहार में भी बौद्ध-धर्म, सिक्ख-धर्म और जैन धर्म का हिन्दी पर कितना प्रभाव पड़ा है तथा उन से इस के प्रचार में कितनी सहायता मिली है और मिल रही है। वैष्णवों पर कटाक्ष का कोई कारण नहीं दीखता।

आर्य्य समाज द्वारा भी बिहार में हिंदी का खूब प्रचार हुआ है। इस युग में कुछ काल तक बिहार में आर्य्य धर्म्मानुयायियों तथा सनातन धर्म्मावलम्बियों में शास्त्रार्थ और व्याख्यानों की खूब चलती थी। ये सब काम हिन्दी द्वारा साधित होते थे। आर्य्यावर्त पत्र भी यहीं दानापुर से निकलता था। इस के द्वारा इस के सुयोग्य सम्पादक पं० रुद्रदत्त जी ने बिहार में हिन्दी की अच्छी सेवा की है। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं।

इस के एक सम्पादक आरा, डुमरांव निवासी बाबू ब्रह्मदत्त को किसी लेख पर रीवां दरबार से पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

इसी समय बांकीपुर, दानापुर, मुज़फ्फरपुर, छपरा, मोतिहारी, जमालपुर, मुंगेर, भागलपुर आदि नगरों में सुनीति-संचारिणी तथा अन्यान्य नामों की सभाएं और आर्य्यसमाज थे। इनके द्वारा भी हिन्दी का बहुत प्रचार हुआ।

१८७९-८० में कचहरियों में हिन्दी का प्रवेश हुआ। परंतु इसके उदरपोषण के लिये मिला उर्दू का भंडार, और परिधान के लिये कैथी। " न खुदाही मिला न वेसाले सनम; न इधर के रहे न उधर के रहे" इसकी ऐसी ही दशा हुई। हम कायस्थ हैं, अतः कैथी की हमें ममता है। परंतु जब कचहरी में यह हिन्दी के नाम से घुसाई गई, तो इसका रंग ढंग भी हिन्दी जैसा कर देना उचित था और है। केवल बड़े २ फ़ारसी के शब्दों का व्यवहार कम कर देने ही से यह कार्य्य सिद्ध हो सकता है। यदि हमारे कायस्थ और मुसल्मान भाई मन में धरें तो यह कुछ बड़ी बात नहीं है। इसमें सरकार की सहायता की भी आवश्यकता नहीं। जब सरल हिन्दी भाषा व्यवहृत होने लगेगी तो अक्षर के रूपान्तर में बहुत कठिनाई नहीं होगी। आरा नागरी प्र० सभा के उद्योग

से तथा ओल्डहम साहब की सहानुभूति से फ़ार्मादि हिन्दी में छपने की आज्ञा प्रचारित हो ही गई है। पर कचहरी की हिन्दी कभी किताबी हिन्दी नहीं हो सकती। बंगाल में भी दोनों में विशेष विभिन्नता देखी जाती है। न जाने कचहरीवालों को माल-मसरूफ़ा, अयानत, समायत, पेशरफ्त इत्यादि शब्दों को प्रयोग का क्यों रोग हो गया है ? जो हो, धैर्य्य और यत्न से तत्काल हीं कचहरियों में भी हिन्दी को अपने भेष और भाव में अवश्य देखियेगा।

कचहरियों में हिन्दी जारी कराने के आन्दोलन में देशसेवा व्रतधारी, बिहार के भाग्य संवारने वाले हमारे मित्र तथा सहपाठी स्वर्गीय बाबू महेश नारायण के ज्येष्ठ भ्राता बिहार के प्रथम एम० ए० और परम देशहितैषी बाबू गोविन्दचरण, हिन्दी के परम हितैषी म० कु० रामदीन सिंह जी, पं० केशवराम भट्ट, तथा रामकृष्ण पांडे प्रभृति ने बड़ा परिश्रम किया था।

यहीं गोविन्द बाबू ने पहले पहल बिहारियों को "इन्डियन क्रानिकल" पत्र का दर्शन कराया, बिहार नेशनल कालेज खुलवाया और सर्व प्रकारेण बिहार की उन्नति के पथप्रदर्शक हो अपने प्रिय भाई को सदा के लिये देशसेवा में लगा दिया। ये हिन्दी के प्रेमी थे और भारतेन्दु की रचनाओं के अनुरागी थे।

भट्ट जी अच्छे विद्वान् थे। इनके ग्रंथों में हिन्दी व्याकरण मुख्य और अपेक्षाकृत उत्तम भी है। १८७४ ई० से इनके बड़े भाई के संस्थापित "बिहारबन्धु" प्रेस से बिहार ही का नहीं, वरन् सूबे बंगाल का हिन्दी भाषा का प्रथम पत्र "बिहारबंधु" निकलने लगा। आप ही इसके सम्पादक थे। परंतु कुछ काल तक महाराष्ट्र देशीय पं० दामोदर शास्त्री भी इसका सम्पादन

करते थे। इस पत्र से बिहार में पहले हिन्दी के प्रचार में खूब सहायता मिली। यहां से एक "महाभारत" भी निकला था। वह न बहुत बड़ा था और न छोटा।

शास्त्री जी के उद्योग से यहां एक नाटक मण्डली भी स्थापित हुई थी, जिसमें स्वयं शास्त्री जी, भट्ट जी, और गोविन्द बाबू प्रभृति अभिनय करते थे।

प्रायः पांच छः बरस बीता कि ४० वर्ष हिन्दी की सेवा करके "बिहारबन्धु" अस्त हुआ।

म० कु० बाबू रामदीन सिंह ने अपने परम मित्र मझौली-नरेश श्रीमान् लाल खड्गबहादुर मल्ल के नाम से १८८० ई० में बिहार का सुविख्यात "खड्गविलास यंत्रालय" संस्थापित किया। इसके कार्य्याध्यक्ष बाबू साहिबप्रसाद सिंह थे। इन दोनों पुरुषों ने पुस्तक प्रकाशन एवं हरिश्चन्द्रकला और "ब्राह्मण" आदि पत्र द्वारा हिन्दी का बड़ा उपकार और प्रचार किया। बाबू रामदीन सिंह ने मानदान, धनप्रदान तथा सेवासम्मान से सन्तुष्ट कर उस समय के प्रायः सभी सुप्रसिद्ध सुलेखकों को अपने हाथ में कर लिया। दूसरों को कौन कहे इनके स्नेहपाश में फंस कर इन्हें सच्चा साहित्यसेवी तथा हिन्दीप्रेमी समझ कर भारतेन्दु ने भी स्वरचित सब ग्रन्थों का स्वत्व इन्हीं को सौंप दिया। इस प्रेस को निज व्यय से भारतेन्दु, पं० दामोदर शास्त्री, पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, पं० रामशंकर व्यास, उदासीन श्रीस्वामी बलराम शास्त्री तथा श्रीलाल खड्गबहादुर मल्ल जी के प्रायः सब ग्रंथों के एवं पं० अम्बिकादत्त व्यास के कई एक ग्रन्थों के प्रकाशन का गौरव प्राप्त है। आज भी यह कितने सुलेखकों की पुस्तकों का प्रचार कर उनका उत्साह बढ़ा रहा है।

बाबू रामदीन सिंह जी ने पहले पहल निज व्यय तथा परिश्रम से राजापुरवाली रामायण तथा अन्यान्य प्राचीन प्रतियों के सहारे श्रीगोस्वामी तुलसी दास कृत रामायण का एक शुद्ध संस्करण सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया। उसके बहुत दिन पीछे काशी ना० प्र० सभा द्वारा एक संस्करण प्रकाशित हुआ। निस्सन्देह अनेक सुन्दर चित्रों के कारण यह संस्करण कुछ विशेष मनोहर और सुहावन हुआ है। परन्तु इस सभा के सहायक भी बहुत से धनी माननीय पुरुष हैं और वह पांच सम्पादकों की सहायता से सम्पादित हुआ है। यहां न बाबू साहब का कोई हाथ बंटाने वाला था और न इन्हें किसी से द्रव्य की सहायता मिली। यदि ग्रियर्सन साहब की बात कहिये, तो यह सहायता पारस्परिक थी। साहब को भी आपने कुछ कम सहायता प्रदान नहीं किया है। हम तो कहेंगे कि आप ही साहब की कीर्ति के दण्ड स्वरूप हुए।

आप ने रामायण की कई सुप्रसिद्ध और उत्तम टीकाओं का एवं "मानस तत्व प्रबोधिनी" तथा "मानस मयंक" का लोगों को दर्शन कराया है। गोस्वामी जी कृत कवितावली आदि प्रधान २ पुस्तकों की टीकाओं का भी सम्पादन किया है। सर्वदा पुस्तकावलोकन से इनकी अभिज्ञता बहुत बढ़ गई थी और प्राचीन विषयों के अनुसन्धान का भी इन्हें बहुत चाव रहता था। इसी से इनके द्वारा सम्पादित प्रायः सब पुस्तकें टिप्पणियों से भूषित देखी जाती हैं।

आप से शिक्षाप्रचार में भी बहुत सहायता मिली है। पाठकों के लिये जब २ जैसी २ पुस्तकों की आवश्यकता होती गई आप अल्पकाल ही में वैसी पुस्तकें स्वयं लिख कर वा दूसरों से लिखवा कर प्रस्तुत कर देते थे। इसी से शिक्षा विभाग में इनका

बड़ा मान था। डाइरेक्टर तथा सब कर्मचारी इनसे प्रेम रखते और इनका आदर करते थे। जब किंडर गार्टन की पढ़ाई प्रचलित हुई, तब उसी समय इन्होंने किंडरगार्टन की कई पुस्तकें स्वयं लिख कर तैयार कर दीं। इसके सिवाय "बिहारदर्पण" "हिन्दी साहित्य", "साहित्य भूषण", "बालबोध", हितोपदेश" आदि अन्य पुस्तकें भी इनकी बनाई वर्तमान हैं। "बोधविकाश" तथा "स्वास्थ्यरक्षा" इन्होंने बङ्गला से अनुवाद किया है। यह बात नहीं है कि बाबू रामदीन सिंह पुस्तकों की रचना नहीं करते थे। ये सर्वदा पुस्तक लिखते रहते थे। पर स्वयं लिख कर दूसरों के नाम से भी छपवाते थे। हम ऐसी कई पुस्तकों का नाम बतला सकते हैं। उनमें से किसी २ की ८-९ आवृत्तियां हो गई हैं। यह ऐसा क्यों करते थे यह बताने का काम इनके जीवनीलेखकों का होगा। हमारे इस भाषण का यह काम नहीं है।

भारतेन्दु के समान बाबूसाहब बिहार में अपने ढङ्ग से हिन्दी प्रचार में सर्व प्रकारेण अन्त समय तक दत्तचित्त रहे। इन्होंने हिन्दी की दुर्बलावस्था में इसका पोषण-पालन किया। ये इसकी सेवा में ऐसे काल में प्रवृत्त हुए थे, कि जब बिहार में लोग हिन्दी को प्रेमदृष्टि से नहीं देखते थे और न इससे इन्हें बहुत लाभ की आशा थी। हिन्दी पुस्तकों को सेंत में लेना भी लोग मंहगा समझते थे। ऐसे कुसमय में इन्होंने बिहार में हिन्दी के लिये जो अकेले किया, वह आज इतने लोग मिल कर भी अभी तक नहीं कर सके। इनका हिन्दी प्रेम और सेवा वर्णनातीत है। इसी से आज भी इनकी जयन्ती मनाई जाती है, और बिहार में हिन्दी प्रचार में लोग इन्हें अगुआ मानते हैं। इनकी हिन्दी सेवा का कुछ हाल आगे भी ज्ञात होगा।

इनके सुयोग्य पुत्र राय साहब रामरणविजय सिंह भी प्रेस की उन्नति में लगे रहते हैं। यदि वे अपने पूजनीय पिता के समान लिखने-पढ़ने के कामों में कुछ अधिक मन लगावें, तो आज यह भारतवर्ष में एक ही यन्त्रालय हो जाय। इनकी हिन्दी पद रचना मनोहारिणी होती है। परन्तु खेद है कि इन्होंने अभी तक काव्य का कोई ग्रन्थ नहीं लिखा।

पत्र, पत्रिकाओं से प्रत्येक देश के जनसमुदाय के विद्यानुराग का अन्दाज़ मिलता है। जैसे २ किसी देश में भाषा की वृद्धि होती जायगी, समाचार पत्रों की भी संख्या बढ़ती जायगी। पहले सर्व साधारण में हिन्दी का अधिक प्रेम न होने के कारण हिन्दी-पत्रों का उतना आदर नहीं होता था। इसी से बहुत से पत्र कुछ दिनों तक चल कर चुप बैठ जाते थे और कितनों को प्रसूति के घर से ही विदाई लेनी पड़ती थी। अब इसकी ओर लोगों की रुचि प्रवृत्त हुई है। रुचिप्रवृत्ति का कारण यूरोपीय महाभारत और असहयोग का प्रचार ही कहा जायगा। अब कतिपय सुयोग्य सम्पादक निर्भीक भाव से पत्रों का संचालन और सम्पादन करते देखे जाते हैं।

पहले पहल खड्गविलास यन्त्रालय से "क्षत्रिय-पत्रिका" द्विज पत्रिका" भाषा-प्रकाश" तथा "ब्राह्मण" कुछ दिन निकल कर पाठकों की कृपा के अभाव से बन्द होते गये। एवं पटना नार्मल स्कूल के एक अध्यापक हसन अली द्वारा सम्पादित "मोतीचूर", पटना कलेजियट के अध्यापक पं० बद्रीनाथ द्वारा सम्पादित "विद्याविनोद", शक्तिनाथ झा द्वारा सम्पादित "चम्पारण हित-कारी", कुढ़नी निवासी जगदम्ब सहाय द्वारा सम्पादित "मिथिला हितैषी". तथा "भारत हितोपदेश". मुजफ्फरपुर से "आर्य्यबाल-

हितैषी", बेतिया से "चम्पारण—चन्द्रिका", जमोर, जिला गया से "हरिश्चन्द्र कौमुदी", गया से "उपन्यास कुसुमाञ्जलि", बांकीपुर से "सर्वहितैषी", भागलपुर से "यंग बिहार" (द्विभाषी)—तथा मुज़फ्फरपुर निवासी बाबू युगेश्वर सिंह द्वारा सम्पादित "भूमिहार ब्राह्मण पत्रिका", और वहीं से "रौनियार हितैषी" तथा "मध्य देशीय वणिक पत्रिका", "पीयूष प्रवाह" दानापुर से "आर्य्यावर्त" ये सब पत्रिकाएं निकलने लगी थीं और कुछ काल आमोद प्रमोद से लोगों को प्रसन्न कर सबों ने अपनी २ लीलाएं संवरण कीं।

इनमें से पं० अम्बिकादत्त व्यास के "पीयूष- प्रवाह" से पाठकों को तृप्ति होती थी। "क्षत्रिय पत्रिका" साहस प्रदान करती थी। "अर्य्यावर्त" आर्य्यसमाजियों को सन्तुष्ट रखता था। "भूमिहार ब्राह्मण पत्रिका" भूमिहार ब्राह्मणों को जगाती और कर्तव्य पालन सिखाती थी।

"ब्राह्मण" अपने उपदेशों से लोगों का बड़ा कल्याण करता था। इसके सम्पादक थे हिन्दी साहित्य संसार के सुविख्यात वीर, हिन्दी रसिकों के पूर्ण परिचित, अद्वितीय हिन्दी प्रेमी, कानपुर निवासी श्री पं० प्रतापनारायण मिश्र। इन्होंने बहुत से ग्रंथों की सृष्टि की है, जिनमें से "सङ्गीत शकुन्तला" एफ० ए० में पढ़ाया जाता है और इनका "ब्राडला स्वागत" काव्य पिंकाट साहब ने अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कर के विलायत के "इन्डिया" नामक पत्र में छपवाया था।

पीछे "तेली—समाचार", "रवानी हितकारी", "क्षत्रिय समाचार", "आत्मविद्या" "चैतन्य चन्द्रिका", "सतयुग", "कमला", "हिन्दी बिहारी", पाटलिपुत्र" और आरा से "मनोरञ्जन" तथा

"साहित्य पत्रिका" प्रकाशित होने लगी थी। ये पत्र-पत्रिकाएं भी हिन्दी संसार से विदा हो गईं।

"साहित्य पत्रिका" के पुनः प्रकाशित होने की बात सुनी जाती है। इसके विषय अच्छे होते थे और इसके द्वारा कई एक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। "मनोरञ्जन" खूब सजधज कर निकलता था और अपने सुन्दर लेखों से मन को रंजित किया करता था। "कमला" बड़ी ही कार्य्य कुशला और भय रहिता थी। "बिहारी" और "पाटलीपुत्र" निर्भीक देशहितैषी थे। पर एक को किसी अज्ञात कारण से और दूसरे को सुयोग्य सम्पादक की अकालमृत्यु से काल के गाल में प्रवेश करना पड़ा।

आजकल खड्गविलास से "हरिश्चन्द्र कला", विद्याविनोद" तथा "शिक्षा"; पटना से "देश", "प्रजाबन्धु" और "तरुणभारत"; दरभंगा से "मिथिलामिहिर", मुज़फ्फरपुर से "तिर्हुत समाचार" और आयुर्वेदाचार्य्य प० शिवचन्द्र मिश्र द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद प्रदीप"; मुंगेर से "देश सेवक"; छपरा से "नारद" और "महिलादर्पण"; गया से "लक्ष्मी", "गृहस्थ", साहित्यमाला" तथा "विद्या" एवं आरा से "मारवाड़ी" और "राम" का दर्शन होता है।

हमारी अपेक्षा तो आप ही लोग इन सबों से अधिकतर परिचित होंगे। हम तो यही जानते हैं कि इनमें से कई एक को उदरपोषण के लिये सरकारी विज्ञापनों का मुंह जोहना पड़ता है। "हरिश्चन्द्र कला" और "विद्याविनोद" को उत्तम और उपयोगी समझ कर शिक्षा विभाग स्कूलों के लिये खरीदता है। "शिक्षा" का छात्रों में प्रचार है और इससे निःसन्देह उन लोगों का हित साधन होता है। "मिथिलामिहिर" में हिन्दी भाषा तथा मैथिली

बोली दोनों में लेख रहते हैं। "विद्या" में कभी २ समस्या पूर्ति भी निकला करती है। "प्रजाबन्धु" प्रजा के हितसाधन में लगा हुआ है। राजा और प्रजा, एवम् मालिक और रैआया के मध्य प्रेमभाव का बढ़ाना उन लोगों का मनोमालिन्य दूर करना और उभय की सुखवृद्धि का यत्न करना—येही इसके मुख्य कर्त्तव्य हैं। "देश", "स्वदेश" तथा "तरुणभारत" ये सब राजनीतिक पत्र हैं। और सबके सब योग्यता पूर्वक स्वकार्य्य साधन में लगे हुए हैं। "तरुणभारत" को यदि "यंग इन्डिया" का प्रतिरूप कहें तो अनुपयुक्त नहीं होगा। हिन्दी संसार में यह दक्षतापूर्वक उसी का काम कर रहा है। उसके लेखों का अनुवाद भी इसमें प्रकाशित हुआ करता है।

"महिला दर्पण" अपने ढंग का प्रथम पत्र है। महिला द्वारा सम्पादित होने से सम्पादिका अपनी पाठकाओं की आवश्यताओं के समझने और उनकी पूर्ति का उपाय बताने में निश्चय समर्थ होंगी। हमारे विचार में तो कौंसिलों में पुरुषों की प्रतिद्वन्द्विनी बनने की अपेक्षा गृहलक्ष्मी और गृहदेवियां बनने ही में आर्य्या महिलाओं की अधिकतर शोभा है। अपनी भगिनियों को ऐसी ही शिक्षा और उपदेश देना सम्पादिका के लिये उत्तम होगा।

औरंगाबाद के रायसाहब श्री लक्ष्मी नारायण की कृपा से "श्री लक्ष्मी" का बहुत दिनों से दर्शन हो रहा है। निस्सन्देह वह उत्तम गुण सम्पन्ना है। उसे सब चाहते भी हैं। भला लक्ष्मी को कौन नहीं चाहेगा? अब आपने कृषि सम्बन्धी लेखों से भूषित "गृहस्थ" निकाल कर बिहार का गौरव बढ़ाया है। सम्पादक से धन्यवाद पूर्वक हम यही कहते हैं:—

"कृषक वृन्द कहं जन्म धन्य है, धन्य परिश्रम कठिन अपार।
तिन के अतुल परिश्रम फल सों, सुख भोगत सिगरो संसार॥
बिधत बूँद सर, थर थर कांपत, चुवत पसीना जिमि जलधार।
तउ कृषिकाज करत मन लाये, लसत किसान सदा चहुँपार॥
आतप, सीत अरू बरखा कहँ, सोइ जानत हैं एक समान।
योगी पर-उपकारी कहिये, अथवा कोऊ पुरुष महान॥
नहि किसान सों उरिन देश कोउ, करत विचार यहै निरधार।
'इनकी दशा सुधारहु चित दै, चित महँ राखि परम उपकार॥'"

"मारवाड़ी-सुधार" मासिक पत्र आरा से हाल ही से निकलने लगा है. इस के सम्पादक "हिन्दी भूषण" बाबू शिव पूजन सहाय जी हैं। पत्र मारवाड़ी सुधार-समिति के द्वारा आरा से प्रकाशित होता है। इस की छपाई, सफाई सराहनीय है। लेख भी उत्तम और लाभ दायक हैं। सुयोग्य तथा उत्साही सम्पादक के हाथ में रहने के कारण आशा है कि यह पत्र चिरस्थायी होगा। विहार के सुलेखकों को उचित है कि इस पत्र को उचित सहायता दें।

मनोरञ्जन के मौन हो जाने से बिहार में उत्तम मासिक पत्र का अभाव सा हो गया है। यह बिहार के हिन्दी प्रेमियों के लिये लज्जा की बात है। सुन्दर साहित्यिक विषयों से भूषित एक मासिक पत्र का निकलना आवश्यक है। यदि किसी ऐसे पत्र का योग्यता पूर्वक सम्पादन और संचालन हो तो उस के प्रचार की अवश्य सम्भावना है। क्योंकि सरस्वती आदि अन्य प्रान्तीय सुन्दर पत्रिकाओं की यहां बहुत खपत होती है।

यदि कोई नया पत्र न निकल सके तो लेखादि द्वारा सहायता देकर साहित्य पत्रिका ही के पुनरुत्थान् में यत्नवान् होना उत्तम

होगा। क्योंकि एक जातीय होने के कारण मारवाड़ी सुधार इस सार्वजनिक अभाव को दूर नहीं कर सकता, यद्यपि सर्व साधारण के काम और लाभ के कोई २ लेख उस में भी प्रकाशित होते हैं।

अब हम वर्तमान युग में प्रवेश करते हैं। इस युग की बहुत सी बातें प्रसंगानुसार पहले ही कही जा चुकी हैं। हमारी समझ में इस युग के पुराने हिन्दी सेवक बाबू गोकुल नन्द जी हैं। बाबू साहब प्रणीत "कमला सरस्वती," "पवित्र जीवन" और "मोती" सब ही अच्छी पुस्तकें हैं। "हिन्दी बिहारी" का आप ही सम्पादन करते थे।

कवि, सुलेखक और प्राकृत भाषा के शिक्षक, पण्डित अक्षय-बट मिश्र, जो पटना कालेज में हिन्दी शिक्षक हैं हिन्दी की सेवा में बहुत दिनों से तत्पर हैं। आपने हिन्दी तथा संस्कृत में एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं, उन में से "दशावतार कथा" "उपदेश रामायण" आदि कई पुस्तकों को खड्गविलास प्रेस ने छापा है। आप के लिखे जीवनी सम्बन्धी लेख भिन्न २ पत्रों में निकलते रहते हैं। आप कुछ काल तक "अवध केसरी" के सम्पादक भी थे।

क्या हमें इस सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के सभापति पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का हाल भी आप लोगों से कहना होगा? आप कवि तथा हास्यप्रिय सुलेखक हैं। आपने हम लोगों को "नवीन भाषा शैली की सृष्टि का तत्व" बताया है, "भारत वर्ष की वर्तमान दशा" का दृश्य दिखाया है एवं "संसार-चक्र" के हेर फेर से हमारी बुद्धि को चकित किया है।

वैसे ही हमारे पुराने मित्र भुवनेश्वर मिश्र ने अपनी "घराऊ घटना" से हमें विमोहित किया है।

डुमरांव के बाबू रघुनाथ प्रसाद सिंह ने "भाग्य चक्र" की लीलाएं दिखाई हैं।

हमारे प्रिय ईश्वरी प्रसाद शर्म्मा को हिन्दी संसार में कौन नहीं जानता! इन्होंने "मनोरञ्जन" द्वारा किस का मन रंजित नहीं किया है! बंगला उपन्यासों के अनुवाद से किस को आह्लादित नहीं किया है! इन के "रामचरित्र," "सीता" आदि से कौन परिचित नहीं है!

पं० जीवानन्द की बात कौन चलावे! इन्हों ने तो हिन्दी तथा देश सेवा में शरीर ही समर्पण कर दिया है। आप "कमला" के सम्पादक थे। आज कल "प्रजाबन्धु" द्वारा प्रजा से बन्धुता दिखा रहे हैं। आपने कई ग्रन्थों की रचना की है। पर सच पूछिये तो हम आप का "बाबा का ब्याह" देख कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। नाटक इसी प्रकार का होना चाहिये जिस से लोकाचार और समाज के सुधार की आशा बँधे। नहीं तो "लैला २ पुकारूं मैं बन में–लैला प्यारा बसे मेरे मन में" इस से क्या होगा?

आरा–खुटहा के (अब जहानाबाद के) युवक उत्साही होनहार लेखक अखौरी कृष्ण प्रसाद जी ग्रन्थरचना में सुन्दर विषयों का विशेष ध्यान रखते हैं। लेखन-शैली भी सराहनीय है। "वीर-चूड़ामणि," "नेलसन," "पन्ना," "श्रान्त पथिक," और "घोर पतिव्रता" सभी पुस्तकें अच्छी हैं। आरा—पतुलिया नवादा के अखौरी यशोदा नन्द सुप्रसिद्ध दैनिक भारत मित्र से सम्बन्ध रखते हुए सदा हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। इन्होंने "याजक विलमोन्ट" के सिवाय "शिक्षा विज्ञान की भूमिका" का भी अनुवाद किया है। तीसरे अखौरी आरा-कोरो के रहने वाले शिव नन्दन–प्रसाद गया से प्रकाशित "विद्या" का सम्पादन करते हैं।

साहित्याचार्य्य पं० रामावतार शर्म्मा को उन की विद्वत्ता, सुयोग्यता तथा हिन्दी सेवा के कारण भारत के सभी लोग जानते हैं। उनका लिखा व्याकरण आज कितने को हिन्दी लिखना पढ़ना सिखा रहा है। आप हिन्दी के धुरन्धर लेखक हैं; जबलपुर में महासम्मेलन के आप सभापति हुए थे।

बाबू राजेन्द्र प्रसाद एम० ए०, एम० एल० की तो वही कहावत है कि किसी का—"इनके आगे फ़रोग़ पाना। सूरज को चिराग़ हैं दिखाना॥" ये तो अपना सर्वस्व त्याग देशहित साधन व्रत अवलम्बन कर मानो संन्यासी हो रहे हैं। हिन्दी सेवा का भी वैसा ही उत्साह है। आप बिहार के प्रधान नेता और "देश" के सम्पादक हैं।

प्रोफेसर राधाकृष्ण झा एम० ए० ने "शासन पद्धति" और "भारत की साम्पत्तिक अवस्था" एवं बाबू अवधविहारी शरण एम० ए०, बी० एल० ने "मेगास्थिनीज का भारत-विवरण" लिख कर हिन्दी भाषा भाषियों को पुराकाल का दृश्य दिखाया है। बाबू बद्रीनाथ वर्म्मा एम० ए०-काव्यतीर्थ ने भी "भारत मित्र" प्रेस में रहकर और "समाज" नामक ग्रंथ रच कर हिन्दी की सेवा की है।

जगन्नाथ प्रसाद एम० ए०, बी० एल, दार्शनिक तथा काव्य तीर्थ, परमेश्वर लाल एम० ए०, बी० ए०, कृष्ण देव प्रसाद बी० ए० और काव्यतीर्थ, पं० बलभद्र ज्योति एम० ए०, बी० एल, तथा रामचन्द्र प्रसाद बी० ए०, एल० टी० इत्यादि कई गेजुएट भी हिन्दी के प्रेमी और सेवक हैं।

पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित तथा बाबू रामधारी सहाय विशारद तो "बिहार प्रादेशिक सम्मेलन" के जन्मदाता ही हैं। और दीक्षित

जी "तरुण भारत" के द्वारा, बिहार के क्या, सारे भारत के वृद्धों को भी तरुण बना रहे हैं।

पं० श्याम जी शर्म्मा के उद्योग से, हम समझते हैं कि, पटने में "चैतन्य पुस्तकालय" स्थापित हुआ है। आप कुछ काल तक आर्य्यावर्त के सम्पादक भी थे। आप ने कई महापुरुषों की जीवनियों से भूषित एक पुस्तक की रचना की है।

इसी सीतामढ़ी प्रान्त के बाबू नरेन्द्र नारायण सिंह महा-साहित्य सम्मेलन के उपमंत्री तथा "साहित्य सम्मेलन पत्रिका" के सम्पादक थे एवं कुछ दिनों तक "हरिश्चन्द्र कला" का भी सम्पादन करते थे।

केसरिया, चम्पारण निवासी बाबू इन्द्र देव नारायण ने महात्मा पं० शिवलाल पाठक कृत "मानसमयंक" की उत्तम टीका करके उस की छवि दर्शाई है। वह ऐसा गूढ़ और कठिन ग्रन्थ है कि बिना भाषा टीका के समझ में नहीं आ सकता। बाबू साहब ने इस टीका से रामायण के प्रेमियों का और हिन्दी का उपकार किया है।

हम समझते हैं कि "मयंक" के रचियता वही शिवलाल पाठक जी हैं जो बक्सर के महाराज के दरबार में थे और जिन्होंने रामायण की टीका करने में उन्हें सहायता दी थी।

मुज़फ्फरपुर-(शर्फ़ उद्दीपुर) के रुद्र कवि संगीत के ज्ञाता और आशुकवि काशी में वास कर रहे हैं। इन्होंने "रुद्रकौतुक विचित्र" और "प्रमोदशाला" आदि से लोगों को आनन्द दिया है।

बेतिया के सूर्य्यवंशलाल मिश्र ने वैद्यक पर ग्रन्थ लिख कर लोगों को आरोग्यता का उपाय बताया है और वहीं के

त्रिलोचन झा ने स्वरचित संगीत की पुस्तकों से लोगों को प्रसन्न किया है।

आरा—"प्रेम मन्दिर" के पुजारी देवेन्द्र प्रसाद जैन ने "प्रेमकली", "प्रेमपुष्पाञ्जलि", "त्रिवेणी" और "सेवाधर्म्म" आदि पुस्तकों को बड़ी सजावट से निकाला था जिसे देख बड़े २ प्रकाशकों की बुद्धि चकरा जाती थी। पर वे अब संसार से बिदा हो गये।

आरा के अग्रवाल वंशीय सुपार्श्वदास बी० ए०, "पार्लेमेन्ट" ग्रन्थ के लेखक डिपटी कलक्टर हो कर भी हिन्दी सेवा में लगे रहते हैं।

आरा-शाहपुर पट्टी के पारसनाथ त्रिपाठी "पाटलीपुत्र" के सहकारी सम्पादक थे। इन्होंने कई बंगभाषा के उपन्यासों का अनुवाद किया है।

इन महाशयों की रचनाओं के सिवाय इसी सीतामढ़ी स्थान के एक साधु श्री वैदेहीशरण जी की "रामसुमिरनी", पदमौल निवासी गोकुलानन्द प्रसाद का "जगदम्बा विनोद", आरा काथ के देवधारी तिवारी की "हनुमद् विजय", फ़तुहा के महंथ ज्ञानी दास जी का "कबीर परिचय", पटना के बाबू गुरुचरण सिंह का "नानक पंथ", उसी जिले के महावीर प्रसाद का "गंगामहादेव संवाद", चन्दन पट्टी के मुं० कीर्तिनारायण की "कीर्ति मञ्जरी", आरा के मुं० नौनिधि लाल का "मुक्ति प्रभाकर" और आरा महम्मद-पुर के शिवगुलाम लाल की "श्रीशिवार्चन मञ्जूषा", पलामू के मुं० महादेव प्रसाद की "पांडव विजय", पटना के टेकनारायण का "शाक्त मनरञ्जन" तथा "बिहार विभव" एवं छपरा जिला-अपहर ग्राम निवासिनी बाबू कृष्णदेव जी की पत्नी गोपअली कृत

"हनुमद् यशावली", "रामनाम माहात्म्य चालीसा" तथा "झूला-बहार" ये सब धर्म्म सम्बन्धिनी पुस्तकें निकली हैं।

गोपअली जी का भगवत् प्रेम मुग्धकर है। हम समझते हैं कि इस समय बिहार में कदाचित् यही महिला कवि हैं। "पांडव विजय" मान्यवर श्री रमेशचन्द्रदत्त कृत महाभारत का पद्यबद्ध अनुवाद है।

जैसे बिहार में गद्यरचना का सुप्रभात हुआ वैसे ही इसी बिहार में विद्यापति ठाकुर ने पहले पहल "परिजात अपहरण" तथा "रुक्मिणी प्रणय" नामक हिन्दी नाटकों की रचना की। इन नाटकों के तथा केशवराम भट्ट कृत "सज्जादसुंबुल" और "शम्शाद-सौसन" के अतिरिक्त आरा अख्तियारपुर के ब्रजनन्दन सहाय का "सत्यभामा", "उद्धवनाटक" और "सप्तम प्रतिमा" (भाषा से अनुवाद) एवं वहीं के विन्ध्येश्वरी प्रसाद का "अजामिल नाटक" आरा-कुम्हैला के बाबू गिरिवरधर का "रामवनयात्रा" गया के बाबू चमारी लाल का "विषयाचन्द्रहास", पटना ज़िला के बाबू महेश प्रसाद का "सावित्री नाटक" वहीं के निधुलाल मुख़तार का "विधवा विलाप", उसी ज़िले के पैनाठी गांव के महावीर प्रसाद का "लङ्कादहन", मुज़फ़्फ़रपुर के बनवारी लाल का "कंसविध्वंस", छपरा-सीवान के विंध्येश्वरी प्रसाद शुकुल का "शिवाशिव नाटक", उसी ज़िले के पं० जीवानन्द का "बाबा का ब्याह". छपरा के बाबू जगन्नाथ प्रसाद बी० एल० का "कुरुक्षेत्र" (हालही में छपरे में इसका अभिनय हुआ था), वहीं के बाबू लक्ष्मी प्रसाद बी० एल० का "उर्वशी" नाटक, बेतिया राज स्कूल के शिक्षक बाबू महावीर प्रसाद का "नलदमयन्ती" और बाबू श्यामनारायण का "वीर सरदार"—ये कई नाटक देखने सुनने में आये हैं।

इनमें प्रायः सभी धर्म्म सम्बन्धी नाटक हैं। इस प्रकार के नाटकों से लाभ अवश्य होता है परंतु पंडित जी का "बाबा का व्याह" कुछ और ही रंग दिखाता है। भिन्न २ सामाजिक अवस्थाओं को दिखाने वाले ऐसे ही नाटकों की आवश्यकता है जिनसे समाज सुधार एवं सदाचार–विस्तार की सम्भावना हो और जिनका अभिनय हो सके। ऐसे नाटक लिखने के योग्य वही लोग हैं जो मनुष्यस्वभाव तथा मनोविकारों के ज्ञाता हैं, या जिन्हें अच्छे २ संस्कृत तथा अंगरेज़ी भाषा के नाटकों के पढ़ने का अवसर मिला है। इस काम में हमारे संस्कृतज्ञ ग्रेजुएट हाथ लगावें तो निश्चय लाभ हो। आज कल जो नाटक खेले जाते हैं वे दर्शकों को केवल हानि ही पहुंचाते हैं।

उपन्यास में भी बिहार ही को सुख्याति प्राप्त हुई है। बिहार ही में रचे गये "सौंदर्य्योपासक" की समालोचना में "सरस्वती" पत्रिका में लिखा था कि "यदि बंगाल के उपन्यासों के साथ किसी हिन्दी उपन्यास को अबतक बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है तो इसी को। "यह महा साहित्य सम्मेलन की परीक्षा की पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किया गया है। कुछ दिन हुए इसे मराठीभाषा में अनुवाद करने के लिये एक वकील महाशय ने आज्ञा ली थी। न मालूम कि उन्होंने अनुवाद किया या नहीं। इस के लेखक ब्रजनन्दन सहाय के दूसरे उपन्यास लालचीन का, जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है, अंगरेजी में अनुवाद करने के लिये गया के एक बंगाली बन्धु ने अभी हाल ही में आज्ञा ली है। इनके सिवाय अखौरी कृष्णप्रसाद के उपन्यास भी अच्छे हुए हैं। पं० ईश्वरी प्रसाद ने बंगला के बहुत से उत्तम २ उपन्यासों का अनुवाद कर के पाठकों को आनन्द दिया है।

खड्गविलास प्रेस ने बंकिम बाबू के सब उपन्यासों का भिन्न २ लोगों से सुन्दर और शुद्ध अनुवाद करा कर उन्हें प्रकाशित किया है। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यहां शिक्षाप्रद उपन्यास अच्छे निकले हैं। यह हर्ष की बात है। उपन्यास के पढ़ने वाले अधिक होते हैं उपन्यास के द्वारा हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या निश्चय बढ़ी है और बढ़ती जाती है। अतएव उपन्यास लेखकों से हमारा अनुरोध है कि वे लोग ऐसे ही उपन्यास लिखें और ऐसे ही उपन्यासों का अनुवाद करें जो पाठकों के हृदय पर दूषणीय रंग न जमाने पावें; नहीं तो लेखकों के माथे भारी कलंक होगा।

खड्गविलास प्रेस ही ने पूर्वोक्त दामोदर शास्त्रीकृत "मेरी जन्म भूमियात्रा", "मेरी दक्षिणदिग्यात्रा" और "मेरी पूर्वदिग्यात्रा" इन तीन यात्रा की पुस्तकों को पहले पहल प्रकाशित किया। ऐसी पुस्तकें पहले कहीं नहीं छपी थीं। फिर भारतेन्दु के अभिन्न मित्र हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० रामशंकर व्यास की "परिभ्रमण" पुस्तक भी इसी यन्त्रालय में छपी।

यात्रा की पुस्तकें पढ़ने में लोगों का मन लगेगा और उन से लाभ भी होगा। प्रायः सब किसी को समय २ इधर उधर जाना ही पड़ता है। और कुछ न हो, तो बाबू अवधविहारीशरण एम० ए० की "हृषीकेशयात्रा" के समान लोग पत्रों ही में यात्रालेख छपवा दिया करें। उन लेखों के संग्रह से भी पुस्तकें बन सकती हैं। हमें स्मरण आता है कि आरा के बाबू जगदानन्द ने अपनी सीलोन यात्रा का वृत्तान्त अंग्रेज़ी में लिख कर छपवाया था। उसका हिन्दी में अनुवाद करना क्या अच्छा नहीं होगा?

बालकों के पढ़ने योग्य इतिहास तो बिहार में आदि ही से लिखे जा रहे हैं। परन्तु उन से क्या इतिहासपाठ की तृष्णा बुझ

सकती है ? बड़े २ इतिहासों की आवश्यकता है। यद्यपि यह कार्य्य शीघ्र नहीं हो सकता, तथापि हमलोगों को इस काम में लग ही जाना नितान्त उचित प्रतीत होता है। स्वदेश तथा अन्यान्य देशों का पुरावृत्तान्त जानने से बुद्धि का विकाश होता है। यह दुःख में ढाढ़स बंधाता है। गिरे हुए देश और जाति को पुनरुत्थान का पथ बताता है।

देश का बड़ा और ठीक इतिहास तैयार करने का सुगम उपाय यह है कि आरातत्व के समान पहले ज़िले २ का वृत्तान्त संग्रह किया जाय। अति प्रसिद्ध गांव के प्रतिष्ठित वृद्ध पुरुषों से वहां का पुरावृत पूछपाछ कर नोट किया जाय और तब प्रति जिले का विवरण "हंटर गज़ेटियर" जैसा लिखा जाय। फिर उन के तथा अंगरेजी भाषा के इतिहासों के सहारे जिस जगह का जैसा चाहे इतिहास प्रस्तुत हो सकता है। परिश्रम भी उतना नहीं होगा। "दस की लाठी और एक का बोझ" की कहावत होगी, केवल अंगरेजो के अच्छे ग्रंथों के आधार पर भी बृहत् इतिहास लिखा जा सकता है परंतु उपर्युक्त रीति से लिखने में घटनाओं की कुछ ठीक जांच की सम्भावना है। पहले भारतवर्ष का या उसके किसी खंड का इतिहास लिखना उपयोगी होगा। उस में अधिक देशीय बातों के समावेशित करने का ध्यान रखना होगा। पक्षपात शून्य नहीं होने के कारण अन्य जातीय इतिहास लेखकों ने भारत का इतिहास लिखने में यथोचित न्याय का परिचय नहीं दिया है।

अन्य देशों का इतिहास तो वहीं के इतिहासों और ऐतिहासिक लेखों तथा विवरणों से संकलित करना होगा।

हिन्दी में उत्तम भूगोल होना भी आवश्यक है। हमारे मास्टर लोफ़ीवर साहब कहा करते थे कि भूगोल इतिहास का नेत्र है।

अंगरेजी भूगोलों के सहारे इस की रचना की जायगी। आधुनिक नामों के साथ यदि पुराने नाम भी यथासाध्य दिये जायँ तो बहुत उत्तम होगा। पुरातत्ववेत्ताओं के लेखों और निबन्धों से इस काम में बड़ी सहायता मिल सकती है। मेगास्थिनीज़ एवं फ़ाहियन तथा हियुनसांग की यात्रा का विवरण प्रकाशित हो गया है। उन में दी हुई टिप्पणियों से बहुत काम चलेगा। इन पुस्तकों में से प्रथम का हिन्दी अनुवाद भी छप चुका है और शेष दो के शीघ्र ही छपने की सम्भावना है।

बिहार में पं० दुर्गादत्त, हकीम अफ़लातून आदि, मं० कु० बाबू रामदीनसिंह, राधाकृष्ण दास, तथा पं० बलदेव प्रसाद मिश्र प्रभृति के जीवनचरित्र लिखे गये हैं। पर वे इस नाम के अधिकारी नहीं दीखते। हां, "बिहारदर्पण" निश्चय परिश्रम पूर्वक लिखा गया है। इस के द्वारा विहार के २६ पुराने योग्य पुरुषों का यथा-सम्भव वृत्तान्त पाठकों के आगे प्रस्तुत किया गया है। इसे बाबू रामदीन सिंह ने स्वयं लिखा है और इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वामी भास्करानन्द, श्रीमती राजराजेश्वरी महारानी क्वीन विक्टोरिया, नेपोलियन बुनापार्ट, कर्नल जेम्स टाड, श्री पीपाजी तथा पं० अम्बिकादत्त व्यास की जीवनियों को प्रकाशित किया है। भागलपुर के "एंजिल" प्रेस ने भी जीवनी की एक अच्छी पुस्तक छापी है। आरा के शिवनन्दनसहाय ने "विदेशीय राष्ट्र-विधाता" नाम की पुस्तक में अन्य देशीय आठ प्रधान पुरुषों का जीवन वृत्तान्त समावेशित किया है और अम्बौरी कृष्ण प्रसाद ने नेल्सन की जीवनी लिखी है।

बिहार में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीसीताराम शरण भगवान

प्रसाद सिक्ख गुरुगण तथा गोस्वामी तुलसीदास जी के बृहत् जीवनचरित्र लिखे गये हैं।

जीवनचरित्र के जितने ही ग्रन्थ लिखे जायं, उतना ही लाभ होगा। देशी, विदेशी सब योग्य पुरुषों के चरित्रपाठ से मनुष्य का सुन्दर चरित्र संगठन हो सकता है, परन्तु जीवनियों की तिलंगियां न उड़ाई जायं और जो कुछ लिखा जाय यथासाध्य ठीक लिखा जाय। यदि किसी ऐसे पुरुष की जीवनी लिखने की बारी आवे जो दुरवस्था से उन्नति को प्राप्त हुआ हो, तो उसके बुरे दिनों की घटनाओं पर पर्दा न गिराया जाय, उसकी सच्ची अवस्था वर्णन करने में संकोच न हो। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अपने दुःख की कहानी आप ही सुनाई है। ऐसा करने से नायक की कोई क्षति नहीं होगी और जीवनी पढ़ने वाले को दुःख में ढाढ़स और साहस होगा।

आप लोग पहले बिहार के प्रसिद्ध पुरुष यथा बाबू गोविन्द चरण, महेशनारायण, बाबू शालग्राम सिंह, बाबू विश्वशेश्वर सिंह, केशवराम भट्ट इत्यादि का जीवनचरित्र लिखने की चेष्टा करें। पहले इन्हीं लोगों ने बिहार को उन्नति का मार्ग दिखलाया है। अन्य प्रान्त तथा अन्य देश के लोगों की जीवनी लिखने में कोई आपत्ति नहीं। परन्तु पहले अपने घर के लोगों को तो जान लीजिये कि कौन कैसे थे, किसने आपके वास्ते क्या किया? यह काम सभी कर सकते हैं, परन्तु कष्ट निश्चय सहन करना पड़ेगा। खेद है कि बिहार में हिन्दी के सुविख्यात प्रचारक बाबू रामदीन सिंह जी की अभी तक कोई बृहद् जीवनी नहीं लिखी गई। इसका लिखा जाना परमोचित प्रतीत होता है। हमारी समझ में जीवित पुरुषों की जीवनी लिखनी उचित नहीं। अनुभव कहता

है कि जीवनपर्य्यन्त लोगों के रंगढंग बदल जाने का सदा भय लगा हुआ है।

कृषि, वाणिज्य, विज्ञान, शिल्प, स्वास्थ्य रक्षा, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्रादि की पुस्तकें बहुत कम देखी जाती हैं। इनकी बड़ी आवश्यकता है। गृहस्थ-पत्र से तो कृषकों के उपकार की कुछ आशा बंधती है। पं० राधाकृष्ण झा की पुस्तकों के समान इन विषयों की छोटी बड़ी अच्छी २ पुस्तकें निर्माण होनी चाहिये। अंगरेज़ी जानने वालों को यह काम अपने हाथ में लेना क्या अच्छा नहीं होगा ?

आजकल व्याकरण, शब्दविन्यास, तथा बृहत् कोश की बड़ी आवश्यकता दिखाई जाती है। परन्तु हमारे विचार में इनसे अधिक पूर्वोक्त विज्ञानादि की पुस्तकों की आवश्यकता है। वर्त्तमान व्याकरणों से खूब काम चल रहा है। पुराने लोग क्या व्याकरण और कोश आगे रख कर इतना लिखते गये हैं। उनके लेखों में जहां तहां कुछ दोष हों, परन्तु उनके सुन्दर भावों और गूढ़ आशयों को बड़े वैयाकरण पंडित भी नहीं पहुंच सकते। हमको तो बच्चों को पढ़ते सुन कर सब मालूम हुआ है कि संज्ञा क्या बला है। हमारे मास्टर कहा करने थे "First Language was made, then Grammar was made"

जो लोग व्याकरण लिखें उनसे हमारा सानुरोध निवेदन है कि वे हिन्दी को संस्कृत के कठिन नियमों से अधिक जकड़ने की चेष्टा न करें। निश्चय जानें कि ऐसा करने से वे इसे राष्ट्रगद्दी पर कदापि नहीं बैठा सकेंगे। यह भाषा जितना ही सरल और व्याकरण के व्यर्थ बन्धनों से मुक्त रहेगी, उतना ही सर्वजन प्रिय होगी। दिन २ कठिन होते जाने से किसी और ही भाषा की सृष्टि हो

जायगी या इसका ही रूपान्तर हो जायगा । इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि जिसका जैसे मन चाहे लिखे, उसे कोई पूछे नहीं और व्याकरण का नाम ही उठा दिया जाय। परंतु जो शब्द आदि ही से हिन्दी में कोई रूप धारण कर चुके हों, चाहे शुद्ध हों या अशुद्ध वे उसी रूप में व्यवहृत किये जायं, और अब के बिगड़े हुए शब्द सुधार कर शुद्ध रूप में लिखे जायं । एक पण्डितजी ने "तुलसीदास" में दीर्घ इकार को ह्रस्व कर के कहा कि संस्कृत के नियमानुसार यही होना चाहिये। पर प्रचलित तो दीर्घ हो गया है। अब इस शुद्ध ही को सब अशुद्ध कहेंगे।

और यदि यकारान्त में इ, ई न लगाकर कोई केवल इ, ई का प्रयोग करे, वा न, म, ङ के साथ अक्षर न जोड़ करके केवल अनुस्वार ही का व्यवहार करे, तो उसका लेख दूषणीय न समझा जाय, क्योंकि इसके लेख में कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं दीखती। अंगरेजी में Labour, honour आदि कई शब्द आज भी दो रूपों में व्यवहृत होते हैं। शेक्सपियर तो एक ही पृष्ठ में एक ही शब्द को तीन तरह से लिख देते थे। हां, व्याकरण में इन विषयों का नियम रहे, धीरे २ लेखक स्वयं सुधरते जायंगे।

एक सुयोग्य पंडित महाशय कहते थे कि जिसे हिन्दी सीखनी हो वह पहले संस्कृत पढ़ले, तब हिन्दी आरम्भ करे। बात अच्छी है, पर संस्कृत ऐसी भाषा तो नहीं कि कोई वर्ष छः महीने में उसे समाप्त कर हिन्दी सीखने लगेगा। फल यह होगा कि बेचारा हिन्दी सीखने से भी रह जायगा। "हिन्दुई न पारसी, भैयाजी बनारसी" की दशा हो जायगी। हां! संस्कृतज्ञ पंडितों को हिन्दी सीखनी आवश्यक है। क्योंकि पंडित होने पर भी लोग एक पंक्ति शुद्ध हिन्दी नहीं लिख सकते।

स्त्रीलिङ्ग-पुलिङ्ग के बारे में भी माथा पीटना और लेखकों से कलह करना जरूरी नहीं। उर्दू-फारसी में भी पचासों शब्द आगोश, ख़लिश, खिलअत, तर्ज़, बुलबुल, ज़ुल्फ़ इत्यादि दोनों लिङ्गों में प्रयोग किये जाते हैं। जिसका जैसा जी चाहता है वैसा लिखता है। इसमें कोई झगड़ा नहीं करता।

कोश में तो साहित्य की सब शाखाओं के शब्द होने चाहियें और शब्दों के उदाहरण भी चाहियें। जब अभी सब प्रकार के शब्दों की सृष्टि ही नहीं हुई, तो कोश बनेगा क्या? क्या बड़ा कोश भी प्रति सम्मेलन में संशोधित हुआ करेगा। अतएव इन पुस्तकों से विज्ञानादि की पुस्तकों की हमें अधिकतर आवश्यकता प्रतीत होती है। हां! यदि कोई व्याकरण और कोश ही में मन लगावे, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं।

हिन्दीसाहित्य में काव्य का बाहुल्य है। बहुत से अच्छे २ काव्य अभी अप्रकाशित हैं। शृंगाररस और भक्तिपक्ष की कविता अधिक देखी जाती है। आज कल के कवियों में से दो चार को छोड़ कर दूसरों की रचनाओं को काव्य कहने को जी नहीं चाहता। कविता में कम से कम आनन्द उपजाने का गुण तो होना चाहिये। यह बात आज की कविता में नहीं पाई जाती। काव्य कलाओं और नियमों से सर्वथा कोरे, स्कूल और पाठशाला से निकलते ही, लोग कविता करने के लिये लेखनी उठाते हैं और शृंगार रस की निन्दा करने लगते हैं। शृंगार रस निन्दनीय नहीं है, रद्दी और कलुषित उपन्यासों से गया गुज़रा नहीं है। इस में हरि भक्ति उपजाने की शक्ति है। तभी श्री जयदेव जी की तथा विद्यापति की कविता गौराङ्ग महाप्रभु को मत्त बनाये रहती थी। इसी ने रहीम और रसखान को कृष्ण भक्त बनाया।

पहले ब्रजभाषा में कविता होती थी। १८८५ में मुज़फ़्फ़र-पुर के अयोध्या प्रसाद खत्री ने बिहार में खड़ी बोली का आन्दोलन आरम्भ किया। "खड़ी बोली" नाम की पुस्तक के द्वितीय भाग में भारतेन्दु पर कुछ कटाक्ष करने से कई एक पत्रों ने उसकी कड़ी समालोचना की। ये हिन्दी के प्रेमी थे। इन्होंने कई पुस्तकों की रचना की थी। इसी समय मानपुरा के बाबू लक्ष्मीप्रसाद ने गोल्ड-स्मिथकृत "हार्मिट" का खड़ी बोली में अनुवाद किया था।

हम खड़ी बोली वा किसी भाषा की कविता के विरोधी नहीं। यह हिन्दी भाषा के गौरव की बात है कि इसमें ब्रजबोली खड़ी बोली और उर्दू बोली (यदि उसकी रचना सरल हो) तीन बोलियों में कविता की जा सकती है। संसार भर की किसी भाषा के भाग्य में यह बात नहीं, परन्तु ब्रजभाषा की कविता के सम्बन्ध में इतना कहने की इच्छा होती है कि जब लोग यह बात स्वीकार करते हैं कि हिन्दी साहित्य ब्रजभाषा की नींव पर है और ब्रजभाषा के ग्रन्थों को उसमें से निकाल लेने से हिन्दी भाषा हिन्दी भाषा नहीं रहेगी और उसमें काव्य का सर्वथा अभाव हो जायगा, और जब आप हिन्दी भाषा के अङ्ग प्रत्यङ्ग की उन्नति करना चाहते हैं, तब ब्रजभाषा की कविता से एकदम उदासीन होना उचित नहीं। इस तरह उसे विस्मरण करने से कालान्तर में रासो के समान उसके समझने में कठिनाई होने लगेगी और सम्भव है कि यह रत्न हिन्दी साहित्य भंडार से बाहर निकल जाय। इससे हिन्दी की निश्चय क्षति होगी।

लोग कहते हैं कि ब्रजभाषा का मकान बन-बना कर तैयार हो गया और खड़ी बोली की नींव वैसे ही पड़ी है; अतएव इस की ओर ध्यान देना उचित है, पर नई बिल्डिंग बनाने की धुन में पूर्व

पुरुषों के बनाये हुए मकान को गिरने पड़ने देना क्या सराहनीय होगा? नये के साथ पुराने की भी रक्षा करनी हमारा धर्म्म और कर्तव्य है। उसकी सर्वदा सफ़ाई और मरम्मत आवश्यक है। आप पूर्व काल की चौकी, दरी, टाट के उदले उसमें मेज़, कुर्सी ही लगाइये; मणिदीप न रख कर गैसलम्प ही लटकाइये, उसके सहन में हिंडोरा न डालकर फुटबाल और टेनिस का ही मज़ा लूटिये, अष्टयाम और नायकाभेद की रचना का कष्ट न उठाइये। यह आज की रुचि के विरुद्ध होगा और इसमें परिश्रम करने पर भी आप प्राचीन कवियों के चरणों तक पहुंचने को भी समर्थ न होंगे; उनसे आगे डेग बढ़ाना तो सर्वथा असम्भव है। आप नये ख़याल और रुचि के अनुसार ब्रजभाषा में भी कविता किया कीजिये। पर ब्रज-बोली और खड़ी बोली की खिचड़ी मत पकाइये। क्या इस प्रकार की कविता ब्रजभाषा में हो ही नहीं सकती? क्या इस ढंग का काव्य उसमें नीरस होगा? यह मानने को हम तैयार नहीं हैं। जो लोग व्रजभाषा में कविता करने की शक्ति नहीं रखते वे खड़ी बोली ही में करें। जो लोग दोनों में रचना करने की शक्ति रखते हैं वे नये ढंग की रचनाओं से व्रजभाषा की कविता को भी अलं-कृत करने का यत्न करें जो आज भी हिन्दी साहित्य की सहज शोभा वर्धन कर रही है।

हम अपने मित्रवर पं० अयोध्या सिंह से पूछेंगे कि क्या ब्रज-भाषा की कविता लिखने में अब आप की लेखनी कुंठित हो गई है? मित्रवर! आप लोगों को दिखा दीजिये, और सिखा दीजिये कि आज की रुचि के अनुसार भी ब्रजभाषा में ललित कविता हो सकती है। देश में अनन्त आदर्श नरेश, देश भक्त, वीर शिरोमणि तथा महात्मा हुए हैं। उन पर काव्य लिखना लाभ दायक होगा।

और उन पर खड़ी बोली और ब्रज बोली दोनों में ही कविता की जा सकती है।

वर्तमान काल की कविता के सम्बन्ध में हाल ही में शिक्षा के सुप्रख्यात सम्पादक ने यह लिखा था कि आज की कविता भाव-शून्या होती है। चर्खे पर कई कविताएं बन गईं, इनके रचयिताओं को पुरस्कार भी प्राप्त होता गया है। पर उत्तम भाव किसी में नहीं देखा जाता। जब तक पुराने कवि लेखनी न उठावेंगे, कविताओं में सुन्दर भाव का होना दुष्कर है।

यद्यपि प्रतिभावान् पुरुषों को साहित्य संसार में अग्रसर करने के लिये समाचोलना के चिरागों और मशालों की जरूरत नहीं होती, तथापि साहित्य की उन्नति में यह सहायता करती है और स्वयं साहित्य की एक महत्वपूर्ण शाखा है। यह कोई विदेशी वस्तु नहीं है। प्राचीन काल में भी टीकाकार और भाष्यकार टीका भाष्य करते ग्रन्थों की कुछ समालोचना करते जाते थे। ग्रन्थकर्त्ता के हृदय के गूढ़ भावों को सर्व साधारण के सामने रखना, उन का गुण, दोष दिखाना, उस पर निरपेक्ष सच्ची सम्मति प्रकट करना, सच्चे विज्ञ समालोचक का काम है। चतुर माली के समान साहित्य वाटिका को कुशकांटों से साफ़ और सुन्दर सोहावन बनाये रखने की चेष्टा ही उसका कर्त्तव्य है। उसे राग, द्वेष रहित, पक्षपात शून्य और निर्भीक होना चाहिये। समालोचना करते समय व्यंग और कटु उक्ति उचित नहीं। इस से लेखक का उत्साह भंग हो जाता है। और नये को तो फिर लेखनी उठाने का साहस ही नहीं होता। आज कल पत्रों में जो समालोचनाएं निकलती हैं, वे वस्तुतः विज्ञापन स्वरूप ही देखी जाती हैं। बेचारे सम्पादक समालोचना करें, या अपना काम ? इस के लिये योग्य पुरुषों की

एक समिति नियत करना ठीक होगा। पाठ्य पुस्तकों की ओर ध्यान रखना भी बहुत आवश्यक है।

किसी साहित्य सम्मेलन का काम केवल साहित्य की उन्नति करने और उसमें अमूल्य पदार्थों के सञ्चय करने ही का नहीं है। पूर्व संचित वस्तुओं को नष्ट भ्रष्ट होने से बचाने का काम भी उसी का है। तब आप लोग क्या यह देख नहीं रहे हैं कि हिन्दी साहित्य का रामायण रूपी एक महा सोहावना वृक्ष क्षेपकों के लता बँवरों से आच्छादित हो अपना सहज सौंदर्य्य एवम् स्वरूप नसाये जा रहा है। पहले संस्कृत-नियमानुसार उस में के "स", "न" शोध कर " श " और "ण" बनाये जाते थे। पीछे उस पर क्षेपक के लताजाल फैलाये जाने लगे। अब उस के पास एरण्ड के समान एक अन्य ही क्षुद्र पेड़ (आठवां कांड) दीखने लगा है। हमारे ग्रेजुएट लोग जब स्पेन्सर आदि का पाठ करते हैं तो क्या उस में अनोटेटर (टीका कार) की ऐसे ही कृपा पाते हैं ?

सम्मेलन का कर्त्तव्य है कि क्षेपक दूषित रामायणों का प्रचार रोकने में यत्नवान् हो। नहीं तो उस की महाभारत की सी दशा हो जायगी, उस पर से लोगों की भक्ति उठ जायगी। तब धर्म और देश को बड़ी हानि पहुंचेगी।

बिहार की सभा समितियां में आरा नागरी प्रचारिणी सभा सब से पुरानी है। हमारे परम स्नेही पूज्यवर पं० सकल नारायण पाण्डेय के उद्योग तथा परिश्रम से १९०१ ई० में इसकी संस्थापना हुई। जिस उत्तम रीति से यह सभा आज तक काम कर रही है, यह हिन्दी संसार पर अविदित नहीं। शिक्षा बिभाग के कर्म चारिगण सदा इस की प्रशंसा करते आते हैं। १९१३ ई० में श्रीमान् लाट महोदय बेली साहब बहादुर ने कृपया इसका संरक्षक होना

स्वीकार किया था। पर बिहारी राजा बाबुओं की स्नेहमयी दृष्टि इसकी ओर अभी तक नहीं फिरी है। यह किस का दुर्भाग्य कहा जाय? सभा का या उन लोगों का? सभा ने "मैथिल कोकिल", "मेगास्थिनीज़" आदि कई एक उपयोगी पुस्तकों को प्रकाशित कर हिन्दी का भण्डार भरा है। और "साहित्य के नवरसों की मनो वैज्ञानिक व्याख्या" पर बाबू गुलाब राय एम० ए० एल० एल० बी० की एक पुस्तक शीघ्र निकलने वाली है जो नये ढंग की एक उत्तम पुस्तक होगी।

पण्डित जी की योग्यता के विषय में हम कुछ विशेष कहना नहीं चाहते, क्योंकि आप की योग्यता तथा पाण्डित्य किसी से छिपा नहीं है। पर यह अवश्य कहेंगे कि बिहार के सहस्रों मनुष्यों के मन में हिन्दी का प्रेम बढ़ाने वाले आप ही हैं। आप ने कई लाभदायिनी पुस्तकों की भी रचना की है। आप बांकीपुर से प्रकाशित "शिक्षा" का सम्पादन भी करते हैं। इस की उपयोगिनी टिप्पणियां पण्डित जी की सरल सुबोध भाषा की प्रदर्शनी होती हैं।

इस सभा के साथ एक पुस्तकालय भी खोला गया है जिस में कई हज़ार नई पुरानी पुस्तकें संगृहीत हैं। और इस सभा के द्वारा आरा के नवादा में "सरस्वती पुस्तकालय," मँझौआ एवं जमिरा में "हिन्दी पुस्तकालय" इस के शाखा स्वरूप संस्थापित हुए हैं।

जैनेन्द्रकिशोर जैन आरा ना० प्र० सभा के संस्थापकों और सहायकों में मुख्य थे! उन के बनाये उपन्यास आदि बीस ग्रन्थ उन के जीवनकाल में छप चुके थे। वे जैन गज़ट का भी सम्पादन करते थे, जो उस समय आरा से प्रकाशित होता था।

सिद्धनाथ सिंह भी इस सभा के आदिम कार्य्यकर्त्ताओं में से हैं। इन का "प्रणपालन" अच्छा हुआ है।

शुकदेव सिंह इस सभा के वर्त्तमान कार्य्यकर्त्ताओं में सम्मिलित हैं। ये और शिवपूजनसहाय "बिहार का हिन्दी साहित्य" लिखने के लिये सामग्रियां प्रस्तुत करने में लगे हुए हैं। काम निश्चय बड़े परिश्रम का है। परन्तु यदि कार्य सिद्ध हो गया तो ये लोग सब के धन्यवाद के भागी होंगे और बिहार का गौरव बढ़ावेंगे। ईश्वर इन हिन्दीसेवकों का परिश्रम सफल करे। शिव पूजन सहाय सुप्रसिद्ध सुलेखक हैं। वे "बिहार का विहार" "प्रेमकली" आदि के प्रणयनकर्त्ता हैं और मारवाड़ीसुधार का सम्पादन करते हैं।

आरा में आज कई वर्षों से "बाल हिन्दी पुस्तकालय" भी स्थापित है जहां सन्ध्या में स्कूलों के छात्र इकट्ठे होकर पुस्तक तथा पत्रादि पाठ किया करते हैं। यह अच्छी दशा में है। परन्तु यहां की दोनों सभाएं मान्यगण्य लोगों की कृपा की अपेक्षा करती हैं।

भागलपुर की सभा ने तुलसी दास जी के काव्यों की परीक्षा जारी की है। अब लोगों को उन के काव्यों के अध्ययन का और अधिक अनुराग बढ़ेगा। वहां इस सभा के साथ एक पुस्तकालय भी है। पं० भगवान् चौबे ने वह भवन निर्माण कराकर सभा को अर्पण कर दिया है। मुज़फ्फरपुर में भी ना० प्र० सभा है। उस के भूतपूर्व मन्त्री पं० नारायण पाण्डेय बी० ए०, एल - एल० बी० ने हिन्दी प्रचार का खूब काम किया था, उन्हों ने कई पुस्तकें भी लिखी थीं। उन का "कर्तव्याकर्तव्य शास्त्र" काशी की ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

गया में मन्नू लाल का पुस्तकालय दर्शनीय है। भवन और प्रबन्ध सभी सुन्दर हैं। हस्त लिखित पुस्तकों का भी वहां अच्छा संग्रह है।

लहेरिया सराय में भी हिन्दी सभा तथा पुस्तकालय हैं, इनके सिवाय बांकीपुर में रूपकला पुस्तकालय एवम् पटने में "बिहार हितैषी", "बराह मिहिर' तथा "चैतन्य पुस्तकालय" वर्त्तमान हैं।

परंतु बड़े खेद की बात है कि बिहार की राजधानी में जहां मान्यवर मौलवी ख़ोदाबख़्श खां साहब का ऐसा जग विख्यात फ़ारसी का पुस्तकालय है, और जहां मित्रवर बाबू रामदीन जी जैसे हिन्दी हितैषी और प्रचारक हो गये हैं, हिन्दी का कोई गौरव शाली पुस्तकालय अभी तक स्थापित नहीं हुआ। हां, बाबू साहब के अपने पुस्तकालय में भिन्न २ भाषाओं की चुनी हुई हज़ारों पुस्तकें हैं, पर उन से सर्व साधारण तो लाभ नहीं उठा सकते।

पहले से तो केवल "खड्ग विलास यन्त्रालय" दीन हिन्दी पर दया दिखा कर दिन २ सुन्दर पुस्तकों के द्वारा लोगों का हितसाधन करता आता है। परंतु अब आरा पथार निवासी पं० रामदहिन मिश्र भी दाहिने होकर स्वयं तथा अपने इष्ट मित्रों की सहायता से पाठ्य पुस्तकों का हार बना कर पाठकों को उपहार दे रहे हैं। एवं अस्फुट काव्य कलियों तथा पूर्ण विकशित काव्य कुसुमों की माला तैयार कर साहित्य रसिकों को भेंट करने लगे हैं।

गया के बाबू रामसहाय लाल प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता ने हमारी लक्ष्मी के पुराने पुजारी बाबू भगवान दीन कृत "काव्य-मन्जूषा" को प्रकाशित कर काव्य प्रेमियों के आगे रख दिया है। सम्मेलन परीक्षा ने भी उसे अपनाया है।

भागलपुर के ऐंजिल प्रेस ने अच्छे २ सुविख्यात पुरुषों की

सचित्र तथा सजिल्द जीवनी प्रकाशित कर विचारवान् प्रकाशक का परिचय दिया है।

पटने के कन्हैयालाल भी कभी २ कजली, होली, ठुमरी सुनाकर अथवा कोई कहानी ही कह कर लोगों को सन्तुष्ट कर देते हैं।

लहेरियासराय के बाबू रामलोचन प्रसाद और पुस्तक प्रकाशक वैदेही शरण जी पुस्तक प्रकाशन द्वारा हिन्दी की सेवा करते सुने जाते हैं। हाल ही में डाण्टेनगंज की "देवग्रंथमाला" भी इस मैदान में अवतीर्ण हुई है।

कई एक मुसल्मान भाइयों का भी हिन्दी में बहुत अनुराग देखा जाता है। क्यों न हो? रहीम, रसखान, मलिक, जायसी इत्यादि हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मुसल्मान हो तो थे। तब हमारे बिहारी मुसल्मान सज्जनगण इस से प्रेम क्यों नहीं करें? आप लोग जानते ही हैं कि माननीय सय्यद हसन इमाम साहब इस के पक्ष पाती हैं। और बेतिया के महम्मद मूनिस तथा मुज़फ़्फ़रपुर के महम्मद लतीफ़ हिन्दी के बड़े प्रेमी और सुलेखक हैं। यद्यपि मध्यप्रदेश के सय्यद अमीर (मीर) अली ने एक स्थान में सशोक कहा है कि "मुसल्मानों के घर में जो हिन्दी का बाग़ फलाफूला था, वह आज पतझड़ हो गया" तथापि अब भी कविता की धुनि मुसल्मानों के घरों से कभी २ सुन पड़ती है। भागलपुर ज़िला के मलैपुर निवासी वैल्लाह हिन्दी में पद्यरचना करते हैं। सीवान के ख़लीलदास श्रीकृष्णचन्द्र के गुणानुवाद में हिन्दी में भजनादि बनाते हैं और हिन्दी में वक्तृता भी देते हैं। मसौढ़ी (पटना ज़िला) के अबदुल जलील हिन्दी में अच्छा लेख लिखते हैं एवम् कभी २ कुछ कविता भी करते हैं। पटना कविसमाज में

पटना नार्मल स्कूल के एक छात्र शेरअली कविता भेजा करते थे। " बहार " की समस्या पर उन की एक पूर्ति सुनियेः—

"जा छिन सत्य घटै बसुधा युग द्वापर दाबत पाप पहार
दासन कष्ट बिमोचन धर्म हितू हित ब्रह्म धरै अवतार॥
ता छिन शक्ति समेत सबै सुर भावति भांतिन को बपु धार।
आइ बसैं ब्रज सानंद शेर बिलोकन केशव रास बहार

पादड़ी साहबों से भी हिन्दी प्रचार में सहायता मिलती है। बाजारों और मेलों में खड़े हो हो कर ये लोग हिन्दी में ही उपदेश देते हैं। अपने धर्म्मजाल में फंसाने के ही अभिप्राय से क्यों न हों, ये छोटी २ धर्म्मपुस्तकें अधिकतर हिन्दी में ही छाप कर वितरण करते हैं। अच्छी २ सर्वोपयोगी पुस्तकों की भी रचना करते हैं। मुंगेर के प्रेमचंद क्रिश्चियन के भजन सरल और बड़े हृदयग्राही देखे जाते हैं। बांकीपुर के डैन साहब ने कई पुस्तकें लिखी हैं।

पाठशालाओं और नार्मल स्कूलों से बढ़ते २ हिन्दी कालेजों में पहुंची है। पटना तथा कलकत्ता के विश्वविद्यालयों की उच्च परीक्षाओं में हिन्दी में परीक्षोत्तीर्ण होना तो पहले ही से अनिवार्य्य हुआ था, अब मैट्रिक में कई विषयों की शिक्षा तथा परीक्षा देशी भाषाओं में हुआ करेगी। संस्कृत के प्रश्नपत्रों में अब से संस्कृत से हिन्दी एवं हिन्दी से संस्कृत करने के प्रश्न रहेंगे। इसी से पण्डितों को हिन्दी सीखने की आज्ञा हुई है। अंगरेजी भाषा से अनभिज्ञ सदस्यों को व्यवस्थापिका सभाओं में अपनी भाषा में कथन करने की आज्ञा मिली है। मुन्सिफ़ों और डिपुटी मजिस्ट्रेटों को भी Departmental के लिये हिन्दी में परीक्षा देनी अनि-

वार्य्य है । इसके लिये उन्हें "मुद्राराक्षस" और "स्वर्णलता" आदि ग्रंथ पढ़ना पड़ता है ।

इधर तो सरकार की ऐसी कृपा हुई उधर असहयोग ने हिन्दी प्रचार में भारी योग दिया । सहस्रों को हिन्दी जानने और सीखने पढ़ने का अवसर मिला । अब कानफ्रेन्स तथा कांगरेस के काम भी प्रायः हिन्दी ही में हुआ करते हैं, व्याख्यान भी हिन्दी में दिये जाते हैं । नेशनल् स्कूलों और कालेजों में भी हिन्दी का विशेष ध्यान रखा गया है । "बिहारी छात्र सम्मेलन" ने भी अपने सम्मेलन में हिन्दी को कुछ स्थान दिया है । अब कुछ काल में कचहरियों में भी हिन्दी का कायापलट हो जायगा । और इसे अपना कलेवर धारण करने की आज्ञा हो जायगी । इसमें सन्देह नहीं ।

अन्य प्रान्तों के कई एक महानुभावों ने बिहार को अपना कार्य्यक्षेत्र बना कर हिन्दी के प्रचार में और उसका भंडार भरने में योगदान किया है । उनमें से पं० दामोदर शास्त्री सप्रे, पं० अम्बिका दत्त व्यास, पं० प्रतापनारायण मिश्र, बाबा सुमेर सिंह पं० अयोध्या सिंह, पं० रुद्रदत्त मुख्य और उल्लेख्य हैं ।

सारांश यह कि बिहार ही में गद्यरचना का सुप्रभात हुआ; यहीं पहले पहल हिन्दी में नाटक की रचना हुई; यहीं का उपन्यास बंगला के उपन्यासों का समकक्ष बताया गया; यहीं पहले पहले यात्रा की पुस्तकें छपीं, यहीं के बाबू रामदीन सिंह ने पहले पहल रामायण का शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया । पीछे काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा एक संस्करण निकला । इन दिनों संस्करणों में क्या भेद है जिसे यह जानना हो वह हमारा लिखा हुआ "गोसाईं तुलसी दासजी का जीवन चरित्र" देखे ।

इन्हीं बाबू साहब को "टाड राजस्थान" का हिन्दी अनुवाद प्रकाश करने का पहले ध्यान हुआ। उसका कुछ अंश छपा भी। पर खेद है कि वह अभी तक पूरा नहीं हुआ और उधर बम्बई में इसका एक अनुवाद निकल गया।

हिन्दी गद्य के प्राणदाता भारतेन्दु की बृहज्जीवनी यहीं लिखी गई। मित्रवर बाबू राधाकृष्णदास ने जो उनकी जीवनी छपवाई, वह भी "दिल्ली दरबार चरितावली" के लेखक, आरा (जगदीशपुर) निवासी हरिहरप्रसाद के ही आग्रह और अनुरोध से छपवाई गई, जैसा कि लेखक ने उसकी भूमिका में स्वयं लिखा है।

अब आप लोगों को स्पष्ट ज्ञात हो गया होगा कि बिहार आदि ही से हिन्दी साहित्य वाटिका के सजने सजाने में तत्पर चला आता है। इसने कई नई जाति के पेड़ों को भी इसमें पहले पहल आरोपित किया है; कई एक को काट छांट कर सिजिल किया है। परंतु अभी इसका बहुत सा भाग उजाड़ सा पड़ा है जिस से इसकी शोभा कुछ बिगड़ रही है। उधर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। प्यारे उत्साही सज्जनो ! प्रिय युवक भाइयो ! उठो; कमर कसो; बिलम्ब का समय नहीं; आलस्य का काम नहीं। भिन्न २ देशों से, भिन्न भाषाओं से नई २ वस्तुओं को संग्रह कर इसकी श्रीवृद्धि की चेष्टा करो। संग्रह और सञ्चय में संकोच नहीं। पूर्व की ओर देखो, पश्चिम दिशा में दृष्टि करो। अपनी २ भाषा और देश की उन्नति के लिये सबों ने यही पथ अवलम्बन किया है। जहां साहित्य अति उच्चावस्था को प्राप्त है वहां के लोग भी अन्य भाषाओं के रत्नों को अपने कोश में सयत्न प्रस्तुत करने में प्रवृत्त हैं। आज भी अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का अविरल श्रम

से अनुवाद करते जा रहे हैं । प्रत्येक भाषा के साहित्य में कुछ न कुछ विशेषता होती है । सब भाषाओं के उत्कृष्ट तथा उपयोगी ग्रन्थों का अनुवाद करने में या उनका आशय ग्रहण करने में कोई लज्जा की बात नहीं । पर इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि अन्य साहित्यों के दूषण अपने साहित्य में प्रवेश करने नहीं पावें ।

जो लोग सामर्थ्य रखते हों वे इसी मातृभाषा की मातामही संस्कृत के ज्ञानराशि-पूर्ण भंडारों की तालियां खोल कर उसके पूर्वसंचित बहुमूल्य मणिमाणिकों ही को इसके आगे धरने में यत्नवान् हों । उन भंडारों में किस वस्तु की कमी है ? उन भंडारों की स्वामिनी ने तो जगत् को सदावत बांटा है । उसके चरणों के पास बैठ शिक्षा ग्रहण कर तो प्राचीन जातियां सभ्य बनी हैं । उसके सेवकों को निस्सन्देह किसी दूसरे का मुंह ताकना नहीं पड़ा था । गवेषणा की गम्भीर गुफाओं में प्रवेश कर उन लोगों ने अभूतपूर्व पदार्थों को हस्तगत किया था । ध्यान के गहरे समुद्र में गोता लगा प्रभामय मोतियों से उसका अञ्चल भरा था; खोज की खानों से स्वर्ण, हीरे, पन्ने, जवाहिरात जैसी वस्तुओं को लाकर उसे अलंकृत किया था । आप लोग भी विज्ञ विद्याभूषित उन्हीं महापुरुषों के वंशज हैं । क्या आप लोग उस प्रकार मातृभाषा की सेवा की शक्ति नहीं रखते ? आप लोगों में से बहुत से ऐसी शक्ति अवश्य रखते हैं; निस्सन्देह रखते हैं । पर वैसा मन नहीं, वैसा अनुराग नहीं, वैसा उत्साह नहीं । वरन् अंग्रेज़ी के उच्चशिक्षाप्राप्त सुजन एवं संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वज्जन मातृभाषा को अनादर की दृष्टि से देखते हैं । वे बंगदेशीय बड़े २ डिप्लोमा होल्डर, भट्टाचार्य, न्यायरत्न, विद्याभूषण तथा विद्या-

सागरों की ओर ध्यान नहीं देते कि वे मातृभाषा की सेवा में कैसे दत्तचित्त रहते हैं। लाख सिर पीटते रहिये, लाख चिल्लाते रहिये, परन्तु मातृभाषा की सेवा और उन्नति बिना, आप देश की वास्तविक भलाई नहीं कर सकते। भारतेन्दु जी कहते हैं:—"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।"

और सुनिये, सुविख्यात वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय भारतेन्दु के समय "वंग दर्शन" द्वारा वंगदेशीय बन्धुओं को कह गये हैं कि "वंगभाषा तुम्हारी भाषा है, इसकी उन्नति करना तुम्हारा कर्तव्य है। परन्तु तुम हो कै आदमी? भारत का सच्चा शुभचिन्तक वही होगा जो हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये यत्नवान होगा।" इसी से वर्तमान काल के नेताओं ने भी इसी की शरण ली है और इस की उन्नति में लगे देखे जाते हैं। मातृभाषा की सेवा से भाषा ही की नहीं, वरन् साथ २ देश की भी सेवा होगी।

तब आप क्या माता की सेवा का बीड़ा उठाते हैं? सेवा की प्रतिज्ञा करते हैं? यदि हैं, तो आप पहले अपने को शुद्ध और पवित्र कीजिये। आज से पत्र व्यवहार, बही खाता, कारबार सब हिन्दी में चलाइये। अपने इष्ट मित्रों से, सगे स्नेहियों से, ग्राम वासियों से, प्रतिवासियों से ऐसा ही करने का अनुरोध कीजिये। ज़मींदारों को, राजा बाबुओं को, बड़े २ लोगों को हिन्दी में अपना काम चलाने के लिये समझाइये, बुझाइये। गांवों में पुस्तकालय, सभासमिति स्थापित कर गांव २ घर २ हिन्दी का प्रचार कीजिये। छोटे बड़े लोगों से लेख, प्रबन्ध लिखवा कर, पुरस्कारवितरण तथा पदकप्रदान द्वारा हिन्दी पढ़ने के लिये लोगों को प्रोत्साहित कीजिये। जहां हिन्दी का सर्वथा अभाव हो, वहां इसके प्रचार का यत्न कीजिये। देखिये, नज़र दौड़ाइये, उस दूरवर्ती जंगल पहाड़ों

से आच्छादित संतालपरगना में अभी माता की मूर्त्ति की दिव्य ज्योति स्फुटित नहीं हुई है। वहां इस सौम्य प्रतिमा की स्थापना का उद्योग कीजिये। इसमें कैसे कृतकार्य्य होंगे, इसे विचारिये, आज विचारिये, अभी विचारिये।

सरकार ने हिन्दी के लिये बहुत कुछ किया है। सरकार के अपना कर्तव्य पूर्ण रूप से पालन करने पर भी उस पथ से हमारे साहित्य की सर्वाङ्गीण उन्नति नहीं हो सकती। उद्योग करने से हमीं लोग इसे उन्नति के शिखर पर पहुंचा सकेंगे।

हिन्दी में सब कार्य्य सम्पादन से हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि कोई अन्य भाषा की ओर दृष्टिपात ही नहीं करें; अन्यभाषा सीखना ही छोड़ दें। परन्तु आपस में, अपने आत्मीयों के संग व्यवहार में, हिन्दी का ही व्यवहार करें। भाषाभिज्ञ दो साहबों को कभी आपस में हिन्दी में पत्रव्यवहार करते सुना है? देखा है? पढ़ने को तो अंगरेज़ी, फ़ारसी, अरबी, लैटिन, ग्रीक-सब पढ़िये, नहीं पढ़ने से भारतेन्दु के आदेश पालन में कब समर्थ होंगे?

"बिबिधकला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देशन सों लै करहु, भाषा माँहि प्रचार॥"

अब हमें अपने कायस्थ भाइयों से कुछ कहना है। हम लोगों पर हिन्दी की उन्नति का अवरोधक होने का दोष लगाया जाता है। यह अकारण अलीक कलंक लगाना है। हमारी जाति प्राचीन काल ही से हिन्दी की सेवा में लगी हुई है। कितनों ने इस सेवा के पुरस्कार में काव्याचार्य्य का पद प्राप्त किया था। इस समय भी हिन्दी हितार्थ कितने कायस्थ कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं और किस योग्यता से काम कर रहे हैं। परन्तु कायस्थ ग्रेजुएटों की संख्या अन्य लोगों से कहीं अधिक है। एक २ गांव में अनेक कायस्थ ग्रेजुएट वर्तमान हैं। और कोई ऐसा ही कायस्थ अभागा

होगा जो कुछ लिखा पढ़ा न हो। कायस्थ सदा से सरस्वती की आराधना करते आते हैं। इनकी लेखनी भी प्रभावशालिनी है। अतः मातृभाषा आप लोगों से अधिक आशा रखती है। हमारी प्रार्थना है कि हमारे कायस्थ भ्रातृगण अपने २ गांव में हिन्दी प्रचार का भार उठावें। एवम् और अधिक संख्या में कार्य्य क्षेत्र में अवतीर्ण हो जगत् को अपनी लेखनी की शक्ति दिखा दें। स्मरण रखिये, आप लोग "कलमसूर" कहलाते हैं।

अब सब उपस्थित बन्धुओं में हमें जो कुछ कहना है वह इसी कविता द्वारा कह कर हम अपना भाषण समाप्त करते हैं।

आयुरधन प्रभु दीन्ह दया करि, ताको व्यर्थ गंवायो।
निज भाषा हित, देश धरमहित, नहिं कछु अंश लगायो॥
माता, मातृभूमि अरु भाषा, आदर जोग समानहिं।
धिग ३ सो पूत कपूतहिं, जो नहिं अस जिय जानहिं॥
आप रहत सुख भोगत, माता असन बसन नहिं पावै।
तो किहिं गुणसों अस जन जगमों जननी पूत कहावै॥
सीखत बिबिध २ बिधि विद्या, तुच्छ गनहिं निज भाषा।
ऐसे नर कहँ सांचो जानहु, पुच्छरहित मृगसाषा॥
ठौर २ सो संग्रह कै धन निज भंडार भरावै।
जग सोइ होइ सुजस को भागी, तिमि गुनवंत कहावै॥
उठहु २ मममीत पियारे, नेकु न बार लगावहु।
विद्याखान सकल भूतल सों, रतन अमल घर लावहु॥
पूजहु मातु चरन आदर सों, गौरव मान बढ़ावहु।
सकल सुखी परिवार हरखि हिय, राष्ट्र तख़त बैठावहु॥
शिवनन्दनहु जोर जुगल कर, जननी सीस नवावै।
जय २ जय २ करत रावरी बिबिध बधाई गावै॥

अख़तियारपुर—आरा।
ता० १४-१०-२१] शिवनन्दन सहाय

देना को कुछ शिक्षा प्रद न हो। कायस्थ सभा से सरस्वती की आराधना करने आती हैं। इनकी लेखनी भी प्रभावशालिनी है, अतः [illegible] और लोगों से अधिक आशा रखती है। हमारी प्रार्थना है कि हमारे कायस्थ भ्रातृगण अपने २ गांव में हिन्दी [illegible] का भार उठावें। एवम् और अधिक संख्या में कायस्थ ग्रंथ [illegible] हो जगत को अपनी लेखनी की शक्ति दिखा दें। [illegible] [illegible], आप लोग "कलम-पुत्र" कहलाते हैं।

अब सब उपरिलिखित वस्तुओं में हमें जो कुछ कहना है वह इस कविता द्वारा कह कर हम अपना भाषण समाप्त करते हैं।

मानुष्य तन प्रभु दीन्ह कृपा करि, ताको व्यर्थ गंवायो।
निज भाषा हित, देश धरम हित, नहिं कछु ध्यान लगायो॥
भाषा, मातृभूमि अरु भाषा, आदर जोग समानहिं।
[illegible] २ को पूत कहावहिं, जो नहिं अस जिय जानहिं॥
[illegible], भाषा अवलम्ब [illegible] नाहिं [illegible]।
सो [illegible] जन जननी अजनी पूत [illegible]॥
[illegible] २ विविध विद्या, पुनहु गनहिं निज भाषा।
[illegible] आनहु, पुस्तकादि [illegible]॥
[illegible] २ सौ संचहु कै धन निज भंडार भरावै।
[illegible] होय सुजन को मानी, तिमि गुनवंत कहावै॥
उठहु २ [illegible] विचार, नेकु न वार लगावहु।
[illegible] भूषण सों, रतन अमल [illegible]॥
[illegible] सों, गौरव मान बढ़ावहु।
[illegible] परिवार [illegible] हित, [illegible]॥
शिवनन्दन [illegible], जननी सीस नवावै।
[illegible] २ [illegible] विजय बधाई गावै॥

[illegible]पुर—आरा] शिवनन्दन सहाय
ता० १५-१०-२१



बाबू शिवनन्दन सहाय



पं० सकल नारायण शर्मा

चतुर्थ

बिहार-प्रादेशिक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

पं० सकल नारायण शर्मा

विद्याभूषण का

भाषण

श्रीः

ओंकारपञ्जरशुकीमुपनिषदुद्यानकेलिकलकण्ठीम ।
आगमविपिनमयूरीमार्यामन्तर्विभावयेगौरीम् ॥
सरिगमपधनिरतान्नां वीणासङ्क्रान्तहस्तान्ताम् ।
शान्तांमृदुलस्वान्तांकुचभरतान्तां नमामि शिवकान्ताम् ॥
(कालिदास)

माननीय स्वागतकारिणी के सभापति, सदस्यो, प्रतिनिधियो, तथा दर्शकवृन्दो,

इस विश्व-वाटिका में रङ्ग बिरंगे पुष्पपुष्प खिले हुए हैं। उनके साहित्य-सौन्दर्य-स्वरूप सुगन्ध से कौन पुण्यात्मा प्रमोद पुलकित नहीं होता ? कौन अपने को इस निःसीम सुख से दूर रख सकता है ? क्योंकि संसार के सब कृत्य सुख के लिये हैं। अज्ञानवश मनुष्य दुःख में फँसते हैं। दुःख की जड़ अज्ञान है। इसके साक्षी सांख्य योगसूत्र हैं—"अविवेकितोबन्धः" "अविद्या-क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्" ज्ञान से केवल साधारण सुख ही नहीं होता। इसका अन्तिम फल पूरी स्वतन्त्रता है। चाहे वह लौकिक हो अथवा पारलौकिक।

ईश्वर नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध तथा नित्यमुक्त है। इसका कारण उसकी सर्वज्ञता-सब बातों का ज्ञान है। "तत्र सर्वज्ञताऽतिशयो बीजम्" (योगसूत्र)। यदि हम सुखी होने के लिये कुछ उपाय करना चाहते हैं, तो हमें ज्ञानी बनना चाहिये। यहाँ ज्ञानी शब्द का अर्थ जानकार है। केवल प्रकृतिपुरुष अथवा आत्मा-परमात्मा का ज्ञान ही नहीं।

किसी वस्तु का ज्ञान देखने, सुनने, अथवा संसर्ग से होता है। सब वस्तुओं के साथ सब का सम्बन्ध उक्त प्रकार से सरलता-पूर्वक नहीं हो सकता। उसका उपाय साहित्य-सेवा अथवा साहित्य-चर्चा है।

साहित्य क्या है ?

साधारण लोग साहित्य शब्द से 'काव्य' समझते हैं। पण्डित साहित्य का अलङ्कारादि बोधक ग्रन्थ अर्थ करते हैं। आज कल साहित्य शब्द काव्य, व्याकरण, भूगोल, गणित, विज्ञान, इतिहास, तथा शिल्पवाणिज्यादि विषयक पुस्तकों के समुदाय के लिये व्यवहृत होता है। आज कल के लोगों का विचार 'शब्दशक्ति प्रकाशिका-कार' श्रीयुत जगदीशचन्द्र भट्टाचार्य के मत से मिलता है— "साहित्यमेकक्रियान्वयित्वम्" अर्थात् एक काम में बहुतों के सम्बन्ध का नाम साहित्य है। मनुष्य जाति की ज्ञान वृद्धि में सभी विषयों के ग्रन्थ उपकारी हैं। उक्त भट्टाचार्य का लक्षण व्याकरण से भी मिलता है, कि सहित का अर्थात् संयुक्त का भाव साहित्य है। इस प्रकार कई विषयों की मिली हुई दशा का नाम 'साहित्य' हुआ। यह शब्द इस अर्थ में अंग्रेजी राज्य के पहले प्रयुक्त नहीं होता था। प्राचीन समय में ऐसे स्थल पर "वाङ्मय" शब्द व्यवहृत देख पड़ता है।

साहित्य-सेवा धर्म है।

धार्मिक साहित्य का पढ़ना लिखना अथवा आलोचनादि करना धर्म है। अतएव उपनिषद् की आज्ञा है कि "स्वाध्यायप्रव-चनाभ्यांनप्रमदितव्यम्।" रहा साधारण साहित्य, उसके विषय में महर्षि जैमिनि के मीमांसादर्शन के प्रथमाध्याय का मत है— "सतःपरमविज्ञानम्" अर्थात् साधारण साहित्यज्ञान के बिना अर्थ

का बोध नहीं होता। इस पर जो शबरस्वामी का भाष्य है, उसमें उन्होंने तो स्पष्ट लिखा है कि काव्य, कोष, व्याकरणादिक साधारण साहित्य, धार्मिक साहित्य के अर्थ के समझानेवाले हैं। कोई मनुष्य भक्तमाल अथवा गोस्वामीजी की रामायण पढ़ना चाहता है; पर यदि उसने साधारण साहित्य में कुछ भी परिश्रम नहीं किया है, तो उसका धार्मिक साहित्य का प्रेम निष्फल है। महर्षि पतञ्जलिजी ने भाष्य में लिखा है कि जो कोई मनुष्य किसी शब्द का तत्व भलीभांति जान कर उसका प्रयोग करता है वह स्वर्ग भागी बनता है—"एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्ज्ञातः स्वर्गे लोकेच कामधुग भवति।" साधारण साहित्य के ज्ञान के बिना शब्दों का सम्यग्ज्ञान अथवा सुप्रयोग होना असम्भव है।

ऋग्वेद में साधारण साहित्य के विषय में एक मन्त्र है कि मूर्ख लिखा हुआ न पढ़ सकता है और न किसी के पढ़ने पर उसका अर्थ समझ सकता है। उसका कानों से सुनना व्यर्थ है। साहित्य-सेवी विद्वान् सब बातें आखों से देख लेता है और उसका अभिप्राय समझ जाता है—"उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्या उशत सुवासाः।" इस मन्त्र में 'वाचं ददर्श' यह टुकड़ा है। इस पर ध्यान देने से सिद्ध होता है कि वैदिक साहित्य की आलोचना के समय में हिन्दू लिखना जानते थे, क्योंकि बिना लिखे बात देखी नहीं जा सकती। ऊपर बात के देखने की बात है। जो लोग हम पर कलङ्क लगाते हैं कि हम पहले लिखना नहीं जानते थे और विक्रम सम्बत् के पूर्व में आर्य जब व्यापार के लिये ववेरु (बैबीलोन) में जाने लगे थे, उसी समय वहां से लिपिकला ले आये, उन्हें उक्त मन्त्र मुंहतोड़ उत्तर देता है।

प्राचीन काल में साहित्य-सेवा चार प्रकार से होती थी। गुरु से पढ़ना स्वयम् उसका मनन करना, दूसरों को सिखलाना तथा अन्य व्यवहार अर्थात् पुस्तक रचना करना तथा विद्वन्मण्डली में चर्चा करना आदि। "चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकाले नेति (महाभाष्य)।"

इन दिनों सन्मेलन के द्वारा साहित्य चर्चा की जाती है। यह भी कोई नयी बात नहीं। यज्ञों के समय रात्रि में साहित्यालोचना पहले भी होती थी। निरुक्त में लिखा है कि—"यज्ञो हि यजमानस्य चाख्यान समयः।"

समय समय पर ऋषिया की मण्डली इकट्ठी होती थी। उसमें लोक-परलोक पर विचार होता था। शास्त्रकारों के जो प्राचीन ग्रन्थ हैं, उनमें एक दिन की आलोचनायोग्य सूत्रों का अथवा भाष्यों का नाम "आन्हिक" दिया हुआ है। सम्मेलन के साथ साहित्य का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि साहित्य का एक अर्थ सम्मेलन भी शब्दस्तोमाभिधान आदि में दृष्टिगोचर होता है।

बिहार ने साहित्य का समादर अन्य प्रान्तों से कम नहीं किया है। एक वार जनक की सभा में वैदिक साहित्य सम्मेलन हुआ था। उसमें कुरु तथा पञ्चाल के प्रतिनिधि भी आये थे। याज्ञवल्क्य उसके प्रधान वक्ता थे। उसमें विचक्नु की लड़की गार्गी भी सम्मिलित हुई थी और 'ब्रह्म' विषय पर बोली थी। इसका वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है।

दूसरा सम्मेलन बौद्ध साहित्य के लिये सम्राट् अशोक के समय में नालन्दा विद्यालय (बिहार-पटने) में हुआ था। किसी किसी की सम्मति है कि अजात शत्रु के समय में राजगृह में यह सम्मेलन

हुआ था। इसमें पाली भाषा (प्राकृत के दूसरे रूप) के हीनयान सम्बन्धी ग्रन्थों की आलोचना और निर्माण हुए थे।

पहले सम्मेलन में प्रधान वक्ता को एक हज़ार गौएं दी गयी थीं। दूसरे में साहित्य-सेवियों के यावज्जीवन पालनपोषण का प्रबन्ध किया गया था। उस आदर का फल यह हुआ कि पाली भाषा में बहुत सी धर्मपुस्तकें बनीं तथा उक्त भाषा ने धर्मभाषा का रूप धारण किया। हिन्दी साहित्य के समादर के लिये भारत में जितने यत्न हुए हैं, इनमें भी विहारियों का कम हाथ नहीं है। महाकवि विद्यापति ठाकुर की पद्यावली अपने उत्तम गुणों से बहुत ही प्रसिद्ध है।

डुमरांव के महाराजकुमार श्रीशिवप्रकाश सिंहजी के 'सत्सङ्ग-विलास' 'लीलारसतरङ्गिनी' तथा 'भावतत्व' आदि ग्रन्थ उत्तम श्रेणी के हैं। बेतिया के महाराज श्रीयुत आनन्दकिशोरजी का 'रागसरोज', बनैली राज्य के अधीश्वर श्री वेदानन्द का 'वेदानन्द विनोद' तथा शिवहर-राजकुमार का "शाक्तप्रमोद" आदि ग्रन्थ सहृदय समाज को बड़ा आनन्द देते हैं। 'सुदामाचरित्र' 'रसिक प्रकाश' कृष्ण रामायण, नामार्णव, अनेकार्थ—रसदीपिका, रसिक-रञ्जन-रामायण, कृष्णलीलामृतध्वनि, सीतारामचरणचिन्ह, अयोध्या महात्म, प्रेमगङ्गतरङ्ग, नख—शिख रसिक प्रकाश, भक्तमाल तथा पजनेश प्रकाश, इत्यादिक बहुत सी पुस्तकें विहारी कवियों की बनायी हुई हैं और कवि-समाज को बड़ी प्रिय हैं।

उपर्युक्त कवि, महाराज बकसर नरेश श्रीगोपालशरण सिंह जी, सूर्यपुराधीश्वर श्रीराजाराजेश्वरी प्रसाद सिंहजी तथा श्रीनग-राधिपति कमलानन्द सिंहजी के दर्बार में जो हिन्दी कवि रहते थे, उनके द्वारा जो हिन्दी-सेवा हुई है, वह भुला देने योग्य नहीं।

प्राचीन हिन्दी-साहित्य का भाण्डार इन लोगों की साहित्य-सेवा के कारण बहुत कुछ समृद्ध हुआ है।

पटने के साहबज़ादे बाबू सुमेरसिंहजी के शिष्यों ने बिहार में कवि समाज की स्थापना की। उस से कविता करने का सर्वसाधारण में प्रम उत्पन्न हुआ। जैनधर्म सम्बन्धिनी कविताओं के लिये आरा निवासी बाबू बनारसी दास का नाम भारतवर्ष भर में बड़े आदर से लिया जाता है। उनकी बनाई हुई पुस्तकों में "प्रवचनसार" "चतुर्विशति पूजा" "छन्दशतक" तथा वृन्दावनबिलास और "चौवीसी पूजापाठ" ये मुख्य हैं। यह स्वर्गीय अथवा प्राचीन हिन्दी सेवक की बात हुई। उनके समय में सम्मेलन नहीं हुआ किन्तु साहित्य सेवा कम नहीं हुई।

हिन्दी और सम्मेलन

बाबुल की राज्ञी ने भारतवर्ष पर सिन्धु देश की ओर से आकर पहले पहल आक्रमण किया था। उसकी सेनाओं ने यहां के लोगों का सिन्धु तथा उनकी भाषा का सैन्धवी नाम रखा। वे 'स' का उच्चारण 'ह' और 'ध का उच्चारण 'द' करती थीं इसी से हिन्द तथा हैन्दवी शब्द की उत्पत्ति हुई। वे ही दोनों शब्द इस समय हिन्दी कहलाते हैं। यह बात हमने आरा नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी सिद्धान्त प्रकाश' में लिखी है, उसी में बहुसम्मति से यह बात निश्चित की गयी है कि वर्त्तमान युक्तप्रदेश की सौरसेनी प्राकृत तथा बिहार की मागधी से ही वर्त्तमान हिन्दी का आविर्भाव हुआ है। जब अंगरेजों का राज्य भारतवर्ष में दृढ़ हो गया तब अङ्गरेज अधिकारियों ने देशी भाषा द्वारा शिक्षा देने की बात ठीक की। उन्होंने आगरे से पं० लल्लूलाल जी को और बिहार से आरा (मिश्रटोला) निवासी पं० सदलमिश्र को पुस्तक

रचना के लिये कलकत्ते में बुलाया। ये दोनों शिक्षा विभाग की अधीनता में १८६० में काम करते थे। पहले ने भागवत के आधार पर प्रेम सागर तथा दूसरे ने नासिकेतोपाख्यान की सहायता से चन्द्रावती नामक पुस्तक लिखी। प्रेमसागर में ब्रजभाषा की झलक अधिक है। चन्द्रावती की भाषा वर्त्तमान हिन्दी से बहुत मिलती जुलती है। येही दोनों पुस्तकें वर्त्तमान हिन्दी के आदर्श हैं। उन्हीं के ढङ्ग पर दूसरे लोगों ने शिक्षा विभाग के लिये पुस्तकें बनायीं जिनकी देखादेखी दूसरों ने वही शैली स्वीकृत की। मिश्रजी की हिन्दी का नमूना यह है—

कुण्ड में क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमें कमल के फूलों पर भौंरे गूञ्ज रहे थे। तिस पर हंस, सारस, चक्रवाकादि पक्षी भी तीर तीर सोहावन शब्द बोलते आसपास के गाछों पर कुहू कुहू कोकिलें कुहुक रही थी जैसा वसन्त ऋतु का घर ही होय।"

१८७० ई० के लगभग बिहार की पाठशालाओं में हिन्दी प्रचलित हो गयी, पर पुस्तकों की भाषा गंवारी कर दी गयी। उसमें संस्कृत अथवा फारसी के शब्द नहीं व्यवहृत होने पाते थे। १८७५ ई० में श्रीयुत बाबू भूदेव मुखोपाध्याय बिहार के शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर बनाये गये। उन्होंने डाइरेक्टर से लिखा-पढ़ी कर हिन्दी में संस्कृत शब्दों के व्यवहार की आज्ञा दिला दी। इससे हिन्दी का बड़ा उपकार हुआ। विद्वान स्वच्छन्दता से हिन्दी पुस्तकें लिखने लगे।

उक्त मुकुर्जी महाशय की विशेष प्रेरणा से १८७२ ई० में हिन्दी का कचहरी में प्रवेश हुआ। इस कार्य्य के आन्दोलक श्री रामदीन सिंहजी, पं० श्रीकेशवराम भट्ट तथा श्रीगोविन्दचरण एम० ए० थे। उक्त आन्दोलन के समय पटना निवासी बा० जग्र-

लीलाल ने (जो बहुत दिनों तक आरे में कलेक्टर के पेशकार थे) नागरी लिपि तथा हिन्दी भाषा का गौरव प्रमाणित किया था। जब पटने की कमिश्नरी में अमलों की जांच नागरी, फारसी तथा रोमन लिपि की द्रुतगामिता तथा सुपाठ्यता के सम्बन्ध में हुई तब उन्होंने ७० फारसी लिखनेवालों तथा २१ रोमन लिखने वालों से बहुत पहले नागरी लिपि में बतायी हुई बात लिखकर उसे कचहरी के योग्य सिद्ध किया था। कचहरी और स्कूलों में हिन्दी के प्रचार होने पर खड्ग विलास प्रेस के द्वारा श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी, लाल खड्गबहादुरमलजी, श्रीयुत् पं० प्रताप नारायण मिश्र, श्रीयुत् पं० राम गरीब चौबे, श्रीयुत् पं० अम्बिका दत्त व्यास साहित्याचार्य, श्रीयुत् पत्तनलाल तथा श्रीयुत् दामोदर शास्त्री जी आदि की पुस्तकें प्रकाशित हुईं। रामायण तथा विनय पत्रिका की शुद्ध प्रतियां छपीं। उनकी टीकाएं निकलीं। श्रीयुत् रामदीन सिंह जी कल्पवृक्ष की भांति लेखकों की सहायता करने लगे। हिन्दी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। उस समय कोई उल्लेख योग्य सभा बिहार में नहीं थी, पर सौ सभाओं के बराबर श्रीयुत् रामदीन सिंह जी हिन्दी साहित्य की संवृद्धि में संलग्न थे। स्व० राजवैद्य पं० बालगोविन्द तिवारी की सम्मति तथा बा० रामकृष्ण दास की आर्थिक सहायता से आरे में नागरी प्रचारिणी सभा स्थापित हुई। उसने नागरी लिपि तथा हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया और लोगों का ध्यान इधर विशेष रूप से आकृष्ट किया। कुछ दिन बाद मुजफ्फरपुर के स्व० बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने उक्त सभा को ५०) रुपये हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन करने के लिये दिये। सभाने आन्दोलन भी किया पर सफलता नहीं हुई। फिर बाबू साहब के

ही उद्योग तथा व्यय से हरिहरक्षेत्र में एक छोटा मोटा सम्मेलन हुआ। पर अधिक दिन तक न चल सका और उनके स्वर्गवासी हो जाने पर इसकी चर्चा ही बन्द हो गयी। इसके कई वर्ष बाद चिलहरी (डुमरांव) के श्रीयुत पं० उमापति दत्त शर्मा बी० ए० ने सभा को सम्मेलन के लिये बहुत उत्तेजित किया और स्वयं आर्थिक सहायता देने का वचन दिया पर हिन्दी के दुर्भाग्यवश वे भी अकाल ही में कालकवलित हो गये और सभाने जो आन्दोलन इसके लिये उठाया था वह जहां का तहां रह गया और काशी नागरी प्रचारिणी सभाने इस प्रश्न को नये सिरे से उठाया तथा वह भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की जन्मदात्री बनी। पर इस विचार का आदि-जनक मुजफ्फरपुर ही है। वहीं के लोगों ने इस प्रान्तीय सम्मेलन को भी जन्म दिया है। यह देख कर उक्त बाबू साहब की आत्मा स्वर्ग में कितनी प्रसन्न होती होगी वह कल्पना करने से भी आनन्द होता है। वास्तव में सम्मेलन का बीज वपन इसी प्रान्त ने किया और उसे सींच कर वृक्ष के आकार में खड़ा करने का श्रेय काशी की सभा को प्राप्त हुआ।

हिन्दी साहित्य की समृद्धि उसकी शैली पर अवलम्बित है। शैली के सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि यदि लेखक शब्द, वाक्य तथा तात्पर्य की शुद्धतापर ध्यान दें तो भाषा की शैली स्वयम् अच्छी हो जाती है। हिन्दी सिद्धान्त प्रकाश "शिक्षा" साप्ताहिक पत्रिका तथा श्रीयुत पं जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के गत अभिभाषण में अशुद्ध शब्दों पर पूर्ण विचार किया गया है।

वाक्य की शुद्धता के लिये, " ने " " जब तब " " यदि तो" आदि का ध्यान रखना आवश्यक है। बिहारी पहले " ने " के प्रयोग में भूल करते थे। उनका यह दोष अब दूर हो गया है, पर

कोई कोई 'जब' के साथ 'तब' न लिख कर 'तो' लिखते हैं। 'तो' का प्रयोग 'यदि' के साथ करना ही उचित है।

स्त्री लिङ्ग पुलिङ्ग का विचार बड़ा कठिन है, पर अभ्यास से यह भी सरल हो जा सकता है। लोग कहा करते हैं बिहारियों को इसका ठीक ठीक ज्ञान नहीं है किन्तु श्रीयुत् पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी जी को बिहारी होने पर भी इस विषय का अच्छा ज्ञान है, क्योंकि उन्होंने इस विषय में अच्छा परिश्रम किया है। उनकी बोली अधिकांश हिन्दी रसिक प्रमाणिक मानते हैं। इसी प्रकार जो हिन्दी के विज्ञ पुरुष हैं; उनके व्यवहार से शब्दों के पुलिङ्गत्व अथवा स्त्रीलिङ्गत्वका ज्ञान होना दुष्कर नहीं। वर्त्तमान व्याकरण से भी इस विषय में सहायता प्राप्त होती है। आकांक्षा आसक्ति तथा योग्यता पर दृष्टि रखने से तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है।

शैली के विषय में एक बात बहुत विवादास्पद है कि हिन्दी में भोजपुरी, मगही अथवा मैथिली के शब्द आने उचित हैं कि नहीं, जैसे 'हम बिहने आये हैं। इसमें ' बिहने ' शब्द विचारणीय है। यहां ' बिहने ' के स्थान में 'भोर' बोलना उचित है किन्तु जो प्रान्तीय शब्द किसी वस्तु स्थान अथवा प्रथा का बोधक है, उसका प्रयोग अनिवार्य है, जैसे-'इमली घोटाना'। बिहार के कई स्थानों में लड़के के विवाह में माता बारात जाने के पूर्व रोती है, उसका भाई उसे पानी पिलाकर चुप कराता है तथा उसे रुपया पैसा देता है। इस प्रथा का नाम-'इमली घोटाना है।' इसी प्रकार के अन्य वस्तुओं तथा स्थानों के उदाहरण सैकड़ों हैं। हमारी समझ में जहां संस्कृत शब्दों से काम चलता हो वहां प्रान्तीय शब्द नहीं लिखना ही अच्छा है।

कविता की भाषा

आज कल ब्रज भाषा के नाम पर अनिर्दिष्ट नामधेय भाषा में कविता होती है। गोस्वामी जी की रामायण भी उसी भाषा में है। यदि शुद्ध ब्रज भाषा में पद्य रचना हो तो अच्छी बात है नहीं तो बोलचाल की भाषा में कविता होनी चाहिये। "भारत मित्र" में मौजी के नाम से कभी कभी बोलचाल की भाषा में कविता छपती है, वह हमें पसन्द है, जो लोग अपनी कविता में ब्रज भाषा की गन्ध आने देते हैं, उनकी कविता खड़ी बोली अथवा ब्रज भाषा की नहीं। उन्हें अभ्यास बढ़ाना चाहिये। हर्ष की बात है कि बिहार में ही पहले पहल खड़ी बोली (बोलचाल) की भाषा में कविता करने के लिये आन्दोलन किया गया था, जिसके मुखिया बाबू अयोध्या प्रसाद जी थे। उसमें पूरी सफलता हुई। इस समय भारत के अधिकांश हिन्दी साहित्य सेवी बोलचाल की भाषा के प्रेमी हैं।

उन्नति में बाधा

बाइबिल में एक कथा है कि मनुष्य स्वर्ग में जाने के लिये एक इमारत बनाते थे। ईश्वर ने उनकी भाषा भिन्न भिन्न कर दी। मिस्त्री तथा मजदूर एक दूसरे की बातें नहीं समझने के कारण अपने उद्योग से विरत हो गये। इमारत का बनना रुक गया। बिहार की अवस्था भी इसी प्रकार की हो रही है। मैथिल चाहते हैं कि हमारी भाषा स्वतन्त्र रहे व उसे हिन्दी का स्थान दिलाना चाहते हैं।

भोजपुरी तथा मगही के बोलने वाले भी चुप नहीं। श्रीमान् ओलढम साहेब ने मगही की बहुत सी कहावतें इकट्ठी की हैं। वे

पुस्तकाकार छपेंगी। भोजपुर की कविताएं कभी कभी समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हो जाती हैं। यह प्रेम बढ़ता बढ़ता हिन्दी को राष्ट्र भाषा नहीं होने देगा। हिन्दी रसिकों को उपभाषाओं के प्रेम से सावधान हो जाना चाहिये। इस हिन्दी-विरोध का बीज हिन्दी रसिक मि० ग्रियर्सन ने बोया है। उन्हों ने तीनों के व्याकरण लिखे हैं तथा उन्हें स्वतंत्र भाषा माना है। बिहारी चाहे घर में कुछ भी बोलें, पर सभाओं, पुस्तकों तथा समाचार पत्रों में हिन्दी का ही आदर करें। इसी से देश की भलाई तथा एकता की वृद्धि होगी।

पत्र पत्रिकाएं

इन दिनों बिहार में बिहार बन्धु, नारद, देश सेवक, तरुण भारत, शान्ति, देश, महिला दर्पण, मारवाड़ी सुधार, राम, जैन महिलादर्श, तिहुत समाचार, निर्भीक, गृहस्थ तथा लक्ष्मी आदि पत्र पत्रिकाएं निकलती हैं। इनमें जिनकी नीलामी अथवा साधारण विज्ञापनों से पूरी आय होती है उन्हें अपने पत्र के लिये अधिक व्यय करना चाहिये। बिहार में कोई दैनिक पत्र नहीं, पर कलकत्ते के दैनिक पत्रों के सम्पादन तथा प्रबन्ध विभाग में हमारे परिचित ये बिहारी हैं।

श्रीयुत पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्री पारसनाथ सिंह बी० एल०, श्रीयुत यशोदानन्दन अखौरी, श्री० हरिकिशोर प्रसादजी श्री० ललिता प्रसाद जी, श्री कारजी, तथा श्रीयुत बदरी नारायण सिंह जी आदि।

यदि प्रयत्न किया जाय, तो भागलपुर अथवा पटने से दैनिक पत्र निकल सकता है। भागलपुर की शान्ति दैनिक बनने के यत्न

में है। पटने का "देश" आगामी कांग्रेस के अवसर पर कुछ दिनों के लिये दैनिक होने वाला है; पर उसको स्थायी रूप में दैनिक बनाने की आवश्यकता है। जहां तक हमारा ख्याल है "देश" का इस प्रान्त में अच्छा प्रभाव है; क्योंकि उसके सम्पादक देश मान्य स्वदेश प्रेमिक बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी हैं। इस लिये यदि वह दैनिक हो जाये तो उसकी सफलता निश्चित है। आशा है कि उसके व्यवस्थापकगण इस ओर ध्यान देंगे।

बिहार का मासिक साहित्य "मनोरञ्जन" तथा "कमला" के बन्द हो जाने से फीका सा हो गया। आज तक जितने मासिक पत्र बिहार से निकले, उनमें "मनोरञ्जन" सब से अधिक प्रिय हुआ। जब से वह बन्द हुआ तब से यहां कोई अच्छा साहित्य-सम्बन्धी मासिक पत्र नहीं निकला। चम्पानगर की "सुरति" और भागलपुर के नव प्रकाशित "सुप्रभात" भी उसका अभाव नहीं दूर कर सके। क्या हम आशा करें कि उसके सम्पादक उसे पुनः प्रकाशित करना आरम्भ करेंगे. मनोरञ्जन से बिहार का गौरव था और उसी के द्वारा शर्मा जी हिन्दी संसार में प्रसिद्ध हुए; यह बात कौन अस्वीकार करेगा? इस लिये हम चाहते हैं कि वे फिर उसे प्रकाशित करने की चेष्टा करें।

आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा की साहित्य-पत्रिका से भी लोगों को बड़ा लाभ पहुंच रहा था; पर खेद है वह भी गत कई वर्षों से बन्द है। अब जहां तक मालूम हुआ है; वह फिर त्रैमासिक रूप में निकलनेवाली है। ईश्वर करे इस बार वह चाहे जिस रूप में निकले; पर चिरस्थायिनी हो। हमारे प्रान्त की एक मात्र साहित्यिक संस्थाकी एक मुख पत्रिका का न होना कभी वाञ्छनीय नहीं है।

संस्कृत-परीक्षाओं में हिन्दी

इस समय बिहार की संस्कृत परीक्षाओं में हिन्दी नाम-मात्र को है। १५ और २० वर्ष पहले बिहार-संस्कृत-सञ्जीवन की निरीक्षता में जो परीक्षाएं होती थीं, उनमें हिन्दी का बड़ा आदर था। प्रथमा परीक्षा में भाषाप्रभाकर, मुद्राराक्षस (हिन्दी) तथा गोस्वामी तुलसीदास की रामायण का सुन्दरकांड तथा मध्यमा परीक्षा में भाषाभास्कर सत्य-हरिश्चन्द्र तथा रामायण का उत्तर काण्ड—ये पुस्तकें पाठ्य थीं। इनके पढ़ने से पण्डित मण्डली में हिन्दी का प्रचार बढ़ गया था। इनके पाठ्य क्रम से हटाये जाने से पण्डितों का प्रेम हिन्दी पर से हट गया। हमारे जैसे संस्कृतज्ञों को जो थोड़ा बहुत हिन्दी से प्रेम हो गया, उसका कारण यही है कि हमें परीक्षाओं के लिये उक्त ग्रन्थ पढ़ने पड़े थे। इस समय बिहार की संस्कृत ऐसोशियेशन में एक भी हिन्दी रसिक नहीं है, जो हिन्दी को उसका प्राप्य स्थान दिलाने का उद्योग करे।

पुस्तक-प्रचार

न्याय-सूत्र, कौटिल्य सूत्र, शाण्डिल्य सूत्र, बृहदारण्यक, याज्ञवल्क्य स्मृति, सूर्य सिद्धान्त तथा कादम्बरी आदि ग्रन्थ बिहार के प्राचीन साहित्य हैं।

पाली भाषा की सत्तिदान-कथा, सुत्तातिपात, महावंश, मज्झिम निकाम, प्रति मोक्खम् दाढवंश, पाराजिक पालि, चूल्लवग्गो, बुत्तोदयो पग्गुल पज्जति, कच्चायण व्याकरण आदि सैकड़ों पुस्तकें मध्ययुग के साहित्य हैं। इन दोनों प्रकार के साहित्यों के अनुवाद से हिन्दी की शोभा बढ़ानी आवश्यक है।

बिहार की जो हिन्दी पुस्तकें इन दिनों अलभ्य हो रही हैं,

उनका पुनः प्रकाशन होना भी परमावश्यक है। उनमें कृष्ण-रामायण, विनयपत्रिका की टीका, श्रीयुत राधालाल का हिन्दी शब्द कोष—ये पुस्तकें मुख्य हैं। इस समय जो पुस्तकें छपी हुई प्राप्त होती हैं, उन पर टीका टिप्पणियां और आलोचनाएं प्रकाशित होनी चाहिये। हर्ष की बात है, कि खड्ग विलास प्रेस भारतेन्दु की पुस्तकों पर टिप्पणियां और आलोचना लिखवा रहा है। श्रीयुत बाबू ब्रजनन्दन सहाय द्वारा सम्पादित विद्यापति ठाकुर की पदावलियों का पुनर्वार संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण निकल रहा है।

बिहार के स्कूलों में मैकमिलन कम्पनी की जो पुस्तकें पढ़ायी जाती हैं, उनकी भाषा बड़ी रद्दी होती है। समाचार पत्रों में उनकी विस्तृत आलोचना होनी चाहिये। लोग समझते हैं कि समालोचना से साहित्य की उन्नति नहीं होती यह उनकी भूल है। यदि माली बाग में कांटेदार झाड़ियों को किनारे पर न रखे अथवा अनुपयोगी शाखा–प्रशाखाओं की काट छांट नहीं करे तो बाग की शोभा नहीं बढ़ सकती।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पं० बिहारीलाल चौबे, पं० बलदेव राम झा आदि की पुस्तकें बिहार में ही छपीं और बिकीं। उनकी रचना में बिहारियों की बड़ी सहायता थी। वे पुस्तकें अब अप्राप्य हो रही हैं। सम्मेलन उनके प्रकाशन की व्यवस्था करे तो उससे लाभ भी होगा और यश भी मिलेगा। आरे की नागरी प्रचारिणी सभा ने रसायन, विज्ञान, इतिहास तथा जीवनी आदि विषयों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सर्व साधारण में उनका प्रचार करने की चेष्टा करनी चाहिये, अन्यथा उनका लिखा जाना और छपना निष्फल ही हो जायगा।

सभाएं और पुस्तकालय आदि

हिन्दी साहित्य की उन्नति के लिये सभाओं और पुस्तकालयों की स्थापना की बड़ी आवश्यकता है। गत बीस वर्षों के भीतर आरा, छपरा, मुजफ्फरपुर, डालटेनगञ्ज, भागलपुर तथा पटने आदि नगरों में अनेक सभाएं हिन्दी प्रचार का उद्देश्य लेकर प्रकट हुईं; पर इन सभाओं में वेही आजतक किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व रखे हुई हैं जिनके साथ साथ पुस्तकालय भी स्थापित हुए थे; शेष सभाएं नामशेष हो गयीं। सभाओं को लोकप्रिय बनाने के लिये निबन्ध पाठ, वक्तृता, समस्यापूर्त्ति तथा धूमधाम के वार्षिकोत्सव करने चाहिये। जो सभाएं निर्जीव हो गयी हैं, उन्हें इन उपायों को काम में लाना चाहिये। पुस्तकालयों की उपयोगिता को तो कोई अस्वीकार ही नहीं कर सकता। आरा नागरी-प्रचारिणी सभा का पुस्तकालय आरे में हिन्दीलेखकों और हिन्दी-प्रेमियों की संख्या बढ़ाने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। वहां सभा के पुस्तकालय के अतिरिक्त स्कूली छात्रों की सहायता और सहयोग से स्थापित "बाल-हिन्दी-पुस्तकालय" है, जो क्रमशः अच्छी उन्नति कर रहा है। आरे के नवादा नामक मुहल्ले में प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी बाबू शिवशङ्कर प्रसाद गुप्त के उत्साह से "सरस्वती हिन्दी-पुस्तकालय" भी बड़े मजे से चल रहा है। गया के बाबू सूर्यप्रसाद महाजन ने अपने पिता के स्मारक-स्वरूप जो "मन्नूलाल पुस्तकालय" स्थापित किया है, वह बड़ी ही उन्नत दशा में है और बिहार के सभी पुस्तकालयों का आदर्श होने योग्य है। बाबू सूर्यप्रसाद का यह साहित्यानुराग धनिकों के अनुकरण योग्य है। पुस्तकालय के स्थायित्व के लिये आप ने देवोत्तर सम्पत्ति की तरह भूमिदान कर दी है। भागलपुर की हिन्दी सभा के पुस्तकालय के लिये वहीं

के रईस पं० भगवान प्रसाद चौबे ने एक सुन्दर भवन बनवा दिया है। आरे की सभा के पुस्तकालय के लिये भी उसके अन्यतम संस्थापक स्वर्गीय बाबू रामकृष्णदास जी ने एक पक्का मकान दान कर दिया है। इस तरह के आदर्श दानी एक आध हर जगह पैदा हो जायं, तो विहार का कोई नगर पुस्तकालयों से शून्य न रहे। मुजफ्फरपुर की हिन्दी भाषा प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय का क्या हुआ, सो हमें मालूम नहीं।

सभाओं की ओर से कवियों का उत्साह बढ़ाने का भी निश्चय ही प्रयत्न होना चाहिये। इसी के न होने से यहां कवियों की संख्या नहीं बढ़ने पाती। यजुर्वेद ने ईश्वर की स्तुति 'कवि' के नाम से की है। यथा—"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।" साहित्य दर्पण में कविता की प्रशंसा में लिखा है.—

"नरत्वंदुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥"

अर्थात् "एक तो मनुष्य का जन्म पाना ही कठिन है; दूसरे विद्वान होना तो और भी कठिन है। विद्वान हो कर भी कवि कहलाना तो उक्त दोनों ही की अपेक्षा कठिन है; पर कविता की यथार्थ शक्ति प्राप्त करना तो सभी से कठिन है।"

परन्तु विहार इस कठिन परीक्षा में कितनी ही बार पारङ्गत सिद्ध हो चुका है। बिहारी सत्सई हिन्दी कविता की मुकुटमणि है। उसके टीकाकार हरिप्रकाश जी छपरा-जिले के ही रहने वाले थे। उन्होंने स्वयं अपनी टीका के प्रारम्भ में लिखा है:—

"राजत सुबे विहार में है सासन सरकार।
सालग्रामा सुरसरित सरजू सोम अपार॥

परगन्ना गोआल है गांव चैनपुर नाम।
गङ्गा से उत्तर तरफ सो हरि कविको धाम ॥"

पजनेस हिन्दीके पुराने कवियोंमें परम प्रसिद्ध हैं। उनकी कविताएं भी छपरेमें ही बनीं। वे बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे; पर छपरेको उन्होंने अपना निवासस्थान बना लिया था। इनका जन्म सम्वत् १८७८ है। उनके सम्बन्धी आरा निवासी पं० सरयू प्रसाद मिश्र थे। अबतक इनके वंशधर अपनेको पजनेस कबिका रिश्तेदार बतलाते हैं। पजनेस की प्रौढ़ कविता का एक नमूना देखिये :—

कैधौं भौंर पड्यौ है प्रिया के रूप सागर में।
कैधौं तन पजनेस भासत गोपाल को॥
कैधौं ससि अङ्क में कलङ्क ससि ताके सङ्ग।
कैधौं मुख पङ्क जपै बैठो अलि वाल को॥
कैधौं शुक्लपक्ष के समीप परिवाको जान।
कैधौं ऋतुराज आज पायो यश काल को॥
दरकि सुमेर फेरि पूरब खिसौना सीधी।
मोहन को टोना कै डिठौना बाल भाल को॥"

इसके 'भौंर' पद में श्लेष है। उत्प्रेक्षा अपनी शोभा अलग ही दिखा रही है। भाव की गम्भीरता की तो बात ही क्या है? इसका 'सिखौना' पद ब्रज भाषा के कोष के अभाव से आनन्द में वाधा उपस्थित करता है। खेद है, जहां सत्सई की टीका बनी, वहां अपने घर की कविता पर टीका नहीं लिखी गयी। सभाओं को चाहिये, कि अपने यहां के ऐसे ऐसे कवियों

सम्बन्ध में खोज ढूँढ़ करें और उनकी रचनाओं को सर्वप्रिय बनाने के लिये उनके सटीक संस्करण निकालें।

हम सभाओं और पुस्तकालयों में काम करने वाले साहित्य सेवियों की अपेक्षा उनके अनुरागियों, सहायकों और उत्साह दाताओं का विशेष अभिनन्दन करते हैं। उनकी बदौलत ही इन सभाओं और पुस्तकालयों का कार्य सुचारु रूप से चला करता है। आरे की नागरी प्रचारिणी सभा के लिये हमारे ज्येष्ठ भ्राता पण्डित सत्यनारायण जी पाण्डेय राय साहेब बा० हरसुप्रसाद सिंह बा० सिद्धनाथ सिंह बा० तपसीनारायण बा० ब्रज विहारी सहाय तथा बाबू ब्रजदत्त जी जितना उत्साह कार्य तत्परता और श्रम सहिष्णुता दिखलाते हैं, उतनी उसके लेखक-सहायकों में नहीं पायी जाती। इनकी उत्साहमयी सेवा सभा के जीवन के लिये बड़ी अनमोल सिद्ध हुई है। बा० सिद्धनाथ सिंह का सभा के साथ प्रेम तो बहुत ही लाभदायक हुआ है। यदि ऐसे ही सच्ची लगनवाले दो दो चार कार्य कर्त्ता हर जगह हो जायं तो बिहार का कोई स्थान सभाओं और पुस्तकालयों से शून्य न रहे।

नाटक-मण्डलियां

भारत वर्ष नाटक की जन्म भूमि है। विष्णु पुराण में लिखा है, "त्रिवर्ग साधनं नाट्यम्।" अर्थात् नाटक धर्म अर्थ और काम का साधन है। यह साहित्य का एक प्रधान अङ्ग है। हिन्दी में नाटकों की कमी नहीं; पर बिहारी लेखकों ने इसकी ओर कम ध्यान दिया है। जो लिखते भी हैं, उनकी समझ में नहीं आता कि नाटक का महत्व कितना बड़ा विस्तृत है। नाटकों में बातें संक्षिप्त होती हैं, पर उनका अभिप्राय विस्तृत रहता है। साहित्य दर्पण, काव्य-प्रकाश आदि में भरताचार्य के मत के अनुसार

नियम लिखे हुए हैं। उनके आधार पर भारतेन्दु जी ने भी "नाटक" नाम की एक पुस्तक हिन्दी में लिखी है। यदि नये नाटककार लिखने के पहले भारतेन्दु जी की इस पुस्तक का अध्ययन करलें तो उन्हें बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो सकती है। बिहार में आधुनिक हिन्दी में सब से पहला नाटक पं० केशवराम जी भट्ट ने ही लिखा। इन्हीं की स्थापित की हुई नाटक मण्डली ने इनके लिखे हुए सज्जाद सम्बुल आदि नाटकों का अभिनय किया था। बिहार में हिन्दी की सब से पहली नाटकमण्डली वही थी। उसके बाद आरे के बाबू जैनेन्द्र किशोर ने "जैन नाटक मण्डली" की स्थापना की, जिसमें उनके बनाये हुए हिन्दी-उर्दू मिश्रित नाटक बराबर खेले जाते थे। मुजफ्फरपुर में भी एक हिन्दी नाटक-मण्डली थी; पर अब वह नहीं रही। उसकी जगह पर एक नाटक-मण्डली स्थापित हुई है, जो आज भी अपने खेल दिखाती है और हिन्दी के शुद्ध नाटकों का अभिनय कर हिन्दी के प्रचार में सहायक बनती है। मोतिहारी में भी मित्र मण्डली यदा कदा हिन्दी नाटकों का अभिनय किया करती है।

बाबू जैनेन्द्र किशोर जी के स्वर्गवासी हो जाने पर आरे में कोई नाटक-मण्डली नहीं रह गयी थी। इधर ४ और ५ वर्षों से हमारे नगर के उत्साही हिन्दी प्रेमी, प्रसिद्ध सुलेखक पंडित ईश्वरी प्रसाद जी शर्मा के उद्योग से मनोरञ्जन नाटक-मण्डली नाम की एक नाट्यसंस्था अच्छा काम कर रही है। इसके उत्तम अभिनेताओं में उक्त शर्मा जी, बाबू शिवपूजन सहाय, बाबू शुकदेव सिंह, बाबू कृष्ण जी सहाय, बाबू शिव शङ्कर प्रसाद गुप्त और बाबू राजेन्द्र प्रसाद (उपनाम लल्लू जी) के नाम उल्लेख योग्य है। बिहार के प्रसिद्ध अभिनेताओं में श्रीयुत पण्डित जगन्नाथ प्रसाद

जी चतुर्वेदी, पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा और मौलवी लतीफ हुसैन के नाम बड़े आदर से लिये जाते हैं। चौबे जी का लिखा हुआ "समाज" नाम का जो नाटक कलकत्ते के एकादश सम्मेलन के अवसर पर खेला गया था, उसमें चतुर्वेदी जी ने अपना वह अभिनय-कौशल दिखलाया था कि लोग उन्हें सौ सौ मुंह से धन्यवाद देने लगे थे। उन्हें अपने अभिनय कार्य के लिये कितने ही पदक और पुरस्कार मिल चुके हैं। हाल में आरे की नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिकोत्सव के अवसर पर आरे की मण्डली ने जो अभिनय किया था, उसमें शर्मा जी ने भी अपने अभिनय कौशल से सहस्रों दर्शकों को मुग्ध कर दिया था। बेतिया में भी एक हिन्दी-नाटक मण्डली स्थापित है, जिसने दूसरे प्रान्तीय सम्मेलन के अवसर पर "कृष्णार्जुन-युद्ध" नामक नाटक बड़ी सफलता के साथ खेला था। हर्ष की बात है, कि छपरे में भी आज और कल "अभिमन्यु" नाटक खेलने की तैयारी है। आशा है, यहां के अभिनेता भी अपने अभिनय चातुर्य से दर्शकों को प्रसन्न कर सकेंगे और अपनी मण्डली को स्थायी बनाने की चेष्टा करेंगे। श्रीयुत लक्ष्मी प्रसाद जी का उर्वशी नाटक तथा श्रीयुत जगन्नाथ प्रसाद जी का पुरान आदि समय समय पर खेले गये हैं। इन नाटक मण्डलियों से हिन्दी की बहुत कुछ भलाई हो सकती हैं।

उपन्यास

गद्य-काव्य का यह नाम बङ्गालियों का रखा हुआ है। संस्कृत में उपन्यास का अर्थ "वाङ् मुख" अर्थात् बात का प्रारम्भ है। महाराष्ट्रवालों को भी गद्य काव्य के लिये कोई अच्छासा पर्यायवाची शब्द नहीं मिला। वे उपन्यास मात्र को कादम्बरी कहते हैं।

कादम्बरी संस्कृत के एक उपन्यास का नाम है। संस्कृत में उपन्यास का अर्थबोधक कोई विशेष नाम नहीं है, इसी से यह भूल हुई। हमारी समझ में उपन्यास का नाम "आख्यान" हो सकता था; पर अब तो जो प्रथा चल गयी, वही ठीक है। बिहारी लेखकों ने सब विषयों की तरह उपन्यास की ओर भी ध्यान दिया है। दर्भङ्गे के पं० भुवनेश्वर मिश्र जी की घराऊ घटना; आरे के बाबू ब्रजनन्दन सहाय के सौन्दर्योपासक और लालचीन और पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा की सीता, शकुन्तला और सती पार्वती आदि धर्म कथाएं (जिनको हम उपन्यास की ही श्रेणी में समझते हैं) बहुत ही अच्छी निकलीं। बाबू ब्रजनन्दन सहाय के सौन्दर्योपासक की हिन्दी-संसार में बड़ी प्रतिष्ठा हुई और वह इस प्रतिष्ठा के सर्वथा योग्य है। आज कल के नये गद्य-काव्य लेखकों में उक्त शर्मा जी का स्थान बड़ा ऊँचा माना जाता है। हमें उनकी यह बात बहुत पसन्द आती है, कि वे कथा भाग से उपदेश निकालते हैं। किसी शिक्षा के लिये दो पात्रों में विशेष कथोपकथन कराने की आवश्यकता नहीं। साधारण रूप से कथोपकथन अथवा उपदेश दिये जायं, तो बुरे नहीं लगते; पर उनकी अधिकता से तो पाठकों का जी ऊब जाता है। जिस समय देश में ऐयारी और तिलस्मी उपन्यासों के भरमार थे; उस समय भी बिहारी उपन्यासकार उन से दूर थे। अब तो कहीं कोई उनका नाम नहीं लेता यह बिहार के लिये गौरव की बात है। आज कल के उपन्यासों में अनुचित पाश्चात्य भाव का समावेश रहता है। उससे दूर रहना ही उचित है। उपन्यासकारों का ध्येय भारतीय भावों का प्रचार तथा समाज का सुधार होना चाहिये।

हिन्दी में स्त्री, पुरुष तथा बालकों के लिये भिन्न-भिन्न साहित्य

ग्रन्थ नहीं हैं, इसी से अनुपयोगी उपन्यास उनके हाथ में पड़ जाते हैं और उन्हें दुःखदायक जल में फँसा देते हैं।

बङ्गालियों ने अपनी मातृभाषा की बड़ी उन्नति की है। उनके यहां शिशुसाहित्य तथा स्त्री-साहित्य की प्रचुरता है। बिहार में स्कूल के पाठ्य ग्रन्थों के अतिरिक्त बालकों और बालिकाओं के पढ़ने योग्य शिक्षाप्रद उपन्यास नहीं से हैं। मुज़फ्फरपुर की वर्मन कम्पनी ने इस ओर काम करना शुरू किया था; पर वह उतनी सफल नहीं हो सकी।

यूनिवर्सिटी और हिन्दी

असहयोग-आन्दोलन के कारण बहुत से हिन्दी-रसिकों ने सरकारी यूनिवर्सिटी से अपना ध्यान हटा लिया है। इससे हिन्दी की बड़ी हानि हुई है। जहां हिन्दी सम्मान बढ़ रहा था, वहां घटने लगा। पहले मैट्रिक-परीक्षा में इतिहास के प्रश्नोत्तर हिन्दी में लिखे जाते थे; पर अब यह नियम उठा दिया गया। बङ्गाल में मातृभाषा ही यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में प्रधान मानी जाती है। बिहार की यूनिवर्सिटी हिन्दी से विमुख हो रही है। यदि सूर्यपुराधिपति के समान एकाध हिन्दी-प्रेमी वहां न होते, तो शायद आज भी वह जिस स्थान पर है वहां न रहने पाती। अभी तक इण्टरमिडियट और बी० ए० के परीक्षार्थियों को हिन्दी पढ़ाने के लिये हिन्दी के अध्यापक बिहार के कालेजों में नहीं नियुक्त किये गये। एम० ए० की शिक्षा और परीक्षा हिन्दी में हो, यह तो बड़ी दूर की बात है। परन्तु बिहारियों को इससे उदास नहीं होना चाहिये। वे यत्न करें, तो उन्हें किसी-न-किसी दिन निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी। कलकत्ता-यूनिवर्सिटी में

हिन्दी एम० ए० की शिक्षा गौण रूप से होती है। उसे मुख्य बनाने की चेष्टा पं० जगन्नाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी कर रहे हैं। यदि उन्हें सफलता हुई, तो ग्रेजुएटों में हिन्दी का आदर बहुत बढ़ जायगा। सम्भव है, कि कलकत्ता यूनिवर्सिटी की देखादेखी पटने की यूनिवर्सिटी की भी किसी दिन आंखें खुल जावें। इस समय कलकत्ता यूनिवर्सिटी में दरभङ्गे के श्रीयुत गङ्गापति सिंह जी हिन्दी के प्रोफ़ेसर हैं। वे भी इसकी उन्नति में लगे हुए हैं।

बहुत से लोगों का विचार है, कि हम राष्ट्रिय विश्वविद्यालय के द्वारा हिन्दी की सेवा करें और सरकार से कुछ न कहें। उन्हें हम उनके विचार पर ही छोड़ देते हैं; क्योंकि विद्या का प्रचार, चाहे जिस रूप से हो, अच्छा ही है। हां; जो लोग सरकारी विश्वविद्यालय से सम्बन्ध रखते हैं उन्हें यह उद्योग सदैव करते रहना चाहिये, कि शिक्षा की माध्यम हिन्दी हो और इसके लिये हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकों की रचना हो। वे मूल हों या अनुवाद, इससे कुछ बहस नहीं है।

शिक्षक, परीक्षक तथा निरीक्षक

पूर्व-मीमांसा दर्शन में लिखा है कि शब्द बड़े प्रयत्न से लिखा अथवा बोला जाता है। उसके उच्चारण, अर्थज्ञान अथवा प्रयोग में भूल होने पर पाप होता है। "शब्दे प्रयत्न निष्पत्तेरपराधस्यभागित्वम्।"

शिक्षक साधारण लोगों की अपेक्षा साहित्य की उन्नति अधिक कर सकते हैं। हमने बिहार सरकार द्वारा प्रकाशित Senior Teacher's Manual वा शिक्षक-सुहृद नामक पुस्तक में साहित्य पढ़ाने की रीतियों का वर्णन किया है। समय और स्थान के सङ्कोच से हम उनकी यहां चर्चा नहीं करते; पर इतना अवश्य

कह देना चाहते हैं, कि शिक्षकगण साहित्य का प्रचार करना चाहें, तो बड़ी ही उत्तम रीति से और सहज ही कर सकते हैं।

परीक्षकगण जो अन्धेर करते हैं, उससे हिन्दी की बड़ी हानि होती है। सम्मेलन को इस ओर ध्यान देना चाहिये। इनकी कृपा दृष्टि से प्रायः योग्य अयोग्य और अयोग्य योग्य हो जाते हैं। इस लिये हिन्दी के परीक्षकों की नियुक्ति में गड़बड़ न हो, इसकी ओर सम्मेलन को सदैव दृष्टि रखनी चाहिये।

इस समय एक बात हिन्दी के प्रचार में और भी बाधक बन गयी है। पहले ट्रेनिङ्ग स्कूलों में हिन्दी की मिडिल परीक्षा पास करने वाले विद्यार्थी भर्त्ती होते थे; पर अब यह नियम कर दिया गया है, कि मैट्रिक पास विद्यार्थी ही इन स्कूलों में लिये जायें। मैट्रिकवालों को हिन्दी का वैसे ही ज्ञान नहीं होता, अब इन स्कूलों से जो हिन्दी जाननेवाले अध्यापक प्रतिवर्ष निकलते थे, वह क्रम भी बन्द हुआ। इससे हिन्दीशिक्षा को बड़ी हानि पहुंची है। खेद की बात है, कि बिहार के हिन्दी-पत्रों ने इसके लिये थोड़ा सा भी आन्दोलन नहीं किया। सम्मेलन को इसके विरुद्ध प्रतिवाद का प्रस्ताव निश्चय ही पास करना चाहिये।

शिक्षा-विभाग के निरीक्षकों में बाबू भगवती प्रसाद एम० ए० और श्रीयुत ई० एल० प्रेस्टन महोदय हिन्दी साहित्य के प्रेमी, उन्नायक और सहायक थे। इन लोगों की सहायता से आरे की नागरी-प्रचारिणी सभा की विशेष उन्नति हुई है। इस समय पटना ट्रेनिङ्ग कालेज के प्रिंसपल श्रीमान् जे० एच० थिकेट साहब हैं। वे भी हिन्दी के ज्ञाता, प्रेमी और सहायक हैं। तो भी—इनके होते हुए भी—मिडल पास करनेवाले हिन्दी जाननेवालों के स्वत्व पर कुठाराघात हो गया। यह बड़े ही दुःख की बात है।

किसी समय श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद जी भी बिहार के शिक्षाविभाग के निरीक्षक थे । इनके समय में हिन्दी की बड़ी उन्नति हुई । आप हिन्दी के गद्य-पद्य दोनों ही के सुलेखक हैं । इन दिनों आप विरक्तावस्था में श्री अयोध्या में निवास कर रहे हैं; पर हिन्दी को अब भी नहीं भूले । आपके लिखे धार्मिक ग्रन्थों का हिन्दी-जगत् और वैष्णव-समाज में अच्छा आदर है । आपके पूर्वज भी हिन्दी गद्य पद्य की बहुत कुछ सेवा कर गये हैं । आपकी जन्मभूमि भी यह सारन जिला है । सुनने में आया है, कि इनका चित्र स्थानीय जिला स्कूल में रखा जाना निश्चित हुआ है ।

इसी प्रसङ्ग में हम बिहार के शिक्षकों, परीक्षकों और निरीक्षकों से यह अनुरोध करना आवश्यक समझते हैं, कि स्त्रियों में हिन्दी साहित्य का समादर करने का प्रबन्ध करना आप लोगों का परम कर्त्तव्य है स्त्री-शिक्षा का व्यवस्थित प्रबन्ध होने से इस प्रान्त में हिन्दी-प्रचार बहुत ही अल्पायास से हो सकेगा ।

हिन्दी की सत्व–रक्षा

बिहार प्रान्त के मानभूम आदि ज़िले, जहां बङ्गालियों का विशेष प्रभाव है, वहां के बङ्गाली उन जिले के स्कूलों तथा कचहरियों से हिन्दी को हटा देना चाहते हैं । उनका कहना है, कि यहां हिन्दी की प्रधानता नहीं रहनी चाहिये, क्योंकि इससे हम बङ्गालियों को बड़ी असुविधा होती है । उनकी इस थोथी दलील के उत्तर में यही कहना है, कि कलकत्ते में हिन्दी–भाषियों तथा अन्य भाषा भाषियों की संख्या ही अधिक है और उनका प्रभाव भी बङ्गालियों से बहुत बढ़ा हुआ है, फिर वहां के स्कूलों और

कचहरियों से बङ्गला क्यों नहीं उठा दी जाती? इसका कारण यही है, कि चाहे कलकत्ते में कोई क्यों न आ बसे, वह बङ्गाल के अन्तर्गत है, इसलिये वहां तो बङ्गाल की ही प्रधानता रहेगी। इसी प्रकार मानभूम आदि जिले बिहार के ही जिले हैं, इस लिये बिहार की मातृभाषा हिन्दी का वहां साम्राज्य होना ही उचित है।

बिहार के साथ ही उड़ीसा—प्रान्त भी जोड़ दिया गया है। इस लिये बिहारियों को चाहिये कि उड़ीसे में भी हिन्दी का प्रचार करने का यत्न करें। कटक के रावेन्शा कालेज के संस्कृताध्यापक महामहोपाध्याय पण्डित जगन्नाथ मिश्र जी हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं। यदि उनकी सहायता से उड़ीसे में हिन्दी-प्रचार का यत्न किया जाय तो निश्चय ही सफलता प्राप्त हो सकती है। यदि हिन्दी शिक्षा की प्रारम्भिक पुस्तकें उड़िया-अनुवाद के साथ प्रकाशित की जायं, तो उड़िये कुछ ही दिनों में बड़ी सुगमता से हिन्दी सीख लेंगे। इससे हिन्दी के सत्व की वृद्धि होगी। आरे के एडिशनल मैजि-ष्ट्रेट श्रीयुत नीलमणि सेनापति उड़िया हैं और थोड़े ही दिनों में अच्छी हिन्दी लिखने-बोलने लगे हैं। आप आरा-नागरी प्रचारणी सभा के उत्साही सभासदों में हैं। आप का ही उदाहरण देख कर हमें यह आशा होती है, कि उड़ीसा-निवासी अल्प आयास में ही हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

बिहार में हिन्दू और मुसलमान दूध चीनी की भांति घुल मिल गये हैं। यद्यपि आज भी कितने ही मुसलमान हिन्दी लिखते-पढ़ते हैं, तथापि अभी इनमें हिन्दी का प्रचार यथेष्ट रूप से नहीं हुआ है। इसके लिये उद्योग होना चाहिये। आरा नागरी प्रचारणी सभा ने कुछ वर्षों तक मुसलमानों को हिन्दी सिखलाने के लिये

अवैतनिक अध्यापक नियुक्त किये थे तथा उर्दू के द्वारा हिन्दी सिखलानेवाली पुस्तकें भी उनमें बांटी थीं। इससे बड़ा लाभ हुआ था, पर पीछे वह क्रम टूट गया। हमारी समझ में मुसलमान छात्रों के लिये विशेष वृत्तियों तथा पुरस्कारों का प्रबन्ध किया जाय, तो इस विषय में बहुत कुछ सफलता होने की आशा है।

बिहार में ईसाइयों की जो मिशनरियां हैं, वे हिन्दी की स्वत्व-रक्षा करती हैं तथा अपनी पाठशालाओं में हिन्दी की पुस्तकें पढ़ायी जाने का प्रबन्ध करती हैं। अतएव हम हिन्दी रसिकों को उनका यह उपकार अवश्य मानना चाहिये।

सौंतालों में हिन्दी का प्रचार

उपनिषद् कहती है कि परमात्मा ज्ञान-स्वरूप है—"नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।" उसके नाम "सच्चिदानन्द" में "चित" पद का अर्थ ज्ञान ही है। श्रुति और नाम दोनों में ज्ञान-बोधक शब्द बीच में है। इसका मुख्य ऐश्वर्य ज्ञान है। यदि यह उससे हटा लिया जाय, तो उससे कुछ भी नहीं हो सकता। जो सारे बिहार में हिन्दी ज्ञान के प्रचार किये बिना इसके साहित्य की उन्नति करना चाहते हैं, वे भारी भ्रम में हैं।

बिहार के सौंताल हिन्दी से अपरिचित हैं। उनके साथी भुइयां तथा पहाड़ी हिन्दी के एक दो वाक्य भी बड़ी कठिनता से समझते हैं। उनमें नागरी तथा हिन्दी का ज्ञान उत्पन्न कराना अत्यन्त आवश्यक है।

ईसाई पादरी सौंताली भाषा की पुस्तकें रोमन लिपि में छापते हैं और इस प्रकार सौंतालियों को इस लिपि का प्रेमी बनाते चले जाते हैं। बहुत से सौंताली इस प्रकार ईसाइयों की सहायता से

शिक्षित होकर अच्छे अच्छे सरकारी पदों पर कार्य कर रहे हैं। उनके बालक इन दिनों नियमित रूप से स्कूलों में शिक्षा पाने लगे हैं। कैसे दुःख की बात है. कि हमारे देश के ही निवासी हमारी उपेक्षा के कारण दूसरी लिपि और भाषा के प्रेमी होते जाते हैं। हमें उचित है. कि उनमें हिन्दी का प्रेम उत्पन्न करें। फिर तो इन सौंतालियों की देखादेखी भुइयां तथा पहाड़ी जातियों में भी आप से आप हिन्दी का प्रेम उत्पन्न हो जायगा।

सम्पादक-समिति

यदि अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के साथ अखिल-भारतीय सम्पादक समिति तथा प्रान्तीय सम्मेलन के साथ प्रान्तीय सम्पादक-समिति का अधिवेशन हुआ करे, तो बहुत ही अच्छा हो। इस से इन सम्मेलनों का गौरव बढ़ेगा और इनके अधिवेशनों के अवसर पर समस्त सम्पादक एक जगह आकर अपने समुदाय की उन्नति के सम्बन्ध में विचार कर सकेंगे। सम्मेलनों के अवसर पर सम्पादकों की स्थानी उपस्थिति होने से उनकी रिपोर्टें सभी पत्रों में विस्तृत रूप से छपा करेंगी। इस से भी साहित्य-प्रचार में अच्छी सहायता पहुंचेगी। यदि सम्मेलन का सम्मेलन सम्पादक समिति के साथ हो जाय. तो सोने में सुगन्ध आजाय।

आरे की नागरी प्रचारिणी सभा के उद्योग से भारतवर्षीय तथा प्रान्तीय सम्पादकों की दो तीन बैठक हो चुकी हैं; पर इन समितियों को कभी स्थिरता नहीं प्राप्त हुई। इस सम्मेलन को उचित है कि वह एक प्रान्तीय सम्पादक समिति को स्थिर रूप देने का प्रयत्न करे।

आज कल बिहार से जो पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं, उनके सम्पादकीय विभाग में निम्न लिखित विद्वान् कार्य करते हैं:– श्रीयुत राजेन्द्र प्रसाद जी, पं० पारस नाथ जी त्रिपाठी, श्रीयुत बटुक देव शर्मा, पं० प्रमोद शरण पाठक, बाबू जी० पी० वर्मा, श्रीयुत आनन्द बिहारी वर्मा, श्रीयुत रामानुग्रह नारायण लाल बी० ए०, श्रीमती चन्द्राबाई, श्रीमती शारदा कुमारी देवी, राय साहब लक्ष्मी नारायण लाल, बाबू शिव पूजन सहाय, बाबू श्रीकृष्ण प्रसाद बी० ए० बी० एल०, पं० अशर्फी मिश्र जी इत्यादि। इनके अतिरिक्त कितने ही ऐसे विद्वान् हैं; जो पहले कई पत्रों से सम्बन्ध रख चुके हैं, पर इन दिनों पत्र संसार से पृथक् हो रहे हैं; जैसे– बाबू गोकुलानन्द प्रसाद जी वर्मा, बाबू ब्रज नन्दन सहाय, पं० ईश्वरी प्रसाद जी शर्मा; पं० मथुरा प्रसाद जी दीक्षित आदि। इन भूतपूर्व और वर्त्तमान सम्पादकों को सम्मिलित कर एक प्रान्तीय सम्पादक समिति का सङ्गठन किया जा सकता है। अखिल भारतीय सम्पादक-समिति के कार्य कर्त्ता बाबू गोकुलानन्द प्रसाद जी वर्मा को चाहिये कि वे इस बार अपनी सारी शक्ति प्रान्तीय सम्पादक-समिति को ही सुसङ्गठित करने में लगा दें। आशा है कि आगामी वर्ष प्रान्तीय सम्मेलन के साथ साथ प्रान्तीय सम्पादक समिति का भी अधिवेशन अवश्य होगा। इससे बहुतेरे लाभ होंगे; क्योंकि जब इतने विद्वानों का सम्मिलित स्वर कोई आन्दोलन खड़ा करेगा, तब उसमें निश्चय ही सफलता होगी।

बिहार के हिन्दी सेवक

आरम्भ से ही आधुनिक हिन्दी के उद्गमकाल से ही बिहार में हिन्दी के लेखक और सेवक उत्पन्न होते आये हैं, यह बात हम

आरम्भ में ही कह चुके हैं। आज भी अनेक सज्जन विविध प्रकार से अपनी मातृभाषा की सेवा में लगे हुए हैं।

वर्त्तमान युग के सब से पुराने हिन्दी सेवक पण्डित विजयानन्द जी त्रिपाठी 'त्रिशारद' और बाबू शिवनन्दन सहाय हैं। त्रिपाठी जी भारतेन्दु के समकालीन लेखक हैं और कई पुस्तकें लिख चुके हैं। आप कितने ही पत्रों का सम्पादन भी कर चुके हैं। आपकी कविताएं अब भी सामयिक पत्रों में निकलती हैं। वृद्ध हो जाने पर भी साहित्य-सेवा के कार्य में आप युवकों की सी तत्परता दिखलाते हैं। आप बड़े ही आडम्बर शून्य और शान्त कार्य-कर्त्ता हैं। यही हाल बाबू शिवनन्दन सहाय का भी है। आप भी गत ४० वर्षों से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं और भारतेन्दु तथा गोस्वामी तुलसी दास की बड़ी-बड़ी जीवनियां लिख कर अच्छी कीर्ति अर्जन कर चुके हैं। आप की लिखी सिक्ख गुरुओं की जीवनी का भी अच्छा सम्मान है। आप के लिखे और भी कितने ही ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। आप ही गतवार इस प्रान्तीय सम्मेलन के सभापति बनाये गये थे और आप के भाषण में हिन्दी साहित्य के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ा था क्योंकि बिहार के साहित्य के इतिहास की सृष्टि आप के सामने ही हुई है।

बाबू गोकुलानन्द प्रसाद वर्मा भी बिहार के पुराने साहित्य सेवियों में हैं। आप कई पत्रों का सम्पादन कर चुके हैं और कितने ही अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिख कर यशस्वी हो चुके हैं। आजकल भी आप यदा-कदा भिन्न-भिन्न पत्रों में लेखादि लिखा करते हैं। आप हिन्दी के सच्चे हृदय से हितचिन्तक हैं और उसकी सेवा से कभी बिरत नहीं होते।

औरङ्गाबाद (गया) के वकील राय साहब लक्ष्मीनारायण

लाल जी विहार के उन गिने-चुने हिन्दी-प्रेमियों में हैं, जो हिन्दी के लिये प्रतिवर्ष पानी की तरह रुपया बहाते हुए भी कुण्ठित नहीं होते। लक्ष्मी के लिये आप अबतक कितनी आर्थिक हानि उठा चुके, पर उसे सदैव निकालते रहने का ऐसा कठिन सङ्कल्प कर चुके हैं, कि वे उसे कभी बन्द होने नहीं देते। यदि दूसरा कोई होता, तो इतनी हानि उठा कर २० वर्षों तक पत्रिका को कभी जारी नहीं रखता। हर्ष की बात है, कि उन के सुयोग्य पुत्र बाबू रामानुग्रह नारायण लाल बी० ए० के सम्पादकत्व और प्रबन्ध में " लक्ष्मी " की दशा इन दिनों बहुत अच्छी है। आप ही के सम्पादकत्व में गत ६। ७ सालों से "गृहस्थ" नामक एक मासिक पत्र निकल रहा है, जो किसानों के हित की बातों से भरा रहता है। आप किसानों के लाभ के लिये कितनी ही पुस्तकें भी लिख चुके हैं। आप इन दिनों बड़े लाटकी कौंसिल के सदस्य हैं, वहां भी आप अपनी हिन्दी हितैषिता का, काम पड़ने पर अवश्य परिचय देंगे।

आरा जिले के नवादा ग्राम के निवासी श्रीयुत यशोदानन्दन जी अखौरी भी हिन्दी के पुराने सेवक हैं। आप साहित्याचार्य स्वर्गीय पण्डित अम्बिका दत्तजी व्यास के सामयिक लेखक हैं। आपने हिन्दी ट्रेन्सलेटिङ्ग कम्पनी और नामशेष एक लिपि-विस्तार-परिषद् के "देवनागर" पत्र के द्वारा हिन्दी की बड़ी सेवा की हैं। इनके लेख समय-समय पर "भारतमित्र" में प्रकाशित होते रहते हैं। परन्तु इन दिनों आप ऐसे गुप्त रहते हैं, कि बहुत से लेख गुमनाम ही छपवाया करते हैं। इनकी बनाई हुई कितनी ही पुस्तकें हैं, जिनमें रेनाल्ड के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'जोजेफ विलमट' का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही प्रसिद्ध है। इसकी हिन्दी ऐसी सरल

हैं कि उससे सरल भाषा लिखना कठिन है। इस पुस्तक की भाषा लोगों को बहुत पसन्द आयी थी। आप हिन्दूधर्म के रहस्यों का अच्छा ज्ञान रखते हैं; इस लिये यदा-कदा त्यौहारों पर आपके अच्छे अच्छे लेख निकला करते हैं।

ऐसे हो पुराने हिन्दी सेवकों में बगहा (चम्पारन) निवासी श्रीयुत पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र का नाम भी विशेष उल्लेख-योग्य है। आप बड़े ही पण्डित हिन्दी-प्रेमी तथा कवि हैं। आपने बहुत दिनों पहले हिन्दी-प्रेम की उमङ्ग में आकर 'विद्या धर्म-दीपिका' नामकी एक पत्रिका निकाली थी, जिसे वे लोगों में मुफ्त बांटा करते थे। बिहार के सिवा शायद और किसी स्थान के किसी हिन्दी प्रेमी ने हिन्दी-प्रचार के लिये इस प्रकार मुक्त-हस्त होकर धन नहीं लुटाया। यह गौरव पण्डित चन्द्रशेखरधर को ही प्राप्त है। नाना कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी पण्डितजी आज तक हिन्दी को नहीं भूले हैं।

साहित्याचार्य पण्डित रामावतार पाण्डेय एम० ए० भी अपने लेखों और रचनाओं से हिन्दी का उपकार करने में सदैव तत्पर रहते हैं। आपसे हिन्दी को बड़ी आशाएं हैं। पटना कालेज के अध्यापक पं० अक्षयवट मिश्रजी भी हिन्दी के पुराने सुलेखक, सुकवि और ग्रन्थकार हैं। आपकी हिन्दी सेवा का प्रान्त में कौन नहीं आदर करता?

बिहार के शिक्षा-विभाग के अन्यतम कार्यकर्त्ता; पटना-कालेज के भूतपूर्व अध्यापक प्रोफेसर राधाकृष्ण झा, एम० ए० अपनी "भारतीय शासन-पद्धति" और "भारत की साम्पत्तिक अवस्था" नामक पुस्तकों द्वारा हिन्दी साहित्य का अच्छा उपकार कर चुके हैं तथा समय समय पर हिन्दी पत्रों की भी लेखों द्वारा

सहायता किया करते हैं। आपका यह हिन्दी-प्रेम अन्य ग्रैज्युएटों के अनुकरण योग्य है।

खेद है, कि इधर कई वर्षों से प्रोफेसर बदरी नाथजी वर्मा एम० ए०, बाबू अवध बिहारीशरण एम० ए० बी० एल० तथा बाबू सुपार्श्व दास गुप्त, बी० ए० ने हिन्दी लिखना छोड़ सा दिया है। आप लोगों ने पहले हिन्दी की अच्छी सेवा की है। प्रोफेसर बदरी नाथ की 'समाज', बाबू अवध बिहारी शरण की "मेगास्थिनीज का भारत विवरण' तथा बाबू सुपार्श्व दास गुप्त की 'पार्लियामेंट' नामक पुस्तकों का हिन्दी संसार में अच्छा आदर हुआ है। पांडेय जगन्नाथ प्रसाद, एम० ए०, बी० एल० काव्यतीर्थ दर्शन केसरी; बाबू परमेश्वर प्रसाद एम० ए० बी० एल०, बाबू कृष्णदेव प्रसाद बी० एल०, पं० बलभद्र प्रसाद ज्योतिषी, एम० ए० बी० एल० तथा बाबू रामचन्द्र प्रसाद बी० ए०, एल० टी० आदि अन्य ग्रैजुएटों से भी हमारी यही शिकायत है कि अब वे पहले की भांति हिन्दी की सेवा में तत्पर नहीं हैं।

हर्ष की बात है कि इस समय बिहार के कितने ही नवयुवकों में हिन्दी की सेवा का प्रबल उत्साह जाग पड़ा है और वे सदा इसकी सेवा करने को बद्ध परिकर रहते हैं। दरभङ्गे के पं० जनार्दन झा बङ्गला के अच्छे अच्छे उपन्यासों के अनुवाद वर्षों से प्रकाशित करा रहे हैं। आपके अनुवादित ग्रन्थ प्रायः प्रयाग के प्रसिद्ध इण्डियन प्रेस से ही प्रकाशित हुए हैं। मुंगेर असरगंज के पं० जगदीश झा "विमल" भी अपनी गद्य पद्य रचनाओं से हिन्दी-संसार में क्रमशः प्रसिद्धि लाभ करते जाते हैं। भागलपुर मीरजान हाट के पं० जनार्दन मिश्र ने "सुप्रभात" निकाल कर हिन्दी की सेवा की है, तो चम्पानगर के श्रीयुत ज्योतिश्चन्द्र घोष

बी० ए० ने "सुरभि" से साहित्य कानन को सुरभित करने का प्रयास किया है। साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री के पाण्डित्य-पूर्ण प्रबन्धों और पुस्तकों से भी हिन्दी-संसार का विशेष उपकार होता है। आप आरे जिले के निमेज ग्राम के रहनेवाले और संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् हैं। ऐसे ऐसे धुरन्धर संस्कृतज्ञों का हिन्दी पर प्रेम होना वास्तव में आनन्द का हेतु है। पटना लई निवासी पं० भगवान शरण पाण्डेय बहुत दिनों तक छात्र हितैषी निकालते थे और अब भी यदा कदा हिन्दी में लेखादि लिखते हैं। पटने की चैतन्य गोस्वामी भी हिन्दी के अच्छे लेखक और कवि हैं। आपके ही उद्योग से वहां चैतन्य पुस्तकालय की स्थापना हुई है।

छपरे के श्रीयुत बाबू दामोदर सहाय प्रसिद्ध हिन्दी के लेखक हैं।

शाहपुर पट्टी (आरे) के पण्डित परसनाथ त्रिपाठी भी लेख और पुस्तकें लिख कर हिन्दी की अच्छी सेवा कर रहे हैं। आज कल आप "देश" के सहकारी सम्पादक हैं और हिन्दी पुस्तकों की रचना भी करते जा रहे हैं। आपकी लिखी 'सती बेहुला' नाम की एक अच्छी पुस्तक कलकत्ते के वर्मन प्रेस से प्रकाशित हुई है।

आरा (पथार) निवासी पण्डित राम दहिन मिश्रजी काव्य-तीर्थ भी पुस्तकें लिख और प्रकाशित कर हिन्दी को अच्छा लाभ पहुंचा रहे हैं। पटने का ग्रन्थमाला कार्य्यालय आपके ही उद्योग का फल है, जिसकी ओर से कई ग्रन्थ मालाएं निकल रही हैं।

प्रान्तीय सम्मेलन के विगत अधिवेशन के सभापति सूर्य पुराधिपति श्रीमान् राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह जी, एम० ए० हिन्दी के अद्वितीय भक्त हैं। राज काज में फंसे रहने पर भी

आप हिन्दी लिखते पढ़ते हैं और इन दिनों आरा नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति रूप से उक्त सभा को बहुत लाभ पहुंचा रहे हैं। आपकी रचना शैली बड़ी प्रौढ़, भाषा बड़ी मधुर और कल्पनाएं मौलिक अथच मधुरिमामय हुआ करती हैं। आपकी लिखी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और कितनी छपने के लिये तैयार रखी हैं। आप से हिन्दी को बड़ी बड़ी आशाएं हैं।

"प्रजाबन्धु" के सम्पादक पण्डित जीवानन्द शर्मा को बिहार निवासी कब भूल सकते हैं? कलकतिया "कमला" और भागलपुरी "श्रीकमला" के द्वारा आप हिन्दी की अच्छी सेवा कर चुके हैं। आपका प्रजाबन्धु भी बिहारी प्रजा का अच्छा उपकार कर रहा था; पर खेद है कि वह भी क्षण जन्मा हुआ और इन दिनों शर्माजी भी जेल में हैं। आपकी लिखी हुई कितनी ही पुस्तकें छप चुकी हैं, जिनमें "बाबा का ब्याह" नामक नाटक बहुत ही प्रसिद्ध हुआ। आप हिन्दी के लेखक, सम्पादक और कवि ही नहीं अच्छे व्याख्यानदाता भी हैं। ईश्वर करे आप शीघ्र अपना जेल जीवन बिता कर साहित्य सेवा के लिये पुनः कार्यक्षेत्र में उतर आयें।

औरङ्गाबाद (गया) के अखौरी कृष्ण प्रकाश सिंह भी हिन्दी की अच्छी सेवा कर रहे थे। आपने कालेज में पढ़ते ही समय कितनी ही पुस्तकें लिख डाली थीं और इधर भी बराबर कुछ न कुछ लिखा ही करते थे; पर कुछ दिनों से आप बेतरह विश्राम ले रहे हैं। यह बात अच्छी नहीं; क्योंकि अकसर देखा गया है, कि कुछ दिनों तक विश्राम करने के बाद लोग सदा के लिये विश्राम ग्रहण कर लेते हैं। इस लिये तत्परता सदैव बनी रहे, इसी में

भलाई है। आशा है आप अपनी लेखनी को विश्राम न लेने देकर कुछ न कुछ सदैव लिखते रहेंगे।

गया के श्रीयुत गोवर्द्धनलाल गुप्त एम० ए० बी० एल० भी आज कल बड़ी तत्परता से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। आप के इस प्रेम की हम प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। आप के लेख बड़ी ही उच्च कोटि के और चिन्ता के परिचायक होते हैं। यहीं के पण्डित बजरङ्ग दत्त शर्मा भी हिन्दी के एक अच्छे लेखक और कवि हैं, पर लोक सेवा और देश सेवा का आप पर ऐसा रङ्ग चढ़ा हुआ है कि साहित्य सेवा के लिये आप को बहुत ही कम समय मिलता है। हम आशा करते हैं कि आप कभी कभी हिन्दी की भी सुध लेते रहना अपना कर्तव्य समझेंगे।

इसी प्रकार और भी बहुत से साहित्य सेवी अपने अपने ढङ्ग से हिन्दी की थोड़ी बहुत सेवा कर रहे हैं। इन में श्रीयुत राय बहादुर रामरण विजय सिंह जी (खड्ग विलास प्रेस के अध्यक्ष) भी अन्यतम हैं। आप भी हिन्दी के अच्छे लेखक और कवि हैं; किन्तु प्रेस का गुरुतर भार अपने ऊपर होने के कारण लिखने पढ़ने का आप को बहुत कम अवकाश मिलता है। आप के अनुज श्रीयुत शाङ्गधर सिंह जी एम० ए० का सम्पादित किया हुआ "आदर्श साहित्य" बिहार के स्कूलों में पढ़ाया जाता है और अपने ढङ्ग का बड़ा ही अच्छा संग्रह है। हमें आशा है कि समय पाकर आप और भी साहित्य सेवा करेंगे।

आरे के बाबू शुकदेव सिंह जी बाबू शिव पूजन सहाय की सहायता से विहार के हिन्दी साहित्य का एक वैसा ही इतिहास लिखने की चेष्टा कर रहे हैं जैसा कि मिश्र बन्धुओं का "मिश्रबन्धु विनोद" है। ईश्वर इन लोगों को सफलता दे।

आरे के बाबू कृष्ण जी सहाय, बाबू रघुनाथ प्रसाद सिंह, बाबू रामायण प्रसाद, बाबू कपिल देव नारायण बी० ए० पं० हरनाथ द्विवेदी और बाबू देव चन्द्र महतो आदि यथावकाश हिन्दी की सेवा किया करते हैं। गया के पं० गङ्गाधर शर्मा, पं० धनुर्द्धर शर्मा, पं० देव शरण मिश्र काव्यतीर्थ, बाबू बाबूलाल गुप्त, बाबू मोहन लाल महतो, बाबू पन्नालाल भैया, बाबू नन्द किशोर लाल और अखौरी शिव नन्दन प्रसाद भी साहित्य-सेवा में सामर्थानुसार सम्बद्ध रहते हैं। दर्भङ्गे के पण्डित गिरीन्द्र मोहन मिश्र, एम० ए० बी० एल०, काव्यतीर्थ बाबू गिरवर धर वकील, पं० श्रीनाथ शर्मा, श्रीयुत वैदेही शरण, श्रीयुत रामलोचन शरण, श्रीयुत रमावल्लभ तथा पण्डित जगदीश्वर प्रसाद ओझा आदि भी हिन्दी की सेवा में तत्पर रहते हैं। आरे मुजफ्फ़रपुर चम्पारन आदि कई जिलों के प्रतिनिधि श्रीयुत बाबू मनोरञ्जन प्रसाद सिंह भी कविता द्वारा हिन्दी की अच्छी सेवा किया करते हैं। मुजफ्फ़रपुर के बाबू रामधारी प्रसाद सिंह, पं० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी और पं० मथुरा प्रसाद दीक्षित तो इस प्रान्तीय सम्मेलन के जन्मदाता और सञ्चालक ही हैं। इन के हिन्दी प्रेम का क्या कहना है? हिन्दी के पुराने सुलेखक हैं। छपरे में नारद के सम्पादक और 'महिला दर्पण' की सम्पादिका के नाम भी विशेष उल्लेख योग्य हैं। हर्ष की बात है कि इस नगर की एक देवी को ही बिहार में सर्व प्रथम स्त्री शिक्षा-सम्बन्धी पत्र निकालने और उसे स्थायीरूप देने का श्रेय प्राप्त हुआ। हम आप के उद्योग की शतमुख से प्रशंसा करते हैं।

बिहार के कई मुसलमान सज्जन हिन्दी में अच्छी योग्यता रखते और उसकी विविध भांति से अच्छी सेवा कर रहे हैं। इन में बेतिये के श्रीयुत पीर महम्मद मूनिस, मुजफ्फ़रपुर के मौलवी

लतीफ हुसेन, छपरा जिला अन्तर्गत सीवान के श्री नन्दलाल राम, ममौड़ी-पटने के मुंशी अब्दुल जलील और आराकध के मौलवी अब्दुल गनी के नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं। मूनिनर्ता को प्रायः समस्त हिन्दी संसार के लोग जानते हैं और मुंशी लतीफ हुसेन की कविताओं के लुत्फ़ सब लोग प्रायः उठाते रहते हैं। ईश्वर इन्हें चिरायु करें और इनका प्रेम हिन्दी पर दिन दूना रात चौगुना बढ़ता रहे; यही हमारी कामना है।

साहित्य-सेवियों का समादर

साहित्य के साथ सम्मान का समुचित सम्पर्क है। साहित्य की समृद्धि साहित्य-सेवियों के समादर पर सदा से अवलम्बित रहती आयी है। फिर बिहार भी इस रीति का अनुकरण क्यों न करे? हमारे विचार से अर्थप्रदान, स्मारक निर्माण, चित्र-प्रदर्शन और पदक पुरस्कार आदि के द्वारा साहित्य-सेवियों का सम्मान करना, उनके उत्साह को बढ़ाना, प्रकारान्तर से साहित्य को लाभ पहुंचाना है। ऊपर हमने जिन साहित्य सेवियों के नाम गिनाये हैं, उनमें कितने ही सम्मेलन की ओर से पदक, पुरस्कार और उपाधि प्राप्त करने के योग्य हैं। इसी प्रकार यदि सम्मेलन चाहे, तो उनमें से कितनों ही के चित्र और चरित्र 'हिन्दी' कोविद रत्न-माला के ढङ्ग पर पुस्तकाकार निकल कर उनका उत्साहवर्द्धन कर सकता है। इससे लोगों में साहित्य सेवा का समुत्साह उत्पन्न होगा और सम्मान के अभिलाषी इस कार्य में सम्मान-प्राप्ति की आशा देख, इसकी ओर अवश्य झुकेंगे। इसी तरह सम्मेलन को चाहिये कि स्वर्गीय साहित्य-सेवियों के यथायोग्य स्मारक बनवाने का भी यत्न करें। स्वर्गीय

बाबू रामदीन सिंह जी, बाबू अयोध्या प्रसाद जी खत्री, बाबू जैनेन्द्रकिशोर, बाबू जय बहादुर बाबू रामकृष्ण दास, बाबू देवेन्द्र प्रसाद जैन आदि स्वर्गवासी सज्जनों की हिन्दी सेवाका स्मरण कर इनके योग्य स्मारक बनवाने चाहिये। इससे प्राचीन साहित्यिकों में उत्साह और नवीनों में प्रेम उत्पन्न होगा।

यदि सम्मेलन चाहे, तो इसके लिये एक फण्ड खोल सकता है और उसी के द्वारा जीवित और मृत साहित्यिकों के समुचित सम्मान की सुव्यवस्था कर सकता है। जिस छपरे के दानी दधीचि ने देव कार्य के लिये अपनी देह की हड्डियाँ तक दे डाली थीं, वहाँ के निवासी हिन्दी-साहित्य के प्रचार और साहित्यकों के समादर के लिये चांदी के कुछ टुकड़े फेंकने को तैयार न होंगे, यह तो कल्पना के बाहर की बात है। फिर और लोग भी इनका अवश्य ही अनुकरण करेंगे और यह कार्य बहुत जल्दी आरम्भ हो जायगा, ऐसी हमें आशा है। आगे जैसा कुछ होगा, वह तो सामने ही आयेगा।

उपसंहार

बस सज्जनो! हमें आपकी सेवा में जो कुछ निवेदन करना था, वह हम कर चुके। अब आप लोगों से हमारी यही प्रार्थना है कि चाहे जिस तरह से अपने से बन पड़े, हिन्दी की सेवा करना भी हमें अपने जीवन का कर्तव्य समझ लेना चाहिये। देखिये, हमारे पड़ोसी बङ्गाली भाई अपनी मातृभाषा के साहित्य की श्रीवृद्धि में किस तरह जी-जान से लगे हुए हैं। यह उन्हीं के उद्योग का परिणाम है कि आज बङ्गला भाषा भी एम० ए० की परीक्षा में एक विषय निर्वाचित हुई है। उन्हीं को देखादेखी

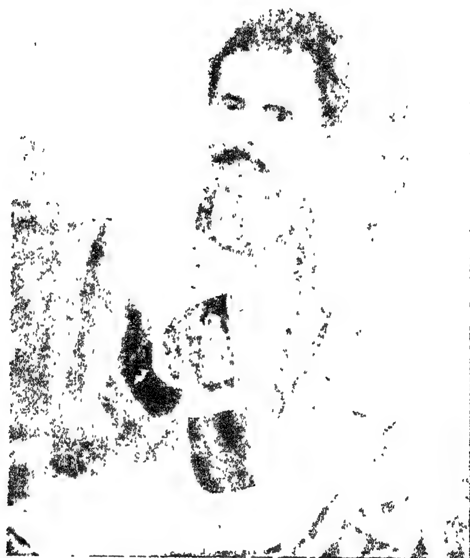
हममें से बहुतों ने नङ्गे सिर रहना और चुनदार धोती पहनना सीख लिया है, पर किसी को उनकी साहित्य-सेवा देख कर हिन्दी की वैसे ही सेवा करने की आन नहीं पैदा होती, यह क्या दुःख की बात नहीं है ? बङ्गालियों ने अङ्गरेजी साहित्य के अधार पर बङ्गला में सभी प्रकार के नवीन विषयों के ग्रन्थ भर दिये हैं और उनके साहित्यरथी जान बूझ कर लेखनी को विश्राम देने का विचार नहीं करते। वहां क्या, सरकारी नौकर, क्या वकील, क्या अध्यापक, क्या डिपटी, क्या जज, क्या बैरिस्टर सभी श्रेणियों में साहित्यिक विद्यमान हैं। वहां कलकत्ता युनिवर्सिटी के वाइस-चॅसलर सर आसुतोष मुकर्जी और डाक्टर देव प्रसाद सर्वाधिकारी भी बङ्गला लिखते हैं, वर्द्धमान के कमिश्नर बाबू यात्रामोहन भी अच्छे नाटककार हैं, श्रीयुत चितरञ्जन दास भी अच्छे कवि और सम्पादक हैं, पर हमारे यहां के उपाधिधारी हिन्दी को Stupid Hindi (मूर्खों की भाषा) कहते हुए भी लज्जित नहीं होते। यह अवस्था कदापि वाञ्छनीय नहीं है। दुख तो यह है, कि हमारे यहां स्कूल कालेजों में रहते समय जो लोग हिन्दी लिखते पढ़ते हैं, वे भी आगे चल कर धीरे धीरे उसे भूल जाते हैं। यह बात अच्छी नहीं। यह अवस्था जितनी जल्दी दूर हो, उतना ही हिन्दी के हित के लिये अच्छा है।

हिन्दी के लेखकों, प्रकाशकों और पत्रों की दशा यहां अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बहुत ही गिरी हुई है। उसे उन्नत करना प्रत्येक बिहारी का प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये। भाषा के सुधार से सभी प्रकार के सुधार होने सम्भव हैं। जिस जाति की भाषा उन्नत नहीं होती, वह अन्य प्रकार की उन्नतियों से कोसों दूर रहती है। इसका प्रमाण हमारा ही प्रांत है। यह अपने पड़ोसी

प्रान्तों से कितना अवनत है, यह चिराग लेकर दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

ऐसी हीनावस्था में भी जो लोग हिन्दी सेवा के पवित्र कार्य में लगे हुए हैं, उन बिहारी भाइयों की हम हृदय से प्रशंसा करते हैं और आशा करते हैं कि अन्य सज्जन भी उन लोगों का अनुकरण करते हुए माता हिन्दी के चरणों में अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार भेंट चढ़ाने में कुण्ठित न होंगे। इससे न केवल हमारे प्रान्त की ही भलाई होगी, बल्कि समस्त भारत में राष्ट्र भाषा के निर्माण का जो विपुल आयोजन हो रहा है, उसको भी सहारा पहुंचेगा और हमारी आदरणीया मातृभाषा शीघ्र ही राष्ट्र भाषा के सिंहासन पर राजराजेश्वरी रूप से सभासीन हो, सुशोभित होने लग जायगी। एवमस्तु—

विहार का साहित्य



पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र

[illegible]

[illegible]

[illegible] पं० प्रतापनारायण मिश्र का

नाटक



पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र

पञ्चम

बिहार-प्रादेशिक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति

कवीन्द्र पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र का

भाषण

स्वागतकारिणी समिति के माननीय अध्यक्ष तथा उपस्थित सज्जनो !

यह आप लोगों की सज्जनता है कि आपने मुझे इस इतने बड़े गौरव के आसन पर लाकर बैठाया है। इसके लिये मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ और आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ। सज्जनो, मुझे सूचना बहुत बिलम्ब से मिली, कार्याधिक्य और समय की अल्पता के कारण मैं जैसा चाहता था वैसा भाषण न तैयार कर सका और जब मुझ ही को इस पर सन्तोष नहीं तो आप लोगों का कहाँ तक इससे मनोरंजन होगा यह आपही समझ सकते हैं। फिर भी मैंने बिहार प्रान्त की अवस्था के अनुकूल जो बातें समझी हैं और जो सामयिक कर्तव्य मुझे समझ पड़ा है वह आपके सामने उपस्थित करता हूं। सम्भव है कि उनमें कुछ त्रुटियाँ जान पड़ें अथवा कितनी ही बातें छूट गई हों जिसका कारण समय की अल्पता और प्रान्तीय परिस्थितियों का पूरा अध्ययन न कर पाना ही समझें।

इस शुभोत्कंठामय अवसर पर, जब कि भारतवर्ष अपने उन कुसंस्कारों को जो किसी समय सुसंस्कार ही रहे हों छोड़ सब से भाई भाई का हार्दिक व्यवहार कर रहा है, सब से प्रेमालिङ्गन कर रहा है, हमें अपने साहित्य का क्या अर्थ करना चाहिये और कैसा रूप रखना चाहिये, और यथार्थ में साहित्य शब्द का अर्थ भी क्या है, इस पर विशेष विचार करना चाहिये। मैं पिष्टपेषण से बहुत दूर रहता हूं, और संक्षेप से अपना मत प्रकट करता हूं।

साहित्य शब्द का प्राचीन अर्थ है काव्य; जिस गद्यपद्यात्मक

वाणी को सुन कर चित्त एक प्रकार के अनिर्वचनीय, अद्वितीय आनन्द में निमग्न हो जाय प्रधानतः वही काव्य वा साहित्य है।

(समानो हितो यस्मात् (गद्यपद्यात्मकात्) अर्थोसहितः तस्य भावः साहित्यम् ।

दूसरा साहित्य शब्द का अर्थ सहितस्य भावः साहित्यम्— १४ विद्या ६४ कला आदि सहित ज्ञान का नाम साहित्य है।

तीसरा साहित्य—

हितेन सहितः सहितः अथच समानो हित. सहितः तथा समानश्चासौ हितश्च सहितः तथा—समानोहितोयेषाम् ते सहिताः सहितानाम्भावः साहित्यम् अथच सहितस्य भावः साहित्यम्

अर्थात् हित के सहित तथा समान हितवालों के अर्थसहित सहितभाव साहित्य है—उनका सम्मेलन साहित्य सम्मेलन है।

यही साहित्य का तीसरा अर्थ मुझे अतीव प्रिय है।

अतएव मैं अपनी उत्कण्ठा से अनेकार्थ (श्लिष्ट) पद्य के द्वारा भिन्न भिन्न मत तथा समाज के साहित्य (सद्विचार में एक-भाव) के लिये सादर सविनय साञ्जलि निवेदन करता हूं।

यद्यपि इनमें सरसता वा हृदयग्राहिता का अंश नहीं है तथाऽपि मेरा हृदय अतीव स्वच्छ एवं आप लोगों में पूर्ण अनुरक्त है; अतएव अपने भक्त का सुदामा के तण्डुल के समान इस प्रेमोपहार को स्वीकार करें।

अथवा अनुचित उक्ति पर भी तो सज्जन कभी कभी आनन्द से मुस्कुरा देते हैं; फिर यदि इस प्रकार मुस्कुराहट भी आ गई तो मैं अपने को कृतार्थ मानूगा।

प्राचीन साहित्य के इतिहास और उसकी प्रशंसा को मुझसे पूर्व के सभी अखिल भारतवर्षीय और प्रांतिक सम्मेलन के योग्य

सभापति वर्णित करने आये हैं जो पर्य्याप्त से भी अधिक है। अतः मैं उसका पिष्टपेषण न कर आगे बढ़ता हूं:—

हिन्दी का भाषा नाम

और 'ष' कार का उच्चारण

कुछ दिन पहले सभीजन और इस समय भी बहुत से सज्जन—

भाषा केवल आज कल के व्यवहृत गद्य पद्यमय हिन्दी तथा ब्रज की बोली ही को कहते थे और कहते हैं।

सम्भव है कि इस बात के समझाने में किसी को भ्रम हो अतः हम यहाँ खोल कर समझा भी देते हैं। जैसे हिन्दी के महा कवि केशवदास लिखते हैं—

भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
उपजे तिनके कुल..............केशवदास ॥

और गोस्वामी महात्मा तुलसीदास जी ने भी लिखा है।

"भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति"

और 'भाषा' के लक्षण में भी लिखा है कि "भाषा" ब्रज-भाषा रुचिर"

'मिलै जुले संस्कृत पारसी जो अति प्रचलित होय' इसी प्रकार सभी कवियों ने वर्तमान हिन्दी के अर्थ में 'भाषा. शब्द का प्रयोग किया है।

आधुनिक गद्य लेखकों तथा व्याकरण के लेखकों ने भी उस सिद्धान्त को मानकर

"भाषाभास्कर" "भाषा प्रभाकर" आदि ग्रन्थों के भी नाम-करण के रूप में लिखा है।

इस लिये यद्यपि भाषा शब्द से 'ज़बान' या लैंगुवेज का भी पूर्ण बोध होता है तथाऽपि

हिन्दी बोल चाल में 'भाषा' शब्द से ठीक खड़ी बोली वा ब्रजभाषा ही का बोध होता है और ऐसा ही प्रयोग होता आया है।

यहाँ एक और आवश्यक बात 'ष' के उच्चारण और 'श' के सम्बन्ध में लिखना है।

ब्रजभाषा के जितने कवि हो गये हैं और जितने वर्तमान हैं 'भाषा' शब्द के 'ष' को 'ख' के समान उच्चारण करते हैं। और तालव्य 'श' के स्थान में सर्वत्र ही दंत्य 'सकार' का उच्चारण करते हैं।

बात यह है कि जैसा स्वाभाविक मुँह से उच्चारण होता है कवियों ने भी उसी का अनुसरण वा व्यवहार किया है।

बहुत लोगों को इसमें भी भ्रम हो सकता है और मैंने सुना भी है कि कई एक हिन्दी के सुलेखकों को भी ऐसा भ्रमहो गया है।

अतएव प्राचीन जगत्मान्य श्री १०८ गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज के मानस रामायण और अर्वाचीन सुकवि पण्डित प्रताव नारायण मिश्रजी के संगीत शाकुन्तल से दिग्दर्शन की भाँति आगे ऐसे उदाहरण देता हूं कि जिनमें सर्वत्र ही 'ष' का उच्चारण 'ख' ही का हुआ और जहां जहाँ 'ष' के स्थान में 'ख' का उच्चारण हुआ है सर्वत्र वे शब्द मोटे टाइप में हैं।

बालकाण्ड

तव सेवकन सहित खल देखा,
कीन सुजल हित कूप **विशेषा** ॥
भरत सुजान राम रुख देखी,
उठि सप्रेम धरि धीर **विशेषी** ।

लङ्का

राम चरन सरसिज उर राखी,
　　चलेउ प्रभंजनसुत बलभाषी, ।
"यज्ञ करत जब ही सो देखा,
　　सकल कपिन भा क्रोध बिशेषा" ।
"मरइ न रिपु स्रम भयउ विशेषा,
　　राम विभीषण तन तब देखा" ।
'सायक एक नाभि सर सोखा,
　　अपर लगे सिर भुज करि रोषा' ।
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा,
　　हँसि कर कृपा सिन्धु तब भाषा ।
'पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी,
　　सकल कथा मुनि कहा बिशेषी' ।
'पुर रम्यता रामतब देखी,
　　हरखे अनुज समेत बिशेषी' ।

अयोध्या काण्ड

'नृपहि मोद सुनि सचिव सुभाषा,
　　बढ़त बौड़ जनु लही सुसाखा ।
'जो जेहि भाय रहा अभिलाषी,
　　तेहि तेहि कर तस तस रुख राखी' ।
भोग बिभूति भूरि भरि राखे,
　　देखत जिनहि अमर अभिलाषे' ।

"तात करहु जनि सोचु विशेषी,
सब दुखु मिटहि राम पद देखी" ।
"कह मुनि राम सत्य तुम भाषा,
भरत समेत विचार न राखा ॥"
"तापस वेष जानकी देखी,
भा सब विकल विषाद बिशेषी" ।
'पावन पाथ पुन्य थल राखा,
प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा" ।

उत्तर काण्ड

"सुनत बचन विसरे सब दुक्खा,
तृषावन्त जिमि पाव पियूषा"॥
"परम प्रेम तिन कर प्रभु देखा,
कहा विविध विधि ज्ञान बिशेषा"।

पं० प्रताप नारायण मिश्र के संगीत शाकुन्तल में

आवत उठि आदर देव वचन मृदु भाषै ॥
निस दिन आज्ञा अनुकूल आचरण राखै ।
पिय पाछे भोजन सयन सदा अभिलाषै ।
कबहूँ कैसहुँ कुल की मर्याद न नाखै ॥
इच्छा सन साधे गृह सामग्री सारी ।
कुल नारिन हित यह धरम परम हितकारी ॥

संस्कृत में भिन्न भिन्न वैयाकरण ऋषियों की अक्षरों के उच्चारण की भिन्न भिन्न प्रकार की शिक्षायें हैं ।

हमारे देश (मिथिला काशी, बिहार आदि के लिये यहां के वैयाकरण महर्षि याज्ञवल्क्यजी की शिक्षा सनातन से प्रचलित व्यवहृत, वा प्रयुक्त है।

इन्हीं की शिक्षा वा व्यवहार से हमारे यहां वैदिक मन्त्रों में भी मूर्धन्य षकार का उच्चारण कवर्ग खकार के समान होता है।

जैसे

"इषेत्त्वोर्जेत्वा"

"सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्"

मन्त्रादिकों में हुआ करता है।

इस प्रकार षकार के स्थान में खकार का उच्चारण करना केवल अशुद्ध ही नहीं है प्रत्युत पाप भी है।

मन्त्रश्च्युतः स्वरतो वर्णतोवा-यजमानं निहन्ति

यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् "

उच्चारण के व्यवहारानुसार कुछ शब्दों के हिन्दी में अपभ्रंश रूप भी दिखा देता हूँ—

संस्कृत		हिन्दी
क्षेत्र	......	खेत
लक्ष्मण	......	लखन
अक्षि	......	आँख
लक्ष	......	लाख

आदि आदि

उक्त व्यवहार के अनुसार ही यहाँ की पण्डितमण्डली में उच्चारण का क्रम चला भी आता है-परन्तु कुछ दिनों से दक्षिण प्रान्त की पाणिनीय शिक्षा के उत्कट आक्रमण से एतद्देशीय याज्ञवल्कीय

शिक्षानुसार "लकार" आदि उच्चारण के पैर उखड़ रहे हैं जिसे विद्वानों को स्थिर रखना ही श्रेय होगा।

श्रीः

मिलकर सुचि साहित्य से,
जनता हो सानन्द।
मिलें मनोरथ सब तुरत,
रहें सुखी स्वच्छन्द॥

(सवैया)

* सदाही कुशासन पै दृढ़ हो,
करते हैं विचित्र महाहठयोग।
जो मन्त्र विधान में तत्पर हो,
करते महाप्राण निरोधप्रयोग।
अधर्म विधान करै सुविधान,
कुकर्म निधान-सु शर्म्म नियोग।
सदा श्रुति के नय के जो विरुद्ध,
करें मिलि भारत का हितयोग॥
श्वासावरोधन विधान पढ़े हुए है।
भारी कुशासनसमाधि बढ़े हुए है॥
है बन्द भी नयन ध्यान किये हुए है।
योग प्रयोग विनियोग लिये हुए है॥
(आसन बंधे अनेक विधि,
सासन लेना धर्म॥

---

* यह प्रसिद्ध २५.३० अर्थ का शिलष्ट है। इस से भी बहुत अर्थ इसके हैं जो नहीं लिखे गये हैं।

अवकासन लागे सदा।
त्रासन अति अपकर्म।

—०—

द्विज-समाज तथाऽद्विजराज से,
सकल भारत लोक-समाज से
विनय है कर जोड़, कृपा करें,
विकल भारत के दुख को हरें॥

—ॐ—

यह कुराज सुराज सुयोग है।
फिर कुयोग कुतन्त्र प्रयोग है॥
शुचि स्वराज तथा परराज है।
सकल शिक्षित आज समाज है॥
मत सनातन, बुद्ध जिनादि के।
सकल तान्त्रिक आर्य्यजनादि के॥
जन सनातन भी फिर आज के।
विविध जे मत जाति, समाज के॥

मुसल्मान कृस्तान, प्यारे हमारे।
यहूदी तथा पारसी धर्मधारे॥
गुरू जे बड़े सिक्ख के धर्मधारी।
तथा रोगशैतान से कष्टकारी॥
अब परस्पर हो मिलि जाइये,
पतित भारत-जाति जगाइये।
जनमुमूर्षु विचारि जिलाइये,
अमृत धारसुधार पिलाइये॥

सुमनसूत्र परस्पर में नथो,
विमन जो उनके मत को मथो।
विमत के मन वेन वहाइये,
सुमत हो पृथु रीति चलाइये॥
नव महोत्सव शोभित धाम हों,
सब समुन्नतिसाधक राम हों।
सकल भूतल में सर नाम हो,
सहित के हित के सब काम हों॥
सकल, सज्जनता-जनता गहै,
निज समुन्नति से नति से रहै।
अबल से बल से चढ़ती रहै,
विनय से नय से बढ़ती रहै॥

सकल भारत की सुदशा बढ़ै,
कलह कर्कशता कुदशा कढ़ै।
सुमन से मन से नित ही खिलै,
शुभ स्वराज अभी इनको मिलै॥

गले से गले, आज मिल कर, मिला लो।
मरा देश जाता है, इसको जिला लो॥
सभी प्रेम का आज प्याला पिला दो।
अमृत एकता से इसे अब जिला दो॥
समै पर सभी का सहायी सभी हो।
सभी का महा-मोददायी सभी हो॥

कड़ी बात कोई अगर बोल देवे।
तो नर्मी से आसीस जी खोल देवे॥

अगर गालियां दें तो उनको सिखाना।
अगर मार दें तो क्षमा कर बचाना॥
नहीं बुद्धि उनकी ठिकाने कहाँ है।
वे पागल हैं, बीमार हैं, सुध नहीं है॥

हमारा ही भाई है पागल हुआ गर।
जो देता है गाली बुरी और बदतर॥
हमें मारने का भी है घात करना।
कठिनता से भी जो नहीं है सुधरना॥

तो बोलो! हमारे लिये फर्ज क्या है?
बचाना उसे या उसे मारना है?
उसे हम पकड़ कर दवायें दिलावें।
कि दे गालियां और डंडे खिलावें॥
उसे हम अमृत सी दवायें पिलावें।
कि लें प्राण उसका कि उसको जिलावें॥

पिता एक ही के हैं हमलोग लड़के।
बहुत दिन से भूले हुए, राह भटके॥
पिता चाहते हैं, सभी को मिलाना।

सभीको सुखी देखना औ, जिलाना ॥
परस्पर मिलो छोड़ कर बैर को अब ।
पिता को करो खुश रहो खुश सदा सब ॥
बनो वीर; बैरी बढ़े को बिदारो ।
बढ़े बैर विद्वेष की जड़ उखारो ॥
न शैतान की तान में कान देओ ।
सदा ज्ञान विज्ञान में ध्यान देओ ॥

बढ़े पाप सन्ताप जो गर्व धारे ।
पछाड़ो, पड़े जोकि पीछे तुम्हारे ॥

मेल

यदि नहीं मिलके तिनके रहें ।
सरस-भाव नहीं तिनके रहें ॥
सुगुण रूप नहीं रह जायंगे ।
न झटके झटके सह जायंगे ॥

अलग जो मृदु-पत्र धरे नहीं ।
गठित पुस्तक है, बिखरे नहीं ॥
दुख जलादिक के सहते, सदा ।
ठहरते हरते रहते सदा ॥
यदि परस्पर ये मिलते नहीं ।
तब रसातल में मिलते वहीं ॥
तब धरातल में मिलते नहीं ।
गुणप्रसून कहां खिलते नहीं ॥

गठित जो कि परस्पर है वहां।
यदित्र कागज है निकला कहां॥
रगड़ से गिरना अनमेल है।
यदि नहां दिन ही दिन मेल है॥

लेई कहां मिल गई यदि नश्वरा है।
जो तुनियाजलकणन्वित सत्वरा है॥
होने विनष्ट, सड़ने सब जो छिनों में।
सो देखिये ठहरने कितने दिनों में॥

---

(१) सूर्य्यांशु के सहित जो मिलते कहां है।
तो रम्य पद्मनिधि से खिलते वहां है॥
जो है सदर्थिजन को सकलार्थदाता।
है निस्सहायजन को दुख से बचाता॥

---

(१) नवनिधियों के नाम प्रायः सबों ने सुना होगा—उनमें पद्मनिधि बहुत प्रसिद्ध है। यह छोटे से श्वेत कमल के रूप में होता है—और आजकल के समय में भी किसी २ भाग्यशाली को मिल जाता है। कारण उसका यह है कि कल्पवृक्ष के समान, उससे जो प्रार्थना की जाय सब पूर्ण होती है। ६, ७, वर्ष के पहले "सरस्वती" के किसी अङ्क में "श्वेतकमल" नामक एक लेख है—जिसमें एक साधु के पास इस कमल के रहने की चर्चा है, और उसके द्वारा उसके भक्त एक नवयुवक सिविलियन अंगरेज़ का बहुत कुछ मनोरथ का परिपूर्ण होना लिखा है।

क्षणिक जो अतिनस्वर रंग है।
तरल है क्षण भङ्गुर ढंग है॥
तदपि सुन्दर रंग अभंग है।
लिपट के पटके गुण संग है॥

श्याही लगी यदपि वक्रिम कालिमा है।
है स्वच्छता न अतिभंगुरताऽऽविलाहै॥
पै ठीक संगठन से ठहरे हुए ये।
हैं पुस्तकादि गुणराशि बढ़े लिये ये॥

सगुण संयत संग मिले हुए।
सब परस्पर रंग मिले हुए॥
विनय से सब ढंग मिले हुए।
अमल अंग उमङ्ग मिले हुए॥

तदपि वर्ग नहीं मिलते बिना।
गुण वियोग दशा हिलते बिना॥
समय के पहिले सब नष्ट हैं।
ठहरते हरते न सुकष्ट हैं॥

सतत शीतलता तलताप दे।
समय से हरवा तज दाप ले॥

अति मनोहर रूप कला लदा।
लिपटता पटताप हटा सदा॥

सह हिमातपवर्षण धार ये।
महित हैं, हित हैं, सुविचार में॥
निरत हैं, परके उपकार में।*
लिपट के पटके सब कार में॥

जब यही पट पुस्तक संग है।
जब परस्पर मेल अभङ्ग है॥
उभय का तब आयु अपार है।
उभय का भय का न विकार है॥

*नोट—लटपटी पटकी भटकी रही।
अटपटी पटकी खटकी रही॥
मिल रही जिसके उपकार में।
सतत वे इसके उपकार में॥
है धन्यवाद इन शुद्ध पटादि को जो।
हा! प्राण दे हित करें मनुजादि के जो॥
धिक्कार है! उन कृतघ्न नराधमों को।
पा त्राण उन्नत करें न पटादि को जो॥
तरलतर सब वस्तुओं में मृदुल पानी जानिये।
जो नहीं है तरल उनमें नर्म चूना मानिये॥

धूल बालू से मिलें, हैं, वज्र से होते सभी।
दुर्भेद्य अस्त्रादिक से दुर्गम दुर्ग होते हैं तभी॥
अलग अलग होवै, जो कि मिश्री मलाई।
नरियर फिर एला, स्वाद में क्या मिठाई॥
सब मिल कर ऐसी स्वाद में सिद्धि आई।
क्षुधित सुजन को हैं, जोकि तृप्तिप्रदायी॥

अलग भात सुसाधित खाइये।
अलग ही द्विदलादिक पाइये॥
अलग सैन्धव भी यदि खाइये।
अलग ही घृत आदि पिलाइये॥

विरसता सब ओर दिखा रही।
मधुरता उनमें फिर क्या रही॥
उचित मेल नहीं उनमें कहीं।
भुवन को तब तृप्त किया नहीं॥

दृढ़तर परस्पर जातियों के मेल सब दिल के करें।
पर अलग भी निज रूप रक्खें काम हिल मिल कर करें॥
तृण भी रहै, जल भी रहै, फिर तूतिया लेई रहै।
मिल कर करें सब काम, सत्ता नाम अपना ही गहै॥

जो सर्वदा ही के लिये लेई सभी सन जायगी।
पाषाणपिण्ड-समान पृथ्वी सब मिलित बन जायगी॥
सब वस्तु मिलकर फिर अतह बन जायगी-लेई जभी,।
कोई नहीं रह जायगा, प्राणी धरातल पर कभी॥

आज आप लोगों के इस समूह को देख कर विशेष आनन्द हो रहा है। इससे भी बढ़ कर आनन्द की बात यह है कि आप सब सज्जन आदरणीया मातृभाषा हिन्दी की उन्नति की उत्कट अभिलाषा से प्रेरित हो रहे हैं। आज समूचे देशवासियों की यह प्रबल उत्कण्ठा है कि वे अपनी मातृभाषा की उन्नति करें। इसकी सेवा करें, इसके भण्डार को भरें; पर मैं आप लोगों के सामने आज से चालीस वर्ष पूर्व की कुछ बातें बतलाना चाहता हूं जब कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी भाषा को पहचाना और अपने देशवासियों को यह उपदेश दिया कि—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषाज्ञान को मिटत न हिय को सूल,

भारतेन्दु तथा राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का उद्योग बड़े अच्छे समय में प्रारम्भ हुए। उस समय देश की ऐसी अधोगति हो गयी थी जिसे स्मरण कर आज भी दुःख होता है। उस समय हमारी अपनी कहने की कोई भाषा न थी। हमारे बच्चों की शिक्षा होती थी और इन्हें उर्दू, फारसी के विकट लतीफे रटाये जाते थे, अंग्रेजी अमलदारी में अंग्रेजी का बोलबाला शुरू हुआ। दशा ऐसी थी जिससे भयानक दशा और कोई हो ही नहीं सकती।

बच्चे हमारे, पर हमारी कोई भाषा नहीं, हमारी कोई जबान नहीं, जिसके द्वारा हम अपने बच्चों को शिक्षा दें, फिर हम अपनी सभ्यता का ही ज्ञान उन्हें कैसे कराते; उन्हें अपने धर्म का ही ज्ञान कैसे होता, अपने पूर्व पुरुषों के उत्कृष्ट तथा अनुपम कर्तव्यों का ज्ञान ही कैसे होता । पर इधर किसी का ध्यान न था। लोग अपने को भूले थे, संस्कृत से सम्बन्ध छूटे बहुत दिन बीत चुके थे, ब्रजभाषा भजन की भाषा थी और कविता की भाषा वह समझी जाती थी, इसी अज्ञानमय आत्मविस्मृति का शिकार समूचा देश था। भारत के कई विद्वान भी इस बात के लिए उस समय प्रयत्न करते थे कि भारतीयों की शिक्षा दीक्षा विदेशी भाषा अंग्रेजी द्वारा ही दी जाय। भला आप ही सोचें यह कैसा बुरा प्रयत्न था, इससे देश का कितना बड़ा अपकार होता। एक तो अंग्रेजी इतनी कठिन भाषा है और उसकी शिक्षाप्रणाली भी भारतीयों के लिए अनुपयुक्त और कठिन हैं क्योंकि उसकी शिक्षा मातृभाषा के द्वारा नहीं किन्तु डैरेक्ट मेथड के द्वारा दी जाती है: फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि अंग्रेजी भाषा समस्त भारत की मातृभाषा के समान हो जाय। यदि कोई प्रबल प्रयत्नों द्वारा इस असम्भव को सम्भव कर दिखावे तो यह निश्चित समझिए कि वैसा होना भारत के लिए भयङ्कर हानिकारक होगा।

आज स्कूल कालेजों में हमारे बच्चों को अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती है। वह शिक्षा भाषा की शिक्षा है उसके लिए कितना समय और धन व्यय किया जाता है यह बात किसी से छिपी नहीं हैं। पढ़ने का सारा समय बीत जाता है; ज्ञान, विज्ञान,

शिल्पकला आदि सब सीखने ही को पड़े रहते हैं, यह कैसा विडम्बना है।

थोड़े ही विचारने से यह बात हृदय में बैठ सकती है कि यदि जर्मनों को आधुनिक शिल्पकला संस्कृत में सिखायी जाती और अंग्रेजों को अरबी में विज्ञान की शिक्षा दी जाती तो उनके लिए कितनी कठिनता उपस्थित होती और आजकल ये लोग शिल्प कला के मैदान में कितने पीछे पड़े रहे होते। आप जापान की ओर देखें, उसकी शिक्षा हमसे बहुत पीछे आरम्भ हुई है पर अपनी मातृभाषा द्वारा शिल्प कला विज्ञान आदि की शिक्षा होने के कारण वह आज शिक्षा में, सभ्यता में, यूरप के उन्नत देशों की बराबरी करता है। और नहीं तो आप अपने पड़ोसी अफगानिस्तान ही की ओर देखें, वह अपनी मातृभाषा के द्वारा पश्चिमी ज्ञान विज्ञान प्राप्त करने में कितनी शीघ्रता से अग्रसर हो रहा है। इन सब बातों से आप लोग समझ सकते हैं कि उस समय देशवासियों ने कितना अनुचित उद्योग प्रारम्भ किया था और उस उद्योग में बाधा देकर हमारे आदरणीय भारतेन्दु ने कितना उपकार किया।

महाशयो, आज जो आपकी हिन्दी आदरणीय हो रही है, राजदरबारों में जिसे स्थान मिल रहा है, उसे उस समय के अंग्रेजी फारसी पढ़े हुए विद्वान् कहे जानेवाले सज्जन कोई चीज ही नहीं समझते थे, इसे गवांरू भाषा कहते थे। पर बाबू हरिश्चन्द्र ही थे जिन्होंने अपने प्रबल उद्योग से हिन्दी का सिक्का जमाया। स्कूलों में इसे स्थान दिलवाया, अपने को और अपनी भाषा को भूले हुए देशवासियों का हिन्दी से परिचय कराया।

आज हिन्दी पत्रों के दो तीन हजार ग्राहक होने पर भी आप संख्या की कमी की शिकायत करते हैं। पर आपको मालूम है उस समय जो पत्र पत्रिकायें निकाली गयी थीं उनके कितने ग्राहक थे और उनकी क्या दशा थी। कविवचनसुधा के कदाचित् अधिक से अधिक ५०० पांच सौ ग्राहक थे। मैंने विद्याधर्मदीपिका नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली थी, उद्देश्य था विद्या-प्रचार, कुरीतिपरिहार और विद्याधर्म्मविस्तार और उसकी प्रतियां मुफ्त बांटी जाती थीं पर उसकी दो हजार प्रतियां एकही बार छपी थीं नहीं तो सदा एकही हजार छपती रहीं।

इसी प्रकार के अनेक कष्टों को उठाकर उस समय के कवियों ने हिन्दी की स्थापना की है। भारतेन्दु के सन्देश की व्याख्या पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने नीचे लिखे शब्दों में की।

सब मिलि बोलो एक जबान
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान

आदरणीय सज्जनो !

भगवान् ने सुमति दी, नवयुवकों ने नवीन स्फूर्ति, कमनीय मनोरथ और स्पृहणीय विश्वास से हाथ आगे बढ़ाया, अनुभवी बूढ़ों ने मार्ग बतलाया, माता की आराधना के उपचारों की सूची दी, कार्य प्रारम्भ हुआ। उसका फल, हमारा साहित्य दिनों दिन अक्षुण्णवेग से आगे बढ़ा। बूढ़े मुस्कुराये, मित्रों ने उत्साहित किया, हमारी हँसी करनेवाले, हमारी शक्ति को, अविश्वास की दृष्टि से देखने वाले, हमारे कार्य क्रम पर उपेक्षा की हँसी हँसने वाले, नीची गर्दन करके रह गये। थोड़े ही दिनों के परिश्रम से और छोटे मोटे

उद्योगों से ही हमने अपनी सफलता का विश्वास लोगों के हृदयों में बद्धमूल कर दिया। हमने अपनी मातृभाषा हिन्दी की महत्ता समस्त भारत के सामने रख दी और उसकी सारवत्ता प्रमाणित कर दी। अखिल भारतीय सम्मेलन तथा प्रान्तीय सम्मेलनों की प्रतिष्ठा उनके कार्यों के प्रति लोगों की सहानुभूति, इसका पुष्ट प्रमाण है। आप लोगों ने सुना होगा कि कोकनद-कोकनाड़ा-के कांग्रेस की स्वागत समिति के सभापति का व्याख्यान हिन्दी में हुआ था। यह हिन्दी प्रचारकों के प्रयत्न की सफलता का सच्चा प्रमाण है। हिन्दी के सर्वजनबोधगम्य होने का उत्तम उदाहरण है, और है भारतीयों के भाग्योदय की शुभ सूचना। मद्रास प्रान्त में ही हिन्दी का प्रचार कठिन बतलाया जाता था। कांग्रेसवालों से जब कहा जाता था कि भाइयो, आप भारत का कल्याण करने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं तो कृपा कर भारत की भाषा हिन्दी को अपनाइये, उत्तर मिलता था कि मद्रासी सज्जन हिन्दी नहीं समझते उनकी सुविधा के लिये हम लोग लाचार होकर अंग्रेजी का व्यवहार करते हैं। सम्मेलन ने इस काम को उठाया और महात्मा गांधी के वरद हस्तों का उसे आश्रय मिला, मद्रास ने इस सुयोग से लाभ उठाया और उसने अपना कलङ्क धो बहाया। कोकनद की स्वागत-समिति के अध्यक्ष ने हिन्दी में अपना भाषण देकर लोगों को बतलाया कि हमने हिन्दी सीख ली, हमारे लिये अङ्गरेजी भाषा को ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं। हिन्दी का सीखना भी बहुत सहल है। इसका फल यह हुआ कि कांग्रेस ने हिन्दुस्तानी भाषा को अपनाया। दबी जबान ही से सही, पर अपनाया

इसमें सन्देह नहीं और इसके लिये वह हमलोगों का धन्यवाद भाजन है।

इधर बिहार में हिन्दी साहित्य सम्बन्धी क्या क्या कार्य हुए हैं यह आपको मालूम ही है। कई एक उत्तम संस्थायें गया, आरा, भागलपुर, छपरा आदि नगरों में हिन्दी साहित्य के प्रचार में अच्छा काम कर रही हैं। गया की मन्नूलाल स्मारक लायब्रेरी में हिन्दी साहित्य तथा अन्य साहित्यों की पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। उसके उत्साही नवयुवक स्थापक उसकी उन्नति में सदा उत्साह पूर्वक सचेष्ट रहते हैं। जिससे वह एक उत्तम संस्था के रूप में परिणत हो गयी है. आशा है वह संस्था अपने सुयोग्य स्थापक के उद्योग तथा प्रेम से दिनों दिन बढ़ेगी, फूलेगी और फलेगी। आरे की नागरी प्रचारिणी सभा एक पुरानी संस्था है, इसने इस प्रान्त में हिन्दी के मूल्यवती सेवा की है। उससे सबद्ध एक पुस्तकालय तथा उसके शाखाभूत और कई पुस्तकालय हैं, उनसे हिन्दी की सेवा में अच्छी सहायता मिल रही है। इसी प्रकार भागलपुर, छपरा, तथा अन्य स्थानों में भी हिन्दीप्रचारिणी सभायें तथा पुस्तकालय हैं, जो अपनी अपनी शक्ति के अनुसार साहित्य सेवा कर रही हैं। भागलपुर की हिन्दी सभा ने रामायण की परीक्षायें जारी कर रामायण के प्रचार तथा हिन्दी साहित्य की सेवा में विशेष भाग लिया था, पता नहीं कि वह परीक्षाप्रणाली अब भी वर्तमान है या नहीं, क्योंकि इधर उसके विषय में कोई बात पत्रों में देखने में न आई। छपरा के उत्साही सज्जनों ने हिन्दी साहित्य की परीक्षाएं प्रचारित की थीं। इनके सम्बन्ध में भी मुझे वर्त्तमान समाचार मालूम नहीं, तथापि यहाँ इसके सम्बन्ध में एक

बात कह देना मैं आवश्यक समझता हूं। हमारा कार्य उपयोगी और प्रामाणिक होना चाहिए। परीक्षाओं में जो प्रमाण पत्र दिया जाता है वह प्रामाणिक होना चाहिए, वह ऐसी संस्था के द्वारा वितरित होना चाहिए कि उसकी प्रमाणिकता के विषय में किसी को सन्देह करने का अवसर न हो, सभी उसको सम्मान की दृष्टि से देखें। सभी उस प्रमाण पत्र प्राप्त व्यक्ति के सामने सिर झुकावें। जिस संस्था में यह दम न हो उसे पहले अपने को बलवान बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, उसे चाहिए कि प्रसिद्ध विद्वानों, नेताओं, राजाओं की सहानुभूति प्राप्त करे, राजदरबार में अपना सिक्का जमावे पुनः ऐसा काम हाथ में ले। नहीं तो उस परीक्षा का उपहास होता है, उस प्रयत्न से लाभ के बदले हानि होती है। मैं कार्यकर्ताओं का ध्यान इस बात की ओर नम्रता के साथ आकृष्ट करता हूं। अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाएं होती हैं। उन परिक्षाओं का सम्मान भी है। यु. पी. गवर्नमेंट भी सम्मेलन के प्रमाणपत्रों को सम्मानित करती है, राजा महाराजाओं के यहां भी सम्मेलन के विशारदों और रत्नों की पूछ होती हैं। ऐसी दशा में मेरे विचार से यही उत्तम प्रतीत होता है कि हम सम्मेलन की परीक्षाओं का ही प्रचार करें। उसी के लिए विद्यार्थी तैयार करें, उसकी पाठ्य पुस्तकें पढ़ाने का प्रबन्ध करें। एकता में बड़ा बल होता है, इस सर्वजन विदित नियम के अनुसार काम करें। ऐसा करने से हमारा कार्य अधिक उपयोगी होगा। हम हिन्दी भाषा की अधिक सेवा कर सकेंगे, हम अपने कार्य को अधिक उपयोगी बना सकेंगे। मैं हिन्दी प्रेमियों का ध्यान फिर भी इधर आकृष्ट करता हूँ।

पटने में रूपकला पुस्तकालय, चैतन्यलायब्रेरी, बराह मिहिर

पुस्तकालय, तथा बिहारहितैषी पुस्तकालय आदि हिन्दी सेवक संस्थाएं वर्तमान हैं। इनके द्वारा यहां वालों को सभी इच्छित पुस्तकें पढ़ने को मिलती हैं, सामयिक पत्र पत्रिकाएं भी लोगों को मिल जाती हैं। पर यह बात कहनी ही पड़ेगी कि बिहार की राजधानी यह पटना नगर अपने जिलों की भी बराबरी नहीं कर सकता। इस नगर में ऐसी कोई प्रभावशालिनी संस्था नहीं जो इसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल हो। यहां कोई हिन्दी प्रचारिणी सभा नहीं, यह बात उत्तम नहीं, हम अपने बन्धुओं का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करते हैं।

बिहार ने प्राचीन समय से लेकर अब तक हिन्दी साहित्य सेवा के कितने कार्य किये हैं, यह बात आप सब को मालूम है, हमारे पूर्व के सभापतियों ने आपको ये बातें बतलायी होंगी, अतएव इन बातों का वर्णन आपके सामने करना मैं आवश्यक नहीं समझता। अपनी सफलता का बखान करके इतराते रहना यह अच्छा लक्षण नहीं है, कर्मयोगी इस बात से प्रसन्न नहीं होते, उनका उत्साह इन्हें सदा आगे बढ़ने को उतावला बनाता रहता है, उनकी कार्यशक्ति उन्हें उत्तेजित करती रहती है। उन्हें अवकाश कहां जो अपने गुणगान करें। यह समझकर मैं भी आपके सामने उन बातों को न कहना ही अच्छा समझता हूँ जिनका आपने योग्यता पूर्वक सम्पादन किया है। मैं आपके सामने उन बातों को उपस्थित करना चाहता हूं जिनकी सिद्धि के लिए आपके प्रयत्न की अपेक्षा है।

हिन्दी प्रेमी अंग्रेज प्रवर श्री ओलढम साहब के उद्योग से अदालतों के फार्म हिन्दी में छपने लगे हैं। पर वे फार्म बड़े बे-ढंगे ढंग से भरे जाते हैं, उनकी लिपि तो कैथी होती है और

भाषा क्या होती है विशुद्ध फारसी। उन फार्मों की जो बातें होती हैं—वे प्रायः गांव में रहने वाले अनपढ़ तथा थोड़े पढ़े ग्राम निवासियों के लिए होती हैं पर वे बिचारे उस अजनबी भाषा को खाक पत्थर कुछ भी नहीं समझ सकते। इससे यह न समझिए कि पढ़े लिखे सज्जन उस भाषा को समझ लेते हैं, नहीं, यह बात भी नहीं है। कैथी में फारसी की जो इबारत लिखी जाती है उसका उच्चारण इतना ग़लत होता है कि वह पढ़े लिखों की समझ के भी बाहर हो जाता है। इधर ध्यान देना चाहिए, यह असुविधा थोड़े ही परिश्रम से दूर की जा सकती है। हमारे नवयुवक वकील मुख्तार मित्र, आसानी से इस प्रश्न को हल कर सकते हैं। हमारे कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे वकील मुख्तारों के पास पहुंचें, उन्हें अपना अभिप्राय बतलावें। आशा है कि उनका यह प्रयत्न शीघ्र सफल होगा।

एक और भी आवश्यक विषय है जिसकी ओर सम्मेलन के कार्यकर्ताओं का ध्यान गया है। जिस बात की चर्चा सम्मेलन में कई बार हुई है पर जहां तक मैं जानता हूं उधर कोई काम नहीं हुआ है। वह विषय है छोटा नागपुर में हिन्दी का प्रचार करना। यह विषय नितान्त आवश्यक है, इसमें विलम्ब करने से बड़ी हानि हुई है। आप लोगों पर विदित है कि ईसाई झंडा उस प्रदेश में फहरा रहा है। पादरी लोग उनको अंग्रेजी भाषा की शिक्षा दे रहे हैं और उन्हें अपने मिशन में मिला रहे हैं। हम लोगों की उपेक्षा से हमारे ये अज्ञान भाई हिन्दी ज्ञान से वंचित रहें यह कितने खेद की बात है कितनी लज्जा की बात है। अतएव मैं निवेदन करता हूं कि हमारे कार्यकर्ताओं को शीघ्र ही वहां पहुंच जाना चाहिए। इस विषय में एक क्षण का भी विलम्ब असह्य है।

मत चिन्ता कीजिए साधनों की, साधनों की कमी वीरों के पैर नहीं रोकती, वे आगे बढ़ते हैं और साधन उनका अनुकरण करते हैं। हमारे इतने भाई अपनी मातृभाषा से वञ्चित किये जांय और हम बैठे देखा करें हम साधनों की प्रतीक्षा करते बैठे रहें, हो नहीं सकता, यह असम्भव, सर्वदा असम्भव है। जिस बिहार प्रान्त के वीरनवयुवक दूसरे प्रान्तो में जा कर हिन्दी प्रचार करें, मातृभाषा की सेवा करें और उसके लिए अपने को अर्पित कर दें उसी बिहार प्रान्त के लिए अपने ही घर में प्रचारकों की कमी रह सकती है? महामना सात्विक चरित पटने के प्रताप नारायण वाजपेयी ने जो उज्ज्वल आत्मत्याग दिखाया है, जो अद्भुत निदर्शन उपस्थित किया है, क्या बिहारी नवयुवक उसका अनुकरण न करेंगे? क्या आपने देवोपम भाई के प्रारम्भ किये कार्य को अधूरा छोड़ेंगे? उस बीरने मद्रास में जाकर हिन्दी प्रचार किया और देश की बलि वेदी पर सात्विक बीरता के साथ अपने को अर्पित कर दिया। क्या उसका यह आत्मत्याग निरर्थक होगा। यह कौन कह सकता है। अब भी बिहार में वैसे नवयुवक हैं और उनकी संख्या बहुत है। वे राह देखते हैं अपने नेताओं की, वे उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में हैं। मैं बिहार के नेताओं से कहता हूँ आप छोटा नागपुर में हिन्दी प्रचार का झंडा उठाइए, इन उत्सुक नवयुवकों को काम बतलाइए।

सज्जनों,

बिहार हिन्दी भाषी प्रान्त है, यहां हिन्दी का एकच्छत्र राज्य है। अन्य प्रान्तों में हिन्दी को अपनी अन्य कई सहवर्त्तिनी भाषाओं से संघर्ष करना पड़ता है, पर बिहार के लिए यह बात नहीं है ऐसी दशा में अन्य प्रान्तों की यूनिवरसिटियों ने हिन्दी भाषा को

जो उचित स्थान दिया है, जो इसका उचित आदर किया है, बिहार की यूनिवरसिटी ने यह भी नहीं किया है। यह दुःख की बात है। हम लोगों को इस बात के लिए प्रयत्न करना चाहिए और तब तक प्रयत्न करते रहना चाहिए जब तक सफलता न हो, हमको चाहिए कि हम अपने प्रयत्नों के द्वारा बिहार की यूनिवरसिटी में हिन्दी को उचित स्थान दिलावें। हिन्दी के द्वारा ही हमारे बालकों को शिक्षा दी जाय. उसकी व्यवस्था के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए। आशा है बिहार के प्रभावशाली हिन्दी प्रेमी सज्जन इस बात की ओर ध्यान देंगे।

एक और बात है जो बहुत ही खटकनेवाली है। बिहार में हिन्दी पत्रों का बहुत ही प्रचार है. बिहारी हिन्दी पत्रों का सम्मान करते हैं। पर बिहार में कोई उत्तम पत्र नहीं है, जो थोड़े बहुत पत्र हैं भी, उनकी बुरी दशा है। हमलोगों को दयनीय दशा पर विचार करना चाहिए और साथ ही उसे दूर करने का उपाय भी। बिहार के लोग हिन्दी लिखना नहीं जानते उन्हें अखबारों के लिए निबन्ध लिखने नहीं आता यह बात कैसे मानी जा सकती है, जब कि हम देखते हैं कि कई बिहारी कलकत्ता आदि शहरों में जाकर हिन्दी पत्रों का सम्पादन करते हैं और उन्हें इस कार्य में सफलता भी मिलती है। फिर उनकी वही शक्ति बिहार में आ कर लुप्त हो जाती है, यह बात कैसे मानी जाय। बिहार से कई पत्र निकले और कुछ दिनों निकल कर बन्द हो गये। कई पत्र जो आज निकल रहे हैं उनमें कई तो नीलामी इश्तहारों के बांटने के साधन मात्र हैं। साहित्य क्षेत्र में उनका कोई महत्व नहीं, और वे साहित्य के लिए निकलते भी नहीं, उनका उद्देश्य ही दूसरा है। कुछ पत्र ऐसे हैं कि वे सरकारीकोप भाजन बने हुए हैं।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि बिहार गवर्नमेंट का ध्यान इधर कुछ दिनों से हिन्दी संस्थाओं की ओर कम हो रहा है। कई हिन्दी संस्थाओं को जो सहायता मिल रही थी वह न मालूम क्यों बन्द कर दी गयी है। मैं जानता हूं कि रूपकला-लाइब्रेरी को जो सहायता मिलती थी वह अब बन्द की गयी है। गवर्नमेंट को इधर ध्यान देना चाहिये।

प्रिय सज्जनो! मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं। अन्त में इतना निवेदन अवश्य कर देना चाहता हूँ कि आप लोग अपनी कार्यशक्ति को और उत्तेजित करें, साहित्य सेवा को धर्म समझें, मातृभाषा और मातृभूमि की सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य बनावें। आपकी शक्तियां अजेय हैं, आपकी कर्तव्य शक्ति अनुपम है, आप काम में लग जाइए आपको भगवान् की सहायता प्राप्त होगी और आपके मनोरथ परिपूर्ण होंगे।

स्वागत-समिति के अध्यक्षों के

भाषण

पंचम प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलन, पटना, की स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष श्रीयुत् राजेन्द्रप्रसाद एम० ए० एम० एल० का भाषण।

सज्जनो,

मैं आपका हृदय से स्वागत करता हूं। आप बिहार की राजधानी में पधारे हैं। पाटलिपुत्र की प्राचीनता का परिचय देना और विशेष कर बिहारनिवासियों को—मेरी धृष्टता होगी, जब मैं स्वयं यहाँ का आजन्मनिवासी नहीं हूं। पटना बिहार के अन्य नगरों के समान केवल ज़िले का ही मुख्य स्थान नहीं है। यह बिहारमात्र की राजधानी है। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि आप अपने ही घर आये हैं और यद्यपि मुझे आप के स्वागत करने का भार सौंपा गया है पर मैं समझता हूं कि मेरा अपने हृदय के आह्लाद और प्रफुल्लता का प्रदर्शित करना ही आप सज्जनों का सबसे सुन्दर स्वागत है।

ग्रीष्म काल की तपती हुई धूप और देह को दग्ध करने वाली पछुआ वायु से तनिक भी न विचलित होकर आप यहां पधारे हैं यह आपके मातृभाषा के प्रेम का परिचायक है। आप के निवासादि के प्रबन्ध में त्रुटियाँ हुई हैं, उनको मैं भली भाँति जानता हूं पर आपके जिस प्रेम ने धूप और वायु की उपेक्षा कराई है, वही प्रेम इन त्रुटियों की पूर्ति भी करा देगा। अस्तु।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का उद्देश्य हिन्दी साहित्य की उन्नति और हिन्दी भाषा का प्रचार करना ही है। प्रादेशिक सम्मेलन का उद्देश्य प्रान्त के भीतर हिन्दी का प्रचार और सुन्दर साहित्य की वृद्धि करना है। यह प्रादेशिक सम्मेलन गत पांच वर्षों से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यथासाध्य उद्योग करता आ रहा है। इसने

अपने उद्देश्य को पूरा करने में जितनी सफलता प्राप्त की है वह आप से छिपी नहीं है। यदि इसको यथेष्ट सहायता प्राप्त होती तो यह सफलता कहीं और अधिक हुई होती। यदि श्रीयुत रामधारी प्रसादजी की एकाग्रचित्तता के साथ और भी दो चार हिन्दी के प्रेमी नवयुवक इस काम में लगे रहते तो आज इस प्रान्त के उन भागों में जहाँ आदिमनिवासी बसते हैं हिन्दी का प्रचार बहुत कुछ हो गया होता। बिहार के लिये यह बड़े गौरव की बात है कि इस प्रान्त के नवयुवकों ने मद्रास और आन्ध्र प्रदेश में जाकर हिन्दी की सेवा और हिन्दीप्रचार का कठिन कार्य्य करने में तन मन लगा कर बहुत कुछ कष्टों का सामना भी किया है। यह हमारे लिये बहुत ही गौरव का विषय है कि इसी नगर के निवासी पं० प्रताप-नारायण वाजपेयी ने मद्रास के कारागार में अपने प्राण तक विस-र्जन कर दिये। यह स्मरण रखते हुए दुख और आश्चर्य होता है कि इस प्रान्त के उन भागों में जहाँ हिन्दी बोली नहीं जाती, हिन्दीप्रचार के लिये उत्साही नवयुवक नहीं मिलते। हो सकता है कि इसका कारण हमारी संस्था की शिथिलता हो और उस शिथिलता का कारण द्रव्याभाव हो। हमारा विश्वास है कि जिस काम के लिये सच्चे सुयोग्य त्यागी कार्य्यकर्ता मिलेंगे वह कार्य्य द्रव्याभाव से रुक नहीं सकता। इस लिये आवश्यकता है यहाँ त्यागी कार्य्यकर्त्ताओं की। उत्कल प्रदेश और बिहार प्रान्त की जनसंख्या ३ करोड़ ८० लाख है जिस में हिन्दी बोलनेवालों की संख्या २ करोड़ ५२ लाख, उड़िया बोलनेवालों की संख्या ७० लाख, बङ्गला बोलनेवालों की संख्या १६ लाख और अनार्य्य भाषा भाषियों की संख्या ३३ लाख के लगभग है। अनार्य्य-भाषा-भाषी संथाल परगना, छोटा नागपुर और उड़ीसा के कुछ अंशों में बसते

हैं। हिन्दी प्रचार का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उड़िया बङ्गाली जैसी प्रान्तिक भाषाओं का मूलोच्छेद कर उनके स्थान पर हिन्दी बैठायी जाय। पर जहाँ तक मैंने इस विषय पर विचार किया है मैं समझता हूं कि अन्तरप्रान्तीय और अखिलभारतवर्षीय कार्यों में व्यवहार होनेवाली भाषा और माध्यम हिन्दी ही बनाई जाय और वही हो सकती है और होना भी चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब अन्य भाषाभाषियों के बीच हिन्दी का प्रचार इस प्रकार से किया जाय कि वह इसे राष्ट्रीय और अन्तर-प्रादेशिक कामों में व्यवहृत करने लगें। समय अत्यन्त अनुकूल है. सारे देश में राष्ट्रीयता की लहर चल रही है और छोटे छोटे विचार-प्रान्तीयता और प्रादेशिकता के संकुचित भाव—आज इस अनन्त देशप्रेम के महासागर में विलीन हो गये हैं। उन प्रदेशों में भी जहाँ आज तक प्रादेशिक भाषाओं की तूती बोलती थी और जहाँ हिन्दी के प्रति एक प्रकार की ईर्षा सी प्रकट होती थी वहाँ आज हिन्दी को अपनाने के लिये लोग लालायित हो रहे हैं। ऐसी अवस्था में बिहार जैसे प्रान्त में जहाँ दो मुख्य प्रादेशिक भाषाएं और कितनी ही अनार्य्य भाषाएं बोली जाती हैं यह अत्यन्त सुन्दर सुअवसर प्राप्त हुआ है जिससे लाभ न उठाना हमारी अकर्मण्यता का ज्वलन्त प्रमाण होगा। आपने देखा और सुना होगा कि छोटा नागपुर के जंगलों में विदेशीय धर्म प्रचारक सहस्रों कोसों से आकर उन आदिम निवासियों की सेवा कर रहे हैं। उनकी रीति नीति और उनकी भाषा के जानने और अध्ययन करने में कितने ही विदे-शियों ने अपने जीवन तक अर्पण कर दिये हैं। क्या हम जो स्वदे-शीय होने का दम भरते हैं इतना भी नहीं कर सकते कि वहाँ हिन्दी पाठशालाएँ खोलें और उन्हें धर्म और राष्ट्रीयता की ओर,

अपने सच्चरित्र और सेवा तथा त्याग से, आकृष्ट करने का प्रयत्न करें। हिन्दी भाषियों के लिये यह परीक्षा का समय है। क्या हम यथा साध्य चेष्टा कर के पाँच सात पाठशालाएँ भी इस निमित्त नहीं खोल सकते कि उनके द्वारा आदिम निवासियों के बच्चों को शिक्षा मिले? मेरी तुच्छ सम्मति है कि यह सम्मेलन इस वर्ष के भीतर १० पाठशालाएँ, छोटा नागपुर में अथवा संथाल परगना में जहाँ उचित समझे हिन्दी के प्रचारार्थ अवश्य खोल दे, उनके लिये शिक्षक इत्यादि के वेतन में जो व्यय हो उसे पूर्ण करे और इसी प्रकार अपने कार्य्य को दिनोदिन अधिक अधिक बढ़ाता जाय और अगले दश वर्षों के भीतर कोई स्थान ऐसा न रह जाने दे जहाँ हिन्दीप्रचारार्थ पाठशालाएँ न खुल जायं। सच पूछिये तो बिहार-प्रान्त के भीतर प्रचार का काम यही एक है और वह यही है।

साहित्य सम्मेलन के दूसरे उद्देश्य की पूर्ति के लिये अच्छे अच्छे कवि और लेखकों की सहायता अपेक्षित है। आपको यह सुन कर हर्ष और आश्चर्य्य होगा कि बिहार निवासी अपने प्रान्त से बाहर जाकर हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। कलकत्ते से जितने पत्र और जितनी पत्रिकाएं निकल रही हैं उनमें प्रायः सबों के संचालन में बिहारी भाइयों का हाथ है। गत सम्मेलनों के सभापतियों के भाषण तथा लेखों के देखने से प्रतीत होता है कि बिहारी हिन्दी की सेवा परम्परा से करते आ रहे हैं और आज भी उनमें से कुछ ऐसे सुलेखक हैं जिनकी मान मर्य्यादा बिहार के बाहर हिन्दी संसार में है और हो रही है। ऐसी अवस्था में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने प्रदेश के नवयुवकों को प्रोत्साहित करें। हिन्दी ग्रन्थप्रकाशन का काम सम्मेलन ने अपने हाथ में लिया था पर वह भी शिथिल हो गया और यह शिथिलता चाहे द्रव्याभाव

से हो अथवा लेखकों की अरुचि के कारण पर प्रान्तीय सम्मेलन ने आज तक बहुत थोड़ी संख्या में पुस्तकों को प्रकाशित कर पाया है। इस कार्य्य पर अधिक ध्यान देना चाहिए और मैं उन लेखकों को जो हिन्दी के ग्रन्थ लिख रहे हैं और जिन्हें इस सम्मेलन के साथ सहानुभूति और सम्बन्ध है यह सम्मति देता हूं कि अपने सुन्दर ग्रन्थों को इसे अर्पण कर इस की श्रीवृद्धि के कारण बनें। मेरे विचार में बिहार में अभी स हि य की ओर लोगों का झुकाव नहीं हुआ है। सब नगरों में अभी तक हिन्दी सभायें और साहित्य-समितियां भी स्थापित नहीं हुई हैं और जहां हैं भी, उनकी नियमित रूप से बैठक नहीं होती और न साहित्य चर्चा का प्रबन्ध है। स्थायी समिति का कर्तव्य है कि एक उपदेशक रख कर सब नगरों में जीती जागती शाखायें खोलवाने का प्रयत्न करें और सुन्दर लेखों तथा व्याख्यानों द्वारा लोगों की रुचि साहित्य की ओर आकर्षित करें। इसमें सफलता तभी हो सकती है जब कि साहित्य के भिन्न भिन्न अंगों की पूर्ति हो। इस कार्य्य में जिन्हें ईश्वर ने सहायता देने की शक्ति दी है वही सहायता दे सकते हैं।

मैं केवल एक बात और कह कर अपना वक्तव्य समाप्त करूँगा। बिहार के जलवायु का कुछ ऐसा प्रभाव है कि यहाँ से जो पत्र और पत्रिकायें निकलती हैं वह सफलीभूत नहीं होतीं। हिन्दी का प्राचीनतम साप्ताहिक पत्र बिहार बन्धु भी बहुत काल तक ज्यों त्यों दिन काट कर अस्त हो गया और उधर के जो नये पत्र पत्रिकायें हैं वह भी ग्राहकों की अरुचि और सहानुभूति के अभाव के कारण हानि उठा कर ही चलायी जा रही हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ हिन्दी के पत्रों का प्रचार नहीं है। मेरा विश्वास है कि कलकत्ता, काशी, प्रयाग और कानपुर के पत्रों का प्रचार बहु-

तायत से इस प्रान्त में है पर किसी कारण से इस प्रान्त के पत्रों का प्रचार नहीं होता। संभव है कि यहाँ के पत्र उस सुन्दरता के साथ सम्पादित न होते हों जैसा बाहर के पत्र होते हैं। पर तौ भी जब तक उनके साथ सहानुभूति न दिखलायी जायगी और उन्हें सहायता न दी जायगी तब तक वह उन्नति कैसे कर सकते हैं? क्या इस सम्मेलन से यह आशा की जा सकती है कि प्रादेशिक समाचार पत्रों को शक्तिशाली बनाने में भी वह कुछ सहायता करेगा।

मैंने अत्यन्त आवश्यक बातें जो मेरी तुच्छ बुद्धि में मुझे जान पड़ीं कह सुनायीं। मैं आप सज्जनों का फिर स्वागत करता हूं और आशा करता हूं कि इस सम्मेलन के फलस्वरूप बिहार प्रान्त में हिन्दी का प्रचार और हिन्दी साहित्य की उन्नति शीघ्रातिशीघ्र देखने में आवेगी।

राजेन्द्र प्रसाद



प्रथम प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलन की स्वागत कारिणी समिति के सभापति श्रीयुत बाबू वैद्यनाथ प्रसाद सिंह जी ने निम्नलिखित शब्दों में उपस्थित सज्जनों का स्वागत कियाः—

प्रिय मान्य हिन्दी प्रेमी बन्धुवरो,

परम आनन्द के साथ २ हमारे लिये यह बड़े गौरव की बात है कि हमें आज परम पावनी हृदय हुलासिनी पापनाशिनी माता श्री भागीरथी तथा नारायणी के संगम पर अति प्राचीन और पवित्र तीर्थ इस हरिहरक्षेत्र में मातृभाषा सेवी जाति-प्रेमी देशानुरागी इतने महानुभावों का विनीत भाव से, हृदय के अन्तःकरण में प्रीति से और श्रद्धा से स्वागत करने का अमूल्य सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

प्रख्यात है कि गज-ग्राह की अति पुरातन कथा का लीला क्षेत्र यही तीर्थ है। तो, गज के आर्तनाद से आकृष्ट होकर जिस करुणाकर ने करुणा करके उसको संकट से विमुक्त और अभय किया था वही भक्तवत्सल दयार्णव संकटहारी श्री कृष्ण मुरारी आज हम लोगों के सैकड़ों और हज़ारों मुखों से हिन्दी की पुकार सुनकर उसको अपने ही सुपुत्रों की उदासीनता अकर्मण्यता और अभक्ति के खोदे हुए हीनता और अपूर्णता रूपी गर्त से उठाकर विघ्नबाधाओं के ग्राह से रक्षा करते हुए, उन्नति के उन्नत शिखर पर बैठा दें—यही मेरी प्रार्थना है।

कार्यक्षति और धन व्यय की परवाह न करते हुए कितनी ही असुविधायें उठाकर, अनेक कष्ट झेल कर दूर दूर से आप लोग जो

इस सम्मेलन में पधारे हैं इसके निमित्त हम आपको क्या धन्यवाद दें क्योंकि यह तो आपने अपना कर्त्तव्य ही किया है; मातृभाषा का प्रेम तथा अपने देश की ओर विशेषतः अपने प्रदेश की सेवा की प्रबल इच्छा आपको यहां खींच लायी है। परन्तु, हमारे लिये विशेष रूपसे धन्यवाद देने का विषय यह है कि इस व्याज से हम लोगों को भी आप ऐसे विद्वानों और साहित्य सेवियों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ, आप लोगों की सत्संगति से लाभान्वित होकर हम भी अपने कर्त्तव्य को समझेंगे और मातृभाषा की कुछ सेवा करने के योग्य बनेंगे। एतदर्थ हम अनुगृहीत हैं, कृतज्ञ हैं, और हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

कृपाशील सज्जनो, इस बात से हम लोग बड़े दुःखी हैं, बहुत लज्जित हैं कि आप के आराम के लिये यथेष्ठ प्रबन्ध हम से न होसका। फिर भी, आपकी सेवा शुश्रूषा में अपनी अक्षन्तव्य त्रुटियों के रहते हुए भी, यदि आप के सम्मुख ढिठाई के साथ खड़ा हूं तो वह केवल आप लोगों की उदारता, क्षमाशीलता और महानुभावता के भरोसे।

यह हमारी अणुमात्र भी इच्छा नहीं हैं कि अपनी त्रुटियों पर पर्दा डालने के लिये अपने दोषों के परिशोधन के लिये कुछ बहाने आप के सामने पेश करूँ, क्योंकि ऐसा प्रयास करना तो अपराध को और गुरुतर बनाना है। तौभी स्वागत समिति की कठिनताओं का संक्षेप से उल्लेख कर देना शायद अनुचित नहीं होगा। आज से केवल तीन सप्ताह पहले कतिपय उत्साही नौजवानों के मनमें यह स्फूर्ति हुई कि बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया जाय। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि प्रान्तीय सम्मेलन की बड़ी आवश्यकता है। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य

सम्मेलन हमको अपनी शिक्षा, उपदेश और उत्तेजना से प्रति वर्ष विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकता है। क्योंकि उसे तो क्रमशः सभी प्रदेशों का आतिथ्य स्वीकार करना है। और बिहारवासी-हम लोग अपने कर्त्तव्य पालन में ऐसे पीछे पड़े हुए हैं कि यदि प्रति वर्ष कम से कम एक बार भी आलस्य की निद्रा से जगाने वाला और शिथिल उत्साह को पुनर्जीवित करने वाला प्रदेशिक सम्मेलन न होगा तो आशा नहीं होती कि हम लोग हिन्दी के उत्थान में अपना उचित भाग ले सकें और अपने प्रिय प्रदेश को अन्य प्रदेशों के समक्ष आदर का आसन पाने के योग्य बना सकें। भारतीय सम्मेलन के मन्तव्यों को कार्य्य द्वारा सफल करने के लिये भी प्रादेशिक सम्मेलन का बड़ा प्रयोजन है, जो अपने प्रदेश की आवश्यकताओं पर ध्यान रखते हुए कार्य्य का मार्ग निश्चित करे और स्थान २ में हिन्दी की उन्नति के लिये संस्थाएं स्थापित करके उनसे काम ले। भारतीय सम्मेलन भिन्न २ प्रदेशों के लिये कार्यक्रम समुचित रूप से निर्धारित नहीं कर सकता क्योंकि सबकी अवस्थाएं और आवश्यकताएं अलग २ हैं, एक ही कार्यप्रणाली से सब का काम पूरा नहीं हो सकता।

इन बातों का विचार करके, हिन्दी से प्रेम रखने वाले मुज़फ्फरपुर के प्रायः सभी प्रतिष्ठित और गणनीय सज्जनों ने प्रान्तिक सम्मेलन सम्बन्धी उक्त प्रस्ताव का सहर्ष समर्थन किया। फलतः ता० १९-१०-१९ को हिन्दू-भवन में एक सार्वजनिक सभा की गई जिसमें उक्त प्रस्ताव को कार्य में परिणत करने के लिये स्वागत-कारिणी समिति का संगठन हुआ। अतः स्वागत समिति अपनी स्वल्पशक्ति और अति परिमित अनुभव के अनुसार भलाबुरा जो

कुछ प्रबन्ध कर सकी है इसके लिये उसको केवल १५ दिनों का समय मिला।

सवाल हो सकता है कि फिर ऐसी जल्दबाज़ी क्यों की गई; पर्य्याप्त समय और परिश्रम लगाकर सब काम समुचित रूप से क्यों नहीं किये गये? इसका भी कुछ समाधान करना मेरा कर्तव्य है। इस में सन्देह नहीं कि जिस प्रकार अधिक विलम्ब से कार्य्य-क्षति होती है उसी तरह अति शीघ्रता से भी काम ख़राब हो जा सकता है। परन्तु साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि कभी २ जैसे विलम्ब अनिवार्य हो जाता है वैसे ही शीघ्रता आवश्यक हो जाती है अस्तु, इस क्षिप्रता का पहला कारण है—"शुभस्य शीघ्रम्"। सोचा गया कि इस समय बहुत लोगों के हृदय में एक उत्तेजना और स्फूर्ति का उदय हुआ है इस से शीघ्र ही लाभ उठा लेना ठीक है। कहीं ऐसा न हो कि कुछ समय बीतने पर यह उत्साह मन्द और निस्तेज हो जाय और तब जो थोड़े बहुत काम होजाने की इस वक्त आशा है उतना भी पीछे न हो सके। दूसरा कारण यह है कि पटने में भारतीय सम्मेलन होने से कुछ पहले ही इस प्रान्तिक सभा का हो जाना उचित और लाभदायक समझा गया जिससे हम लोग उस सम्मेलन के लिये भलीभांति तय्यार हो जायं। परन्तु इस गंगा स्नान की छुट्टी के बाद और पटना सम्मेलन के समय से पूर्व (एक दिसम्बर में बड़े दिन की तातील को छोड़ कर) दूसरी कोई उपयुक्त तिथि सुविधा की नहीं देख पड़ी, जिसको मेरी अल्प मति के अनुसार, समस्त देशीय सभा समितियों के लिये ही रख छोड़ना अच्छा है। उस सप्ताह में कोई प्रादेशिक सभा करने में दोनों की क्षति है—प्रादेशिक सभाओं की भारतीय सभाओं की भी।

सम्मेलन सम्बन्धी प्रबन्ध की त्रुटियों की जवाबदेही एक मात्र समय की संकीर्णता पर ही नहीं है। बराबरही, बल्कि और अधिक उत्तरदायी स्थान का चुनाव है। सोनपुर का मेला केवल अपने ही प्रदेश का सबसे बड़ा मेला नहीं है, प्रत्युत भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध भारी मेलों में से एक है। ऐसे मेले में ऐसे विशाल जन समूह में, जहां इस लम्बे चौड़े मैदान की एक २ दो २ हाथ भूमि के लिये व्यापारियों में प्रतियोगिता होती है, जहां बित्ते २ धरती पर कर लगा करता है, सम्मेलन के लिये स्थान पाने और प्रतिनिधि महाशयों के लिये सुखप्रद निवास का प्रबन्ध करने में जो कठिनाई हो सकती है उसका अनुमान करना आसान है। तब पूर्ववत् फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि जान बूझ कर यह कठिनता क्यों उत्पन्न की गई; अपने नगर मुज़फ्फरपुर में ही सम्मेलन क्यों नहीं निमन्त्रित किया गया? इसके भी दो कारण हैं। प्रथम, यदि इस गंगा स्नान की छुट्टी में ही सम्मेलन किया जाता (जैसा कि उचित जान पड़ा) तो उसको मुज़फ्फरपुर में निमन्त्रित करना मानो साथ ही श्रीमती असफलता देवी को भी सानुरोध बुलावा भेजना था, क्योंकि मुज़फ्फरपुर के नागरिकों में बहुत से सज्जन इस मेले में चले आते हैं, तथा बाहर के भी अनेक महाशयों के शुभागमन में मेले को बाधक होने की पूरी आशङ्का थी। दूसरी बात यह सोची गई कि प्रथम सम्मेलन का सब से मुख्य काम होना चाहिये अपने अस्तित्व का ढिंढोरा पीट देना। मैं इसको प्रथम सम्मेलन कह रहा हूँ एतदर्थ क्षमा प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि यह निर्णय करना तो आपलोगों के अधिकार की बात है कि इसको प्रथम सम्मेलन के नाम से गौरवान्वित करेंगे या केवल सम्मेलन की स्थापिका सभा की पदवी से विभूषित करेंगे। खैर इसका नाम

चाहे किसी प्रकार हो इसके जन्म की खुशखबरी का जहां तक शीघ्र हो सके प्रदेश भर में फैल जाना ज़रूर अभीष्ट है। विशेपतः—यदि यह उपक्रम–सभा समझी जाय तब तो प्रचार ही इसका मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। इस दृष्टि से यह मेला उपयुक्त स्थान समझा गया। फिर, हिन्दीविषयक सम्मेलन का सम्बन्ध केवल सुशिक्षित जनता से ही नहीं रहना चाहिये–कम से कम मेरा बिचार ऐसा ही है। हमारे अल्प शिक्षित या अशिक्षित ग्रामवासी भाई भी इसकी सत्ता और महत्ता को जानें ऐसा उद्योग करना चाहिये। अनुमान किया गया कि इस उद्देश्य की पूर्ति में मेले का स्थान बहुत कुछ सहायक हो सकता है।

बहुत सम्भव है कि इन पूर्वोक्त कारणों ने हमें धोखा दिया हो और सम्मेलन के लिये समय तथा स्थान के चुनाव में चाहे क्षिप्रकारिता के कारण चाहे अनभवहीनता के कारण, हमसे बड़ी भूल हो गई हो। यदि यह बात है तो इस भूल के लिये, जिससे आपको इतनी असुविधा और कष्ट हुआ मैं स्वयं अपनी ओर से, स्वागत कारिणी समिति की तरफ से, तथा मुज़फ्फरपुर की हिन्दी प्रेमी जनता की ओर से, करबद्ध क्षमाप्रार्थी हूँ। भूलचूक माफ़ करके दोषों की अपेक्षा करके, हमारे इस न्यूनता–संकुल त्रुटिपूर्ण कार्य्य को अपनाइये और हम को कृतकृत्य कीजिये। आप की स्वीकृति की मुहर पड़ते ही हमारे इस कार्य्य के सब दोष दूर हो जायंगे, आपके अनुग्रह का पारस छूते ही यह लोहा सोना हो जायगा।

सरस्वती के कृपापात्र सज्जनो, जिस व्यक्ति को हिन्दी का, मर्म्मज्ञ विद्वान होना तो बहुत दूर की बात है, साधारण ज्ञाता होने का गौरव भी प्राप्त नहीं है वह यदि साहित्य के गम्भीर

विषय पर इस विद्वन्मण्डली के सामने मुंह खोले तो अनधिकार-चर्चा का इससे बढ़ कर हास्यजनक उदाहरण और क्या हो सकता है? तथापि, साहित्य चर्चा करने के सर्वथा अयोग्य होने पर भी, हिन्दी भाषी होने के नाते और साहित्य सेवियों का एक लघु सेवक होने के अधिकार से यदि मैं हिन्दी की आवश्यकताओं और बिहारियों के तदर्थ कर्त्तव्य के विषय में अपने दो चार विचार आप लोगों के समक्ष उपस्थित करने का दुस्साहस करता हूँ तो आशा है कि आप लोग कृपापूर्वक अवश्य क्षमा करेंगे।

यह अवश्य ही बड़े हर्ष की बात है कि हिन्दी की जैसी चिन्ता जनक अवस्था कुछ दिन पहले थी वैसी अब नहीं है। सर्वत्र न्यूनाधिक जागृति हो गई है। हिन्दी भाषी प्रदेशों के अतिरिक्त दूसरे २ प्रदेशों में अन्यभाषा भाषी भाई भी अब हिन्दी के महत्व और प्रभाव को समझने लगे हैं। भारत के प्राय: सभी निष्पक्ष और दूरदर्शी सच्चे हितैषी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के आसन पर अभिषिक्त करने को बहुत कुछ तय्यार देख पड़ते हैं। जिस विपश्चित समाज में 'भाखा' विशेष आदर की वस्तु नहीं थी वहां भी संस्कृत के पण्डितों में भी, कुछ महानुभावों ने हिन्दी को अपनाया है। अंग्रेजी के विद्वान् लोग भी, जो अपने भाई बन्धुओं तक को चिट्ठी पत्री प्राय: अंग्रेजी में ही लिखा करते हैं और अपनी भाषा की बोल चाल से भी सैकड़े ४०—५० शब्द अंग्रेजी के ले आते हैं, जो एक समय हिन्दी बोल या लिख न सकने को भी एक प्रकार का गौरव ही समझते थे, अब हिन्दी पर कृपा करने लगे हैं। कुछ साहित्य सेवी हिन्दी के अभावों को पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। "शब्द सागर" के सङ्कलन ऐसा कोई २ वृहत कार्य्य भी हो

रहा है। हिन्दी के कई समाचार पत्र लब्ध प्रतिष्ठ और प्रभावशाली हैं। सामयिक साहित्य का भी अभाव नहीं है। यह सब निस्सन्देह बहुत आशाजनक है, परन्तु सन्तोषप्रद नहीं क्योंकि जो कुछ हुआ है और जो कुछ हो रहा है वह जितना होना चाहिये उससे बहुत कम है, अत्यन्त कम है। बड़ी ही मन्दगति से काम हो रहा है।

अंग्रेजी जैसी पाश्चात्य भाषाओं के समुन्नत साहित्य से हिन्दी साहित्य की तुलना करना तो मानो बिजली की रोशनी में मोमबत्ती जलाना है। परन्तु इससे कहीं अधिक खेद और ग्लानिका विषय यह है कि अपने ही देश में सहोदरा छोटी बहिनों के सामने भी सबसे अधिक पुत्रों की माता का सिर अभी तक नीचा ही है। अन्य भाषाओं से तुलना की बात जाने दीजिये । अपने घर की सामग्री को देखिये कि हमारे पास क्या है, क्या नहीं । अपने देश का तथा अन्याय देशों का इतिहास, भूवृत्त, गणित शास्त्र के अनेक अङ्ग, विज्ञान की बहु संख्यक शाखा प्रशाखाएं, दर्शन शास्त्र के विविध अङ्ग, राजनीति, अर्थ शास्त्र, शिल्पकला, यन्त्र विद्या व्यापारविद्या–इत्यादि, क्या संसार का कोई भी विषय ऐसा है जिस पर हम अपनी मातृभाषा में विस्तीर्ण और सर्व्वाङ्ग पूर्ण ग्रन्थ दिखाने का अभिमान कर सकें? आप लोग क्षमा करेंगे यदि मैं यह पूछने की धृष्टता करूँ कि क्या यह स्थिति हिन्दी भाषी विद्वानों के लिये लज्जा की बात नहीं है?

अच्छा, हिन्दी का यह चित्र तो भारतीय दृष्टि से है। अब जो अपने प्रदेश की ओर देखते हैं तो और भी अन्धकार है। एक समय वह था कि हिन्दी के संजीवन और उत्थापन में बिहार अन्य प्रदेशों का

अग्रणी नहीं तो सहगामी अवश्य था। बिहार ने ही स्वनाम धन्य वर्त्तमान हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु की ललित तथा सरस रचनाओं का प्रकाशन किया, और यदि भूल नहीं कर रहा हूँ तो हमारे ही प्रान्त में हिन्दी के सबसे पुराने समाचार पत्र बिहार बन्धु का जन्म हुआ खड़ी बोली का अन्दोलन खड़ा कर गद्य और पद्य की भाषा अलग २ सिद्ध करने का भी श्रेय इसी को मिला है। परन्तु अब हम लोग अपनी हिन्दी सेवा में बहुत पीछे पड़ गये हैं। मातृभाषा की उन्नति में हम लोग अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य को पूर्ण बनाने में हम उचित भाग नहीं ले रहे हैं। बिहार और उड़िस्सा की जन संख्या और विस्तार की तुलना करने पर आपको यह सुन कर खेदपूर्ण आश्चर्य होगा कि इस बिहारोत्कल प्रदेश में उड़िया भाषा में नव प्रकाशित पुस्तकों की संख्या कहीं अधिक है। खेद की बात है कि "खड्गविलास" जो इस प्रान्त में हिन्दी का शायद सब से बड़ा प्रेस है केवल नहीं तो मुख्यतः शिक्षा विभाग की पाठ्य पुस्तकों की ओर ही ध्यान देता है। यदि इसके साथ ही वह हिन्दी के हीन अंगों की पूर्त्ति के लिये भी यथेष्ट प्रयत्न करे तो हिन्दी को बिहार को उस प्रेस को भी बड़ा लाभ हो। कई उत्साही सज्जनों के द्वारा साहित्य सेवा कुछ हो रही है अवश्य, जैसे उदाहरण के लिये बांकीपुर की "साहित्य ग्रन्थमाला" तथा आरा नागरीप्रचारिणी सभा की प्रकाशित पुस्तकों का उल्लेख्य किया जा सकता है। जिससे जो कुछ सेवा बन आती है उसके लिये वह प्रशंसा के योग्य है, धन्यवाद का पात्र है। परन्तु स्पर्धा और प्रतियोगिता के मैदान में, इस घुड़दौड़ के चक्कर में जहां सब की दृष्टि इसी पर लगी हुई है कि

देखें कौन आगे बढ़ता है, हम बिहारियों की कूर्मगति से काम नहीं चलेगा। आप लोग उचित समझें तो सम्मेलन में इस पर बिचार करें कि ऐसी एक प्रादेशिक संस्था–प्रकाशक मण्डली क्यों न स्थापित की जाय जो भिन्न २ विषयों के विशेषज्ञ और विद्वानों से उत्तम और प्रामाणिक ग्रन्थ लिखाकर तथा अन्य भाषाओं के बहुमूल्य रत्नों का अनुवाद करा के, सुलभ मूल्य में प्रकाशित करे। यदि संयुक्त प्रदेश के उद्यमी साहित्य सेवी 'शब्दसागर' ऐसे अभिधान से मातृभाषा की सहायता करते हैं, जो अनेक त्रुटियों के रहते हुए भी हिन्दी संसार में अपना सानी आप ही है, तो क्यों न हमलोग "ज्ञानार्णव" विश्वकोष मातृभाषा के सामने रख कर अपने ऋण से मुक्त हो जायँ।

पुस्तकों से समाचार पत्रों की ओर दृष्टि फेरिये तो इधर भी ऐसी अवस्था नहीं कि मन को हर्ष और सन्तोष हो। यदि "सर्च-लाइट" के हिन्दी क्रोड़ पत्र या परिशिष्ट को न गिनें, जो अलग स्वतन्त्र हिन्दी पत्र शायद नहीं कहा जा सकता, और जो कदाचित् अभी परीक्षावस्था में है प्रादेशिक दृष्टि से गणनीय पत्र केवल एक "पाटलिपुत्र" देख पड़ता है। फिर अपने प्रान्त के समाचार पत्र की अपेक्षा कहीं अधिक अन्यस्थानीय पत्रों का ही प्रचार और सम्मान देख कर संख्या की कमी के साथ २ योग्यता की भी न्यूनता ज्ञान पड़ती है।

यदि सामयिक साहित्य की चर्चा की जाय तो दुःख की बात है कि, बिहार में उसका एक दम अभाव कहना भी शायद अति-शयोक्ति नहीं। यह हम लोगों की उत्साह हीनता का प्रमाण है कि बिहार में इस समय एक भी ऐसा मासिक पत्र नहीं जो अपने

अन्य प्रान्तीय भाइयों की पंक्ति में बैठ सके। कुछ दिन हुए मुज़फ्फरपुर के रत्नाकर प्रेस से सत्ययुग नामक मासिक पत्रिका का प्रादुर्भाव हुआ था, पर खेद एवं शोक की बात है कि थोड़े ही दिन चलने के पश्चात् वह भी कालकवलित हुआ। प्रान्तीय सम्मेलन में एक साहित्य विषयक उत्तम मासिक पत्र निकालने की बात सोचना, मेरी समझ में अनुचित न होगा।

एक बात और विचारने की है। मेरी समझ से सर्व साधारण जनता को अविद्यान्धकार से निकालने के लिये बद्धपरिकर विद्वानों के कर्त्तव्य की पूर्ति इतने ही से नहीं हो सकती है कि वे उत्तमोत्तम पुस्तक रत्नों से मातृभाषा का भंडार भर दें। क्योंकि हम लोगों के दुर्भाग्य से इस प्रदेश में अभी ऐसे ही भाइयों की संख्या अत्याधिक है जो पुस्तकों के रहते हुए भी उनसे लाभ नहीं उठा सकते— कारण चाहे शौक की कमी हो या समय का अभाव, लक्ष्मी का कोप हो या सरस्वती की अकृपा। यदि कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास किताबें खरीदने को पैसा नहीं तो बहुत से ऐसे भी हैं जिनमें पुस्तकों के पढ़ने और समझने की योग्यता ही नहीं। कोरे निरक्षर लोगों की संख्या भी बहुत है। ज्ञानार्ज्जन से ऐसे भाइयों की आँखें खोलना भी विद्वानों का मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये। मेरे विचार में इस काम के लिये सम्मेलन की ओर से नगर नगर में और पीछे सफलता होने पर, ग्रामों में भी सर्व साधारण के ज्ञातव्य विविध विषयों पर व्याख्यानों का प्रबन्ध किया जाय। स्वास्थ्य विद्या—हैजा कैसे फैलता है, कफज्वर इन्फ्लुएन्जा से कैसे बच सकते हैं, शरीर और घर की स्वच्छता के लिये क्या २ आवश्यक हैं; जिस पृथ्वी पर हम लोगों का जीवन मरण होता है उसके

विषय में जानकारी, अपने देश के बाहर और कहां २ कैसे २ देश हैं, किस की क्या अवस्था है, अपनेही देश में भिन्न २ प्रान्तों और महत्त्व पूर्ण स्थानों का वर्णन; ज्योतिष की बातें-सूर्य्य, चन्द्र आदि ग्रहों का वृत्तान्त, रात और दिन कैसे होते हैं ग्रहण क्या चीज़ है, वर्षा कैसे होती है, मौसम क्यों बदलते हैं, कृषि सम्बन्धी ज्ञान किन पौधों के लिये कैसा खाद लाभकारी है, बनस्पतियों की रोगों से और नाशक जन्तुओं से किस प्रकार रक्षा हो सकती है, अनेक ऐसी वस्तुओं को जो अभी बिल्कुल बेकार समझी जाती हैं किस तरह काम में लाकर लाभ उठाया जा सकता है, फलों की खेती उत्तम रीति से किस प्रकार होसकती है, अन्य देशों के कृषि सम्बन्धी वैज्ञानिक अविष्कारों से इस देश में लाभ उठाने की बातें, आदि कहां तक गिनती की जाय, साहित्य इतिहास विज्ञान कृषि शिल्प स्वास्थ्य राजनीति शिक्षा इत्यादि २ सैकड़ों ऐसे विषयक जिन पर अल्प शिक्षित वा अशिक्षित भाइयों के समझने योग्य सरल और सुगम भाषा में व्याख्यान देकर उनको बहुत से आवश्यक ज्ञान दिये जासकते हैं, उनके भाव उच्च और उदार बनाये जा सकते हैं, उनका जीवन अपेक्षा कृत अधिक सुखकर बनाया जा सकता है, कूप मण्डूक की अवस्था से उठाकर वे जानकार मनुष्यों की गणना में लाये जा सकते हैं; केवल साक्षर होने या कुछ पुस्तकों के पढ़जाने सेही आदमी सुशिक्षित नहीं कहा जा सकता। पूरा प्रयत्न किया जाय तो अशिक्षित लोगों की भी जानकारी बढ़ाई जा सकती है और विचार सुधारे जा सकते हैं।

अच्छा तो अब अलमति विस्तरेण। अपने नीरस और निस्सार निवेदन के सुनाने में और अधिक समय आप लोगों का नष्ट करना

उचित नहीं समझता हूँ क्योंकि जितना समय मैं लूगा। उतना ही अधिक विलम्ब हम लोगों को सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय के ससमय सम्भाषण से आनन्द उठाने में होगा। अत: मैं अब आप लोगों से यह विनय करके अपने वक्तव्य को समाप्त करूँगा कि हम लोगों को सम्मिलित शक्ति से काम करने की बड़ी आवश्यकता है। अलग २ व्यक्ति अपनी २ विद्या, रुचि और शक्ति के अनुसार मातृ-भाषा की जो कुछ सेवा कर सकें वह अवश्य करें, सम्मेलन उनका कृतज्ञ होगा। परन्तु उनके काममें जरा भी बाधा न पहुंचाने की इच्छा रखता हुआ, यह सम्मेलन प्रान्त भरके विद्वान और विशेषज्ञ लेखकों की, उदारता और उपकार बुद्धि से काम करने वाले प्रकाशकों की; तथा मातृभाषा के भक्त मुक्तहस्त धनी सहायकों की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करके हिन्दी के उत्थापन में अपना पूरा बल लगादें ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब सब हिन्दी प्रेमी एकता और सहकारिता के साथ काम करें। हम लोगों को आपस के झगड़ों में समय बिताने का अवकाश नहीं है ऐसा कोई काम हम लोगों को नहीं करना चाहिये जिससे परस्पर के स्नेह और सहानुभूति को कुछ भी धक्का पहुँचे। साहित्य विषयक शास्त्रार्थों और समालोचनाओं में भी इस बात की बहुत सावधानी रखने की जरूरत है कि दुराग्रह और वैमनस्य का प्रवेश न होने पावे। यह बात कदापि प्रशंसा के योग्य नहीं कि ब्रजभाषा की कविता के भक्त खड़ी बोली की कविता के प्रेमियों का रसज्ञता और सहृदयता से शून्य और काव्य सौन्दर्य्य से अपरिचित अथवा ब्रजभाषा और उसके महा कवियों के प्रति कृतघ्न कहकर कोसा करें या खड़ी बोली के श्लाघी ब्रजभाषानु-रागियों को देश काल के ज्ञान से बिमुख जानियां और भाषाओं

के इतिहास से अपरिचित अदूरदर्शी परम्पराभक्त कहकर निन्दा करें। इसी प्रकार मूल शब्द से विभक्ति को मिलाकर और पृथक लिखने वालों का एक दूसरे को पण्डितम्मन्य, पक्षपात पूर्ण दुराग्रही पदवियों से विभूषित करना सज्जनों के लिये क्लेश जनक है। साहित्यिक समालोचनाएं अवश्य की जायं, इनकी बड़ी ज़रूरत है। विद्वानों की उचित और गंभीर समालोचनाओं से ही प्रचलित और वर्द्धमान भाषा की शैली, व्याकरण और मुहावरे सुडौल तथा परिमार्ज्जित एवं निश्चित होते हैं। निकृष्ट पुस्तकों की पोल खोलने और उत्तम पुस्तकों को लोक प्रिय बनाने के लिये भी समालोचना का प्रयोजन है। परन्तु साथही आवश्यकता इस बात की भी है कि समालोचना पवित्र और उदार हृदय से शिष्टानुमोदित स्निग्ध भाषा में व्यक्तियोंको कालिमासे सुरक्षित एक मात्र साहित्य सेवा की दृष्टि से की जाय। साहित्य चर्चा का स्वर्गीय सुख हम लोगों को तभी मिल सकता है।

अन्त में फिर एक बार आप महानुभावों का, सविनय सादर और हार्दिक स्वागत करता हुआ, हम लोगों के नम्र निमन्त्रण पर सम्मेलन में पधार कर हम लोगों के उत्साह बढ़ाने के अनुग्रह के लिये विशेष रूप से कृतज्ञता पूर्व्वक धन्यवाद देता हुआ, तथा यहां आने और रहने में आप लोगों को जो कुछ कष्ट हुआ और होगा उसके लिये बद्धाञ्जुलिक्षमाभिक्षा मांगता हुआ मैं प्रार्थना करता हूँ कि अप आप लोग सुकवियों में प्रसिद्ध, सुलेखकों में विख्यात, लालित्य और माधुर्य्य की मूर्त्ति, हास्यरसकी प्रतिमा, हिन्दी माता के सच्चे सेवक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पक्के सहायक, अपने मनोनीय सभापति महोदय को हर्षध्वनि के साथ आसन पर बिठा-कर सम्मेलन का कार्य्य आरम्भ करें। मंगलमय भगवान हम लोगों के शुभ कार्य्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न करें।

द्वितीय प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलन की स्वागत-समिति के अध्यक्ष सेठ राधाकृष्णजी ने निम्नलिखित शब्दों में स्वागत किया—

माननीय प्रतिनिधि गण तथा अन्य सज्जन महोदयो !

उस सर्वशक्तिमान भक्तवत्सल भगवान को कोटिशः धन्यवाद है जिसकी कृपा से आज यह मंगलमय सुदिन हम लोगों को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

आप जैसे सरस्वती के भक्तों को, हिन्दी के प्रेमियों को, भारत माता के सपूतों को, इतनी अधिक संख्या में जमा हुए देखकर हम चम्पारन निवासियों को अलौलिक और अपूर्व आनन्द हो रहा है, मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं उस का ठीक ठीक वर्णन अपने टूटे फूटे शब्दों में कर सकूँ। हमारे हृदय आज आनन्द और हर्ष से उछल रहे हैं। आप सज्जनों के दर्शनों से हम अपने को धन्य और कृत कृत्य समझ रहे हैं। इतना आनन्द दायक अवसर, इतना गौरवशाली समय आज हम लोगों को प्राप्त हुआ है, यह हमारे लिये अवश्य ही परम सौभाग्य का विषय है। जिस व्यक्ति के हृदय में ज़रा भी जीवनशक्ति है जिसमें जरा भी सहृदयता है, वह इतने विशाल विद्वत् समूह को देखकर आनन्द की लहरों में हिलोरें लेने लगेगा।

इस जिले में—बल्कि इस स्वागतकारिणी समिति में भी अनेक महापुरुष विराजमान हैं जो विद्या, बुद्धि, धन, प्रभाव तथा अवस्था में मुझ से बड़े होने के कारण आप लोगों के स्वागत करने का काम बड़ी उत्तमता से कर सकते हैं तो भी समिति ने मेरे अनभिज्ञ

हाथों में इस तरह गम्भीर और गुरुतर कार्य्य का भार सौंपा। मेरा गौरव तो इससे अवश्य बढ़ा और इसलिये मैं समिति का अनुग्रहीत भी हूँ पर, मुझे भय है कि आप लोगों के स्वागत के काम में इस से भी बड़ी त्रुटि पहुंची है। दूसरे स्थान में जिस उच्च कोटि का उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ तथा सब प्रकार की सुविधा और आराम के जैसे सुप्रबन्ध किये गये वैसी सेवा हम हीनसामर्थ्य, विद्या और शिक्षा से रहित, मझौआ के गवारों से कब हो सकती है। अतः हम लोगों की चिरअभिलाषा को सफल करने के लिये जैसे मातृभाषा हिन्दी के प्रेमी सज्जन साहित्य धुरंधर, महारथी दूर दूर स्थान से अपने आवश्यकीय कार्य्यों को छोड़ राष्ट्र भाषा हिन्दी के रथ को आगे बढ़ाने के लिये यहां पधारे हैं। इसके लिये मैं स्वागत-कारिणी-समिति की ओर से हार्दिक धन्यवाद देता हुआ आए महानुभावों का सादर स्वागत करता हूँ।

आप महानुभावों के दर्शनों से, मुझे जितना हर्ष होता है उतना ही अपनी अक्षमता पर खेद भी, क्योंकि आप लोगों ने हमारे विनीति निमंत्रण को स्वीकार कर कार्य्य क्षति और धन व्यय की परवाह न कर अनेक अनेक असुविधायें उठाकर, कष्ट झेलते हुए यहां पर आने की कृपा की है—इसके लिये चम्पारन निवासी आप के अत्यन्त कृतज्ञ हैं, पर, इससे हम लोग दुखी और साथ ही साथ लज्जित भी हैं कि आप लोगों के आराम और विश्राम के लिये यथेष्ट प्रबन्ध नहीं हो सका—क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप लोगों के साधारण सत्कार, आने जाने की सवारी, रहने के स्थान, भोजन आदि के सामान उपयुक्त प्रस्तुत नहीं हो सके। अतः आतिथ्य की अनेकानेक त्रुटियों के लिये मैं केवल अपनी ओर से

नहीं, स्वागत-कारिणी-समिति की ओर से नहीं, किन्तु अपने १९ लाख चम्पारण निवासी भाइयों की ओर से केवल भाव के भूखे आप महानुभावों से बार बार विनय पूर्वक क्षमा मांगता हुआ आप के सामने ढिठाई के साथ आप लोगों की उदारता, क्षमा शीलता और महानुभावता के भरोसे पर खड़ा हुआ हूं।

यह मेरा अणुमात्र भी इच्छा नहीं है कि अपनी त्रुटियां पर पर्दा डालने के लिये अपने दोषों के परिशोध के लिये कुछ बहाने आप के सामने ढूंढ़ निकालूं—क्योंकि ऐसा प्रयास करना तो अपराध को और भी गुरुतर बनाना है। तो भी स्वागतकारिणी-समिति की कठिनाइयों का संक्षेप उल्लेख कर देना शायद अनुचित नहीं होगा।

जिन लोगों को साधारणतः चम्पारण और विशेषतः बेतिया के सार्वजनिक जीवन से कुछ भी परिचय होगा वे समझ सकते हैं कि आप लोगों के स्वागत के प्रबन्ध में समिति को कैसी कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा।

आज जिस चम्पारन ज़िले के प्रधान स्थान बेतियानगर में आप लोगों ने पदार्पण किया है यह भी अपने ऐतिहासिक महत्ता के कारण सर्वोच्चशिखर पर आरूढ़ होने का सौभाग्य प्राप्त कर चुका है। मैं आप लोगों का ध्यान सत्ययुग के उस इतिहास प्रसिद्ध पौराणिक घटना की ओर आकर्षित करता हूं जो आज तक गज ग्राह-युद्ध के नाम से प्रख्यात है। कहा जाता है कि उस पुरातन कथा की लीला क्षेत्र चम्पारण के उत्तरीय भाग का त्रिवेणी स्थान है जहांपर नारायणी और सोनया नदी का संगम हुआ है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि गज के आर्तनाद से व्याकुल हो भक्त-

वत्सल परमात्मा ने करुणा करके उसको संकट से विमुक्त और अभय किया था। ऐसा भी अनुभव किया जाता है कि प्रसिद्ध सत्याग्रही राजकुमार ध्रुव ने इसी जिले के अन्तर्गत तपस्या कर अपने को अजर अमर किया।

सम्पूर्ण जिले में ऐसे २ स्थानों का बाहुल्य है जो हिन्दू ऋषियों के पुरातन निवास स्थान होने के कारण धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त आदरणीय समझे जाते हैं। प्रातः स्मरणीय आदि कवि बाल्मीक का आश्रम भी इसी जिले में था जहाँ अपने स्वामी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र जी से वहिष्कृत होकर सतीसाध्वी भगवती श्री सीतादेवी ने आश्रय लिया था। इन महात्मा का निवास स्थान संग्रामपुर के निकट बतलाया जाता है और ऐसा अनुमान किया जाता है कि श्री रामचन्द्र और उनके दो पुत्र लव औ कुश में जो युद्ध हुआ था उसी के कारण इस स्थान का नाम संग्रामपुर पड़ा। जन साधारण का विश्वास है कि महाभारत वर्णित विराटनगर भी जहां पांडवों ने एक वर्ष तक अज्ञातवास किया था यह स्थान रामनगर से ६, ७ मील पश्चिम बैराठीग्राम के निकट अवस्थित था।

बौद्ध कालिक सभ्यता भारतीय इतिहास में एक विशेष आदरणीय स्थान पाने का दावा करती है। उस काल के इतिहास से इस जिले को बहुत बड़ी घनिष्टता है। यहां पर कुछ स्थान ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध बौद्धमत के संस्थापक के जीवन से है। बौद्ध कथनानुसार भगवान् गौतम बुद्ध ने अपने पिता के घर से घोर रात्रि में कन्थक नामक अश्व पर आरूढ़ होकर चण्डक सारथी के साथ प्रस्थान किया था। अनोमा नदी को पार करके उन्होंने अपने

सारथी को अश्वसहित लौटा दिया और राजकीय वस्त्र तथा आभूषणों से रहित हो अपने केश कटा डाले और इस प्रकार सन्यासी का रूप धारण किया। इस जिले में गण्डक के पूर्व का विहार ग्राम चण्डक के प्रत्यागमन का स्थान बतलाया जाता है और इसके नाम से पता चलता है कि किसी समय यहां बौद्ध सन्यासियों का मठ था।

चंपारण की भूमि भगवान गौतम बुद्ध के आगमन से दूसरी बार ऐसे भयानक काल में पवित्र हुई जबकि यह स्थान संक्रामक रोग के कारण निर्जन हो रहा था। उस समय वृज्जिनों के दु:खित परिवार की रक्षा करने के लिये उन्होंने आगमन किया और तीसरी बार का आगमन उनकी जीवन-यात्रा के उस घटना से सम्बन्ध रखता है जब कि संसार को साम्यवाद का उपदेश देकर कुशीनगर में अन्तिम समाधि लेने के लिये जा रहे थे।

कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि लौरिया नन्दनगढ़ अथवा उसके पार्श्व की भूमि ही उस भस्मस्तूप का स्थान है जो भगवान बुद्ध के चिताभस्म से ऊपर निर्मित हुआ था। ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि भगवान शङ्कराचार्य्य ने रत्नमाला ग्राम के चण्डी स्थान की समीप उग्रतपस्या की और सिद्धियां प्राप्त बौद्धधर्म तथा उसकी सभ्यता को भारत से बहिष्कृत कर सनातनधर्म की सत्ता जमाने में सफल मनोरथ हुए।

ईसा की ४ थी सदी के पूर्व यह जिला मौर्य्य सम्राट के अधीन हुआ और जिसका इतिहास एवं स्मारक अबतक सम्राट अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भों से विद्यमान है। जिस समय उसने पवित्र बौद्धतीर्थों के दर्शन के लिये यात्रा की थी—बहुत से स्मारकों को बनवाया था जो केसरिया में स्तूप द्वारा. एवं लौरिया अरराज,

लौरिया–नन्दनगढ़ तथा रामपुरवा (पिपरिया) में स्तम्भों द्वारा विस्तृत हैं।

४ थी सदी में प्रसिद्ध चीनीयात्री फाहियान ने कुशीनगर की यात्रा करते हुए चण्डक के प्रत्यागमन के स्थान का दर्शन किया और चंपारन को कला कौशल सम्पन्न, शिल्प वाणिज्य पूर्ण और कृषिकर्म से हरा भरा देखा तथा बौद्ध सभ्यता की सभी खूबियों से परिपूर्णतया आश्चर्य में आ गया था।

सुंगयुन जिसने ५१८ ई० में उत्तर पश्चिम भारत की यात्रा की थी। अपने भ्रमणवृतान्त में इस स्थान को हूणों के अधिकार में बतलाया है मगर, ७ वीं सदी में हियनसंग ने कुशीनगर की यात्रा में चंपारन को उजाड़ और निर्जन जंगल के रूप में पाया था।

पालवंशी राजाओं ने इसे फिर आबाद किया और उन्नतिशाली बनाया। १५ वीं सदी के अन्त में यहां से स्वाधीन हिन्दू राजाओं का आधिपत्य लोप हो गया और उन लोगों को बङ्गाल के राजा हुसैनशाह की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। शेख़ रिजाउल्लाह मुत्सफ़ी अपनी पुस्तक "वाक़याते मुत्सफ़ी" में चंपारण के ऐश्वर्य्य के विषय में लिखता है कि जिस समय हुसैनशाह ने चंपारन के राजा पर आक्रमण किया दैवात् राजा ने रणक्षेत्र में बीरगति पाई। युद्ध के काम आये हुए वीरों के जूते एकत्रित किये गये और उन जूतों को आगपर पिघलाने से २० हजार स्वर्ण मुद्रा प्राप्त हुए। शाहंशाह अकबर की दयालु प्रकृति के कारण यहाँ हिन्दू राजाओं में फिर स्वाधीनता की छटा नजर आने लगी और समय पाकर अपनी बिखरी हुई शक्ति को संगठित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस समय अलीवर्दी खां बङ्गाल का स्वाधीन नवाब हुआ–उसने

उस संगठन को सैनिक बल द्वारा विध्वंस कर डाला और यहां के शासकों को अधीनस्थ बनाया। उस समय से यहां के शासकों ने बङ्गाल के नवाबों की आधीनता स्वीकार कर ली।

सन् १७६६ ई० में सर रावर्टबाकर ने बेतिया राज्य को ईस्ट इण्डिया कंपनी के आधीन इस लाभदायक इरादे से मिलाया कि यहां के देवदारू भारत के लिये जहाज बनाने के काम आ सकते हैं, सोना, दालचीनी, लकड़ी हाथीदांत, कस्तूरी आदि बहुत से बहुमूल्य पदार्थ यहां पाये जाते हैं। अङ्गरेज लेखकों का मत है कि कम्पनी के राज्यव्यवस्था को महाराज युगुलकिशोर सिंह जी बहादुर ने सहन न किया और सन् १७७१ ई० में कम्पनी के विरुद्ध उठ खड़े हुए और अन्त में संधि हो गई। उस समय से महाराज हरिन्द्र किशोर सिंह बहादुर के० सी० आ० ई० के शासन काल तक बेतिया धनधान्य पूर्ण रहा, पर, महाराज बहादुर के स्वर्गवासी होने से यह नगरी श्री हत हो गई। आज इसकी जो दशा है वह आपकी आंखो के सामने है। सरस्वती के कृपापात्र सज्जनों! चम्पारण के इतिहास के साथ साथ आपकी प्यारी हिन्दीभाषा की भी बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये आप लोग यहां पर एकत्रित हुए हैं उसकी प्यारी सगी बहिन पाली या प्राकृतभाषा का यहां पर खूब ही दौर दौरा था, बौद्धों के युग में इस जिले के शासकों की राष्ट्र भाषा पाली या प्राकृत भाषा ही थी। सर्व साधारण को समझाने के लिए लिखी गई। अशोक की प्रशस्तियां और शिलालेख इस बात के प्रबल प्रमाण हैं। आज राष्ट्रचक्र के परिवर्तन के साथ ही साथ उस राष्ट्रभाषा का भी परिवर्त्तन अनिवार्य्य है।

हिन्दी भाषा की प्राकृतभाषा से बहुत्त ही घनिष्टता है, बल्कि बिचारपूर्वक देखने से यह बात प्रतीत होती है कि हिन्दी के शब्द बहुधा उन्हीं के रूपान्तरमात्र हैं। दो एक भाषाओं को छोड़ भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं के थोड़े बहुत मेल से हमारी हिन्दी भाषा के शब्दों का संगठन हुआ है। यही कारण है कि प्रायः सभी भारतीय लोग सुगमता से इस हिन्दी भाषा को कुछ न कुछ बोल और समझ लेते हैं। इस लिये हिन्दी की सी व्यापक भाषा दूसरी कोई भी भाषा नहीं है और न नागरो लिपि सरीखी दूसरी लिपि। हिन्दी की सगी बहिन प्राकृत या पाली राष्ट्रभाषा होने का सौभाग्य एक समय पा चुकी है। अब आप लोग मिल कर ऐसा प्रयत्न कीजिये जिसमें हिन्दी भाषा साहित्य की सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति पाने के साथ ही भारत की राष्ट्रभाषा होने का भी सौभाग्य प्राप्त करे और नागरी देश व्यापिनी लिपि हो जाय।

आप लोगों ने जिस भाषा की हितकामना के लिए यहां पर आने की कृपा की है मैं उचित समझता हूँ कि आप महानुभावों के सामने यहां की उस भाषा के प्राचीन इतिहास का उल्लेख कर देना अनुचित नहीं होगा। बेतियाधिपति महाराज नवलकिसोर सिंह जो हिन्दी भाषा के अच्छे ज्ञाता और कवि थे जिनकी कविता पुस्तकरूप में प्रकाशित नहीं हुई है, पर यत्र तत्र यहां के लोगों द्वारा सुनने में आया करती है। प्रसंगानुसार उनकी कविता का नमूना आप लोगों के सामने रखना अनुचित नहीं होगा।

कविता—

महाराज आनन्द किशोर सिंह बहादुर काव्यकला और संगीत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। श्रीशङ्कराचार्य्य की अर्द्धाङ्गिणी श्री

जगज्जननी पार्वती जी की बन्दना करते हुए महाराजा बहादुर कहते हैं :—

आली कहीं नूपुर बाजे,
श्रवणन भनक पड़ी।
तजि कैलाश चली जग जननी,
भूमंडल उतरी॥
आनन्द किशोर यह दास,
स्वामि तव आनन्द उमंगि पड़ो॥"

महाराज राजेन्द्र किशोर सिंह जी बहादुर अपनी उदारता और दानशीलता के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। आप को लोगों ने इन्हीं कारणों से कलिकर्ण की उपाधि दी थी। आप के राजदरबार में दूर २ देशों से गुणीजन आया करते और अपना गुण दिखलाया करते थे। फारसी, संस्कृत और हिन्दी भाषा के बड़े २ कवि तथा विद्वान दरबार में सदा मौजूद रहते थे। आपके यहां पं० छोटक पाठक, पं० जगन्नाथ तिवारी, बाबू दीन दयालु, मुन्शी प्यारे लाल, पं० नारायण दत्त उपाध्याय, पं० कालीचरण दुबे, पं० महावीर चौबे, मंगनी राम आदि अनेक कवि रहा करते थे और अपनी कविता का रस महाराजा बहादुर को चखाया करते थे। महाराजा हरीन्द्र किशोरसिंह बहादुर भी हिन्दी भाषा और कवियों का आदर करते थे।

"अब तो शरण हुए आये भवानी तारे बनेगो।
शरणागत प्रतिपाल करनि हो, कोटि
कियो अपराध क्षमा कर बिसारे बनेगो।

नवलकिशोर अधम को न देखो—देखो
अपनी ओर दयानिधि उधारे बनेगो।"

कविता कैसी है—यह विचार आपलोगों के ऊपर छोड़ता हूँ। महाराज नवल किशोर सिंह के अतिरिक्त आपके ज्येष्ठ भ्राता महाराज आनन्दकिशोर सिंह जी भी कविता करते थे और काव्य-कला और कवियों से विशेष प्रेम रखते थे। इसी प्रेम के कारण यहां पर दूसरे दूसरे स्थानों के कवियों का प्रायः आना जाना हुआ करता था। कविवर सरदार, पजनेश सरीखे बड़े बड़े नामी कवि यहां के दरबार में आते थे। आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी अपने पिछले कष्ट के दिनों में बेतिया दरबार ही से पोषित हुए थे। स्वर्गीय राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द को महाराज बेतिया ही ने भूमि दे कर यथार्थतः राजा बनाया। इन्हीं उदारताओं के कारण महाराज बेतिया को लोगों ने कलिकर्ण की उपाधि दी थी। बेतिया—दरबार ने हिन्दीभाषा और कवियों की कम सेवा, आदर और प्रतिष्ठा नहीं की है और उसी पुण्य का प्रभाव है कि आप महानुभावों ने आज यहां पदार्पण करने की कृपा की है। पुराणों में एक कथा है कि भगीरथ के पूर्व्वजों के तपस्या करने पर भागीरथी भारत में आई थीं, उसी नीति के अनुसार पितातुल्य हमारे महाराज के पुण्यप्रभाव से आज सुरसरिता स्वरूपा यह सभा यहां पर प्रवाहित हुई है।

हिन्दीसाहित्य की सेवा करने में चम्पारण्य, बिहार के अन्य जिलों से आगे नहीं तो पीछे भी नहीं रहा है। हिन्दी के वर्तमान पत्रों में भारतमित्र के अतिरिक्त किसी पत्र का भी जब कहीं पता नहीं था, तभी ३५, ३६ वर्ष पूर्व्व यहां से "चम्पारण्य-हितकारी"

नामक एक पत्र महाराज बेतिया के पुरोहित स्वर्गीय पं० शक्तिनाथ झा ने प्रकाशित किया था। यहां के अन्तिम नरेश स्वर्गीय महाराज सर हरिंद्रकिशोर सिंह के० सी० आई० ई० के राजत्वकाल में स्वर्गीय पं० बृजवंश लाल मिश्र के प्रबन्ध से "चम्पारण्य-चंद्रिका" निकली, पर शोक है कि उस समय के उलटफेर के कारण "चंद्रिका" की छटा राजनीतिक-आकाश में विलीन हो गई। स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के समकालीन हिन्दी और संस्कृत के कवि और सुलेखक पण्डितवर श्री-चन्द्रशेखर धर मिश्र जी ने अनेक उद्योग कर के "विद्याधर्म-दीपिका" नामक पत्रिका प्रकाशित करनी शुरू की, पर उसकी भी वही दशा हुई जो "चंद्रिका" की हुई। यह हमारे लिये खेद और लज्जा की बात है कि इतने धनी मानी सज्जनों के रहते हुए भी ये पत्र हमसे बिछुड़ गये। यहां के पुराने कवियों में अभीतक पं० रामदत्त मिश्रजी जीवित हैं। मनोजरंजक मानसमलहरी, काव्य एवं नलदमयन्ती-नाटकादि के रचयिता बाबू महाबीरसिंह का नाम विशेष स्थान पाने के योग्य है। बेतिया में हिन्दी-प्रचार का बहुत कुछ श्रेय इन्हीं महाशय को प्राप्त है।

वर्तमान हिन्दी-लेखकों में फौजदार पं० देवीप्रसाद उपाध्याय जी, 'मानसविनोद' के लेखक पं० त्रिलोचन झा, पांडेय जगन्नाथ प्रसाद एवं बाबू हरिबंश सहाय बी० ए० का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने 'अमेरिका की स्वाधीनता का इतिहास' लिखकर सच-मुच में यहां पर स्वाधीनता की लगन लगा दी है।

सज्जनो! इस जिले की प्रधान भाषा गँवारी हिन्दी है जो शाहाबाद, छपरा और बलिया आदि जिलों में बोली जाती है। चम्पारण्य की भाषा बिहार प्रान्त के दो एक जिलों को छोड़ प्रायः सभी जिलों में सुगमता से समझी जाती है, पर उत्तर तराई जो

नैपाल राज्य से विशेष सम्बन्ध रखता है—वहां के थारुओं की भाषा एक विभिन्न भाषा है जिसको यहां वाले नहीं समझ सकते और न बोल सकते हैं। यह भाषा पहाड़ी लोगों की भाषा से विशेष सम्बन्ध रखती है। डाक्टर ग्रियर्सन साहब की राय है कि थारु-भाषा को नेवारियों की भाषा से सम्बन्ध विशेषतः है। कुछ दिनों से यहां के उत्तरीय भाग में धागड़ या उरांव जाति का निवास हुआ है ये लोग छोटा नागपुरादि स्थानों से बुला कर बसाये गये हैं। इनकी भाषा भी एक विचित्र ढंग की है जो हमलोग नहीं समझते।

हिन्दी-भाषा और साहित्य के विषय में मेरी यह अनधिकार चर्चा है। मैं अपनी ओर से कुछ राय नहीं देता, पर हिन्दी भाषा के एक लघु सेवक होने के नाते आपलोगों के सामने कुछ निवेदन कर देना उचित समझता हूँ। इस समय हमारे सामने सबसे महत्व का प्रश्न राष्ट्रभाषा का है। देश के नेताओं का ध्यान—राष्ट्रोन्नति के साथ साथ राष्ट्रभाषा विषयक प्रश्न की ओर भी आकर्षित हुआ है और बहुत से नेताओं ने हिन्दीभाषा को राष्ट्र-भाषा होने के योग्य बतलाया भी है। यह ठीक है कि देश की अधिक जनता हिन्दी बोलती और समझती है और इसे राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में है। पर हम देखते हैं कि इसके साहित्यविषयक अंगों में अभी बहुत कुछ अभाव सा है। राजनीतिशास्त्र, समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र तथा विज्ञानशास्त्रादि पर बहुत कम पुस्तकें लिखी गई हैं। इस अभाव की पूर्त्ति शीघ्र होनी चाहिये।

हमारे बहुत से ऐसे मित्र हैं जो लिखने या बोलने में संस्कृत या अरबी-फ़ारसी के क्लिष्ट शब्दों का व्यवहार करते हैं अथवा अङ्गरेज़ी के शब्दों को मिलाने में अपना पाण्डित्य समझते हैं

उनसे नम्र निवेदन है कि जिस भाषा को 'चन्द' ने जमाया, 'कबीर' ने लालन-पालन किया, भक्तशिरोमणि मीराबाई ने भक्ति का आभूषण पहिराया, 'नानक' और 'धर्मदास' ने ज्ञान का रास्ता सिखलाया, 'सूर' और 'रसखान' ने श्री कृष्ण भगवान के प्रेम रस में सराबोर किया, 'तुलसी' ने ज्ञान वैराग्य और भक्ति का पाठ पढ़ाया, 'रहीम' ने नीति सिखलाया, 'केशव' ने गम्भीरता, 'बिहारी' ने बिहार करना सिखलाया, 'भूषण' ने वीरता के आभूषणों से विभूषित किया, और भारतेन्दु बाबू 'हरिश्चन्द्र' ने आधुनिक रीति-नीति सिखला कर संसार के सामने लाकर के बतलाया कि जिस हिन्दी को लोगों ने बेकार कहकर छोड़ दिया था, वह हमारी भारतीय राष्ट्र-निर्माण का प्रधान अङ्ग होने वाली है। इसके द्वारा राष्ट्र-सङ्गठन का प्रश्न बहुत जल्द तय होने वाला है। अतः ऐसी उपयोगी भाषा के रूप को बिगाड़ने का व्यर्थ परिश्रम न करें, क्योंकि इससे साहित्य समाज और राष्ट्र का हित होने की विशेष सम्भावना है।

हिन्दी भाषा भाषियों के सामने अभी सब से महत्व का प्रश्न वर्णमाला सम्बन्धी है। बहुतों का मत है कि देवनागरी वर्णमाला में बहुत से अनावश्यक अक्षर हैं, ई, उ, ए, ओ के आकार में इन मात्राओं के योग से हो सकते हैं। अङ्गरेजी की शैली पर अक्षरों की संख्या घटाने की आवश्यकता है किन्तु हमारे जानते इससे लाभ विशेष नहीं। हाँ अक्षरों के आकार के विषय में जो पक्ष कहा जाता है कि ये आकार ताम्रपत्रादि के लिये विशेष उपयुक्त थे। लिखने के लिये अङ्गरेजी सा भिन्न लेख्य अक्षरों की कल्पना होनी चाहिये।

एक बात और कहकर मैं आसन ग्रहण करता हूं-वह यह है

कि हमारे यहां समालोचना का ढंग विचित्र प्रकार का है। मैं चाहता हूँ कि समालोचना हो पर व्यक्तिगत आक्षेप न होने पावें और न व्यर्थ के आक्रमणों से साहित्य का क्षेत्र भरा जावे। समालोचक का हृदय समालोचना करने के समय उदार और पवित्र भावों से भरा हुआ होना चाहिए। क्योंकि उसे अपनी भाषा को समाज के सामने रख कर उनकी मानसिक भावों पर बिजय पाना है।

श्रद्धा और भक्ति पूर्व्वक अन्त में फिर एक बार आप महानुभावों का सादर स्वागत करता हुआ—हम लोगों के नत्र निमंत्रण पर सम्मेलन में पधार कर चम्पारण निवासियों के उत्साह बढ़ाने के अनुग्रह पर विशेष रूप से कृतज्ञता पूर्व्वक धन्यबाद देता हुआ, तथा यहां आने और रहने में आप सज्जनों को जो कुछ कष्ट हुआ और होगा उनके लिये कर जोड़ कर क्षमा भिक्षा मांगता हुआ मैं प्रार्थना करता हूँ कि अब आप लोग कल्पना के भण्डार, सरस्वती के निवास स्थान, मौलिकता के उन्नायक, लालित्य और माधूर्य की मूर्ति, हिन्दी के नाथ सूर्य्यपुराधीश श्रीमान् राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह एम० ए०, अपने मनोनीत सभापति महोदय को हर्ष ध्वनि के साथ सभापति के आसन पर बिठाकर सम्मेलन का कार्य्य प्रारम्भ करें। मंगलमय भगवान हमलोगों के इस शुभ कार्य्य में सहायक होगा।



तृतीय विहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, सीतामढ़ी की स्वागत कारिणी समिति के अध्यक्ष बाबू राम बिलास ने इन शब्दों में स्वागत किया

माननीय प्रतिनिधिगण तथा उपस्थित सज्जनवृन्द !

आज मैं सर्व प्रथम उस जगन्नियन्ता जगदाधार जगत् पिता जगदीश को सादर कोटिशः वन्दना करता हुआ इस लिये धन्यवाद देता हूँ कि यह उसकी ही अगम और अपार कृपा का फल है कि हम लोगों को इतने सरस्वती-भक्तों, राष्ट्रभाषा प्रेमियों हिन्दी महारथियों, राष्ट्र के कर्णधारों और मातृभाषा-सेवकों के पुण्य दर्शन का ऐसा शुभ अवसर प्राप्त हुआ है।

पूज्य अतिथिगण ! मैं यह भलीभांति जानता हूँ कि हमलोगों से आप महानुभावों का कुछ भी स्वागत नहीं बन पड़ा, परन्तु इसके लिये हमें उतना दुःख नहीं है जितना कि होना चाहिए था। इस सीतामढ़ी के सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन पर एक तुच्छ दृष्टि डालने से ही यह बात स्पष्ट दिखलायी पड़ती है कि हम लोगों ने जो कुछ किया है वह बहुत कुछ नहीं तो थोड़ा अवश्य है। यद्यपि यह स्थान धर्म मय है तथापि इसके सामाजिक जीवन की प्रगति उन्नति शिखर की ओर न थी, इसके अतिरिक्त जो कुछ थी भी वह इस वर्तमान जीवन-सञ्चारी बवण्डर में ही विलीन हो गयी। इसमें, सन्देह नहीं कि इस महान हलचल ने निर्बलों को सबल बना डाला, सबलों की परीक्षा ले ली, सोये हुओं को जगाया, जगे हुए को सचेत कर दिया, गिरे हुए को उठा दिया और मृत शरीर में आत्मा का सञ्चार कर दिया। इसने भारतवर्ष

के गत वर्ष और इस वर्ष के अन्दर वह परिवर्तन कर दिया जिसका वर्णन देश के इतिहास में कई शताब्दियों के वृतान्त के समान प्रतीत होगा; परन्तु इसके साथ ही साथ इसने देश की सारी महती शक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है और इस झोंके से यह नगर भी नहीं बच सका । उसने यहां के सारे साहित्यिक और सार्वजनिक कार्य्य कर्त्ताओं को विमुग्ध कर अपनी ओर खींच लिया । वे लोग इसमें इस प्रकार तल्लीन हो गये कि उन्हें और सभी बातों की सुध बुध जाती रही । इसके अतिरिक्त आरम्भ ही काल से हमलोगों को इस कार्य में नाना प्रकार की विघ्न–बाधाओं तथा अड़चनों का सामना करना ही पड़ा । अब यह विचारणीय है कि उस समय जब कि कुटुम्ब-विशेष के सारे मुख्य मुख्य व्यक्ति किसी न्यायोचित युद्ध में जूझने की चेष्टा कर रहे हों, जब कि स्त्रियां तक अपने स्वहस्तों से अपने प्रिय पुत्रों को युद्ध के लिये आभूषित कर उन्हें दृढ़ प्रतिज्ञ बने रहने के आश्वासन दे रही हों । और स्वयं युद्ध की सामग्री संचय करने में सुख-दुःख की कुछ भी चिन्ता न कर अविरत परिश्रम कर रही हों, विशेष कर उस समय में जब कि पल पल में विपत्तियों के बादल मंडरा रहे हों और उस परिवार के एक एक कर सारे व्यक्ति उससे पृथक हो रहे हों, पद पद पर उसको कठिनाइयों तथा उलझनों का सामना करना पड़ता हो, यदि कोई अतिथि उसके यहां आने वाला हो तो उसके स्वागतार्थ वह सिवा इसके कि पुष्प, फल, तोय लेकर अतिथि के सम्मुख साञ्जलि उपस्थित हो और क्या कर सकता है ? सहृदय पुरुषो, आज सीतामढ़ी की वही अवस्था है । वर्तमान संग्राम में लड़ते लड़ते इसके कुछ वीर तो कारागार की कहानियों को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव कर रहे हैं और जो बचे खुचे हैं वे भी आजकल

के मेहमान हैं *। पूर्वी दशा में तो हमें कदापि भी यह आशा न थी कि हम लोग अपनी पूज्या मातृभाषा का प्रत्यक्ष तथा सजीव दर्शन इतने महान् धुरंधर साहित्य सेवियों के रूप में कर अपने भाग्य को सुफलित कर सकेंगे। यह उस कृपा-सागर की असीम अनुकम्पा ही थी कि बा० जानकी प्रसाद वर्मा सं० मंत्री स्वा० का० समिति ने निस्सहाय होते हुए भी अपने अनवरत परिश्रम से, अनेकों विघ्न बाधाओं को दलन करते हुए, इस शुभ अवसर को हम लोगों के सम्मुख उपस्थित कर आनन्दित किया है।

समवेत सज्जनो! यद्यपि यह नगर देखने में अत्यन्त छोटा है तथापि इसका प्राचीन गौरव इतना विशाल और विस्तृत है कि यदि उसका पूर्ण वर्णन किया जाय तो एक पृथक पुस्तक तैयार हो जाय। प्रथम यदि आप इस छोटे नगर की प्राकृतिक रचना पर ही दृष्टि डालें तो आपके नेत्र-कमल खिल उठेंगे। इसकी पूरब ओर तो लक्ष्मणा नदी नम्रता पूर्वक इसका चरण स्पर्श कर रही है, मानो भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण ने ही अपनी भ्रातृप्रिया श्रीमहारानी जानकीजी के चरण सरोरुह को नित्यप्रति पखारने का अपना कर्तव्य समझ कर यह स्वरूप धारण किया है—इसके किनारे के छोटे २ मन्दिर प्राचीन ऋषियों की पर्णकुटियों का स्मरण दिला रहे हैं। दूसरी ओर स्वयं श्रीजगज्जननी जानकी जी का विशाल गगनभेदी मन्दिर अपना शिखर उठाये संसार में इस बात की घोषणा कर रहा है कि पातिव्रत धर्म्म, शुद्धाचरण और कर्त्तव्यपालन में ही अमरता विराजती है। जहां अन्य नगरों में अरुणशिखा की ध्वनि शय्या त्याग का समय जताती है, वहां, यहां पर भगवदर्चना के लिये

* वह असहयोग का प्रलयंकर युग था। सम्पादक—

निनादित घण्टानाद ही हम लोगों को अपने परम पिता के प्रति कर्त्तव्यों को स्मरण कराता है। प्रातः काल से ही सदाचारी ब्राह्मण झुण्ड के झुण्ड महारानी की अभ्यर्थना के लिये आने लगते हैं, जिन्हें देख कर प्राचीन भारत का वैदिक काल स्मरण हो आता है। जगत शिरोमणि यह वही पवित्र स्थान है जिसने आदि शक्ति भगवती जगज्जननी, पवित्रता की साक्षात् मूर्त्ति, आदर्श-स्वरूपा, सती साध्वी महारानी सीता को उत्पन्न कर संसार को यह दर्शा दिया कि स्त्री आदर्श किस प्रकार का होना चाहिये। कुछ अन भिज्ञ मनुष्य सीतामढ़ी के समीप पुनौरा ग्राम को ही श्रीमहाराणी का जन्मस्थान बताते हैं। परन्तु शास्त्रों के प्रमाण से यह निर्विवाद सिद्ध है कि महारणी का जन्म स्थान हलेश्वरस्था (वैरिया) से दक्षिण, खगेश्वर स्थान (खड़का) से उत्तर पुण्डरीकाश्रम (पुनौरा) से पूरब और लक्ष्मण नदी से पच्छिम है। जनकपुर निवासी वैष्णव भूषण श्रीमत् परमहंस वैदेही शरण जी ने अपने मिथिला माहात्म्य नामक ग्रन्थ में भी उपर्युक्त सिद्धान्त का ही समर्थन किया है। इस प्रकार यहां श्रीजानकी जी का वर्त्तमान मन्दिर ही उनका जन्मस्थान सिद्ध है।

सज्जनवृन्द ! मैं आप लोगों को यह बात अवगत करा देना चाहता हूं कि यह स्थान वर्त्तमान समय से कुछ दिन पूर्व तपोभूमि था न कि नगर। सारास्थान सुरम्य और सघन बनसे अच्छादित था। बन पशु आनन्द से बिहार करते थे। लक्ष्मणा की धारा उसके बीचमें हो कर बहती थी और इसकी सुरम्यता को और भी सुरम्य बना रही थी। आज से ३०० वर्ष पूर्व्व एक महात्मा ने श्रीजगज्जननी महाराणी सीता की जन्मभूमि का अन्वेषण करते २ इस स्थान का पता लगाया और इस सघन जंगल के गर्भ में एक

प्राचीन मूर्ति देख उनकी अर्चना करने लग गये। उनके आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा दूर २ तक फैल गई। यहां तक कि उस समय के एक मुसलमान बादशाह ने आकर उनका दर्शन किया और उन्हें यह सारा जंगल कटवा कर नगर बसाने की आज्ञा दी। धीरे २ अट्टालिकाएँ बनने लगीं और यह स्थान भी महाराज जनक की राजधानी जनकपुर के तुल्य हो गया। नदी के किनारे होने को कारण यहां का व्यापार भी खूबही चमका। व्यापार की प्रसिद्धि के कारण स्थान भी प्रसिद्ध हो गया। और हिन्दू धर्म के प्राण आदि शक्ति के जन्म स्थान होने के कारण दूर दूर से दर्शक आकर इस पवित्र भूमिका दर्शन कर अपने को धन्य धन्य समझने लग गये। उसऋषिने यहां पर अतिथियों के स्वागत के लिये एक स्थान बनाया और स्थानीय वर्त्तमान महंथ श्रीमियाराम दास जी वैष्णव रत्न उन्हीं के अष्टम शिष्य होने के कारण उस स्थान के अध्यक्ष हैं। इस प्रकार आप सज्जनों को विदित हो चुका कि यह भूमि जितनी आध्यात्मिकता से सम्बन्ध रखती है उतनी ही सांसारिकता से भी।

यह तो हुई केवल सीतामढ़ी नगर की बात; परन्तु इसके अतिरिक्त भी इस प्रान्त के भीतर ऐसे बहुत से स्थान हैं जो अपनी प्राचीनता के कारण अत्यन्त गौरवान्वित हैं। यहां से दो मील दूर एक ग्राम पुनौरा है जो पुण्डरीक ऋषि का आश्रम कहा जाता है। इसी प्रकार यहां से एक मील दक्षिण एक ग्राम खड़का है जहां खड़गेश्वर तपस्या करते थे। हलेश्वर स्थान जहां से मिथिलेश ने हल जोतना आरम्भ किया था, वहां से समीप ही हैं। यहाँ प्रति वर्ष शिवरात्रि के दिन दूर दूर से यात्री दर्शनार्थ आया करते हैं।

यहां से १२ मील की दूरी पर देकुली एक स्थान है। वहां एक शिव-मन्दिर भी है। कहा जाता है इसी स्थान पर हस्तिनापुर की राजमहिषी द्रौपदी का स्वयंबर हुआ था, अर्जुन ने यहां ही पर मत्स्यवेध किया था।

कुछ लोगों का विश्वास है कि जिस समय महाराज दशरथ अपने पुत्र रामचन्द्र के विवाहोपरान्त श्री महारानी सीता जी को विदा कराये लिये जा रहे थे, उस समय उनकी सवारी एक पाकड़-वृक्ष के नीचे रखी गयी थी। कुछ दिनों के पश्चात् वहां एक ग्राम बस गया जो वर्त्तमान समय में पंथपाकड़ के नाम से विख्यात है। इस ग्राम में अभी तक वह विशाल पाकड़ वृक्ष मौजूद है।

इस प्रकार जिधर दृष्टि डालते हैं, इस प्रान्त का सम्बन्ध त्रेता युग के इतिहास से ही मिलता है। यद्यपि यह प्रान्त वर्त्तमान इतिहास के काव्य-काल से विशेष सम्बन्ध रखता है, परन्तु इसके साथ ही साथ इसका सम्बन्ध मुसलमानी राज्य से भी है। शिवहर तथा परसौनी के राज्यवंश इसी मुसलमानी राज्य से सम्बन्ध रखते है। इनका वर्णन सामयिक ग्रन्थों में किया गया है। अतः उनका पुनः वर्णन करना पिष्टपेषण करना होगा।

यह प्रान्त प्रथम नैपाल के राणा वंश के शासनाधीन था, परन्तु जब सन् १८१६ ई० में इस बृटिश सरकार से नैपाल को युद्ध ठन गया उस समय बृटिश सरकार ने इस पर विजय प्राप्त की। वर्त्तमान मेज़रगंज मेज़र नामक आंगल सेनापति के मृत्यु-स्थान होने के कारण उसी के नाम पर बसाया गया है और उसका झंडा अभीतक बीच शहर के मध्य फहराया करता है। वहां पर एक कब्रस्तान भी है जहां पर नैपाल युद्ध के मारे गये लगभग ९

योद्धाओं के स्मारक भी हैं। वहां प्रायः प्रत्येक नवागत अंग्रेज़ उन स्मारकों के दर्शन के निमित्त जाता है।

प्रिय सज्जनों! यद्यपि यह स्थान ऐतिहासिक दृष्टि से अति प्राचीन है, परन्तु शोक के साथ लिखना पड़ता है कि इसका सम्बन्ध हिन्दी से बहुत ही कम है। यहां तक इसकी दशा गिरी है कि नहीं के बराबर कहा जा सकता है। वर्त्तमान समय में भी इस स्थान पर हिन्दी की दशा गिरी हुई है। साहित्यप्रेमी सज्जन बहुत कम दिखलायी देते हैं। परन्तु कतिपय सेवक दृष्टि गोचर होते हैं। कुछ दिनों पहले भूली ग्राम निवासी बाबू गोविन्द प्रसाद जी ने "ज्ञान प्रकाश" नामक ग्रन्थ लिखा था। उन्हीं के पूर्वजों में से किसी ने अलिफनामा नामक एक हिन्दी-पद्य-पुस्तक की रचना की थी जिसका प्रत्येक वाक्य उर्दू के एक एक अक्षर से प्रारम्भ होता है। इसके अतिरिक्त रांगा ग्राम निवासी बाबू नवरंगी सिंह ने भी एक नवीन प्रणाली से सुख-सागर लिखकर हिन्दी की सेवा की थी।

वर्त्तमान लेखकों में पकड़ी गाम निवासी बाबू राजकिशोर नारायण सिंह का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। आपने ओंकार निर्णय और पद्म-पुराण की समालोचना नामक दो धार्मिक पुस्तकें लिखी हैं। बाबू जानकी प्रसाद वर्मा और बाबू बच्चू प्रसाद वैद्यराज ने भी कई छोटी बड़ी पुस्तकें लिखी हैं। बाबू जानकीप्रसाद वर्मा ने मेरा कर्त्तव्य और राष्ट्रीय ढंग से शिक्षा नामक दो पुस्तिकायें लिखी हैं। जिनमें प्रथम तो मौलिक और दूसरी स्वामी विवेकानन्द के भाषण का अनुवाद है। बाबू बच्चूप्रसाद ने वैद्यक के ऊपर एक उत्तम ग्रन्थ लिखा है। बाबू लक्ष्मीप्रसाद सिंह सुन्दर

पुर निवासी ने चर्खे के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है जो अभी छपी नहीं है। वर्त्तमान समय में स्थानीय राष्ट्रीय विद्यालय के योग्य पण्डित उपेन्द्रमिश्र जी के अतिरिक्त और किसी कवि का नाम नहीं लिया जा सकता। हमें तो विश्वास है कि पंडित जी एक अच्छे कवि और सिद्धहस्त लेखक हैं आपने अभी इस नवावस्था में ही दो काव्य-पुस्तकें और एक नाटक लिखा है जिनके नाम क्रमशः 'कविताकदम्ब' 'राष्ट्रीयगीतगुच्छ' और 'धनञ्जय-मान-मर्दन' हैं। ये पुस्तकें अभी छपी नहीं है।

यद्यपि यह स्थान साहित्य सेवा में बिहार के अन्याय कई जिलों से पीछे है तथापि प्रेम और श्रद्धा में वह किसी से कम नहीं है। यह उसकी मातृभाषा की श्रद्धा और भक्ति ही थी कि आज इसने सैकड़ों विघ्नबाधाओं को झेलते हुए भी इस सम्मेलन रूपी महारथ को आमन्त्रित कर साहित्य सुधा की अपूर्व आनन्दमयी धारा बहायी है।

साहित्य प्रेमियो! यद्यपि यह स्थान मिथिलाप्रान्त के अन्तर्गत है; परन्तु इसकी भाषा मैथिल भाषा नहीं है। इसकी बोली छपरे और दरभंगे की मिश्रित बोली है। यह भाषा विहार के लगभग सभी जिलों में सुगमता से समझी जाती है। इस स्थान के नैपाल राज्य के समीप रहते हुए भी यहां की भाषा पर नैपाली भाषा की छाया नहीं पड़ी है। यहां के निवासी न तो वह भाषा बोलही सकते हैं, न समझही। हां, नैपाल राज्य के अत्यन्त निकट रहने वाले कुछ बोल समझ लेते हैं। महाशयो, मैं कोई भाषाविज्ञ नहीं, केवल मातृभाषा प्रेमी होने के कारण भाषा सम्बन्धी किसी विषय की विवेचना करना अनधिकार चेष्टा समझता हूँ। पर हाँ, इतना तो अवश्य कर सकता हूँ कि अपनी क्षुद्र बुद्धि के अनुसार इसकी

कुछ आवश्यकताओं को आप के सम्मुख रख कर आप से प्रार्थना करूं कि कृपाकर आप लोग ऐसा भगीरथ प्रयत्न करें कि हमलोगों की यह मातृभाषा अपनी जननी संस्कृत के समान कोषवाली बन कर संसार के प्रायः सभी अभिमान करने वाली भाषाओं से स्पर्द्धा करने लग जाय।

मेरे ऐसा कहने का यह मन्तव्य कदापि नहीं है कि इसमें संस्कृतके शब्दों की भरमार कर दी जाय। परन्तु मेरी अभिलाषा है कि हमारी मातृभाषा जिसे आज सारा भारतवर्ष अपनी राष्ट्रभाषा बना रहा है और जिसको सभी प्रान्त के निवासी बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के स्वीकार कर रहे हैं, साहित्य की दृष्टि से अभी कई अङ्गों से हीन है। उन्हें सम्पूर्ण बनाना आप महानुभावों का कर्त्तव्य है।

जो भाषा आज राष्ट्रभाषा बनने जा रही है उसमें राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, शिल्प, विज्ञान तथा कृषि आदि पर बहुत कम पुस्तकें लिखी गई हैं। इस अभाव की पूर्ति शीघ्र होनी चाहिए। यह आनन्द का विषय है कि आधुनिक राष्ट्रीय विद्यालयों और पाठशालाओं में शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही रखी गई है जिसके लिये वर्त्तमान आन्दोलकों को धन्यवाद है। अवश्यही इस से मातृभाषा के कई अङ्गों की पूर्त्ति होगी।

इसके अतिरिक्त पटना यूनिवर्सिटी ने भी बिहार के कर्णधार बा० राजेन्द्र प्रसादजी के कठिन परिश्रम के कारण शिक्षा का माध्यम हिन्दी बनाना स्वीकार किया है, पर शोक के साथ कहना पड़ता है कि उसने उसे अभी तक कार्य्यरूप में परिणत नहीं किया। हमें चाहिए कि हम शीघ्र उसे आगामी वर्ष से ही इस पवित्र कार्य्य को आरम्भ कर देने के लिये विवश करें।

राष्ट्र की उन्नति के साथ साथ राष्ट्रभाषा की भी उन्नति होनी चाहिए। बिना राष्ट्रभाषा की उन्नति के राष्ट्र की उन्नति हो नहीं सकती। यदि राष्ट्र के अन्दर भिन्न २ भावों की काफी पुस्तकें हैं, यदि राष्ट्र का इतिहास राष्ट्रभाषा में लिखा गया है, यदि उसके बच्चे राष्ट्र के सच्चे और उच्च भावों से अवगत कराये जाते हैं तो इसमें सन्देह नहीं कि वह राष्ट्र अवश्य उन्नति-शिखर पर चढ़ जायगा, परन्तु यदि ऐसा न होकर इसके प्रतिकूल जिस देश का इतिहास विदेशी भाषा में लिखा गया हो, जिसके बच्चे अपनी मातृभाषा द्वारा नहीं, बरन् अन्य विदेशीय महाक्लिष्ट भाषा द्वारा शिक्षित किये जाते हों और उस शिक्षा पर भी विदेशीय शासन का नियंत्रण हो, जहां की पाठ्यपुस्तकें विदेशियों के द्वारा लिखी गई हों, जहां के बच्चे बाल्यावस्था से ही विदेशी भाषा के द्वारा शिक्षित किये जाते हों, जहां के विद्यालयों और महाविद्यालयों में भाषा की शिक्षा कोई शिक्षाही नहीं समझी जाती हो, भला वहाँ की राष्ट्रभाषा क्या उन्नति कर सकती है और जब राष्ट्रभाषा की उन्नति नहीं तो राष्ट्र क्योंकर अग्रसर बन सकता है ?

साहित्य का क्षेत्र इतना विस्तृत तथा महान् है कि इस में धार्म्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य सभी बातें समुचित रूप से आजाती हैं। यदि राष्ट्र राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा न करे और किसी अन्य भाषा द्वारा अपना प्रत्येक कार्य्य करे तो यह ध्रुव है कि राष्ट्रभाषा का साहित्य कई अङ्गों से हीन हो जाता हैं। भारत वर्ष की यही अवस्था हैं। इसका अधिकांश राजकाज विदेशी भाषा में होता है। देश का नियम (कानून) विदेशी भाषा में हैं, न्याया-लय का काम विदेशी भाषा में होता है और सबसे अधिक हानि-कारक तो यह है कि उच्च शिक्षा भी विदेशी भाषा द्वारा ही दी जाती

है। इसमें देश को वह क्षति पहुंचाई गई है जिसकी पूर्त्ति बिना हमारे पूर्ण प्रायश्चित किये न होगी। उपर्युक्त संस्थाओं का नियंत्रण जबतक हमारे राष्ट्र के हाथ में न आयेगा तब तक राष्ट्रभाषा को वहां नहीं पहुंचा सकने और जब तक वह वहां नहीं विराजती तब तक उसके उन कतिपय हीन अंगों की पूर्त्ति नहीं हो सकती।

हमारी राजनैतिक महासभा, जिसका यथार्थ नाम अखिल भारतवर्षीय महासभा है, आज राष्ट्रभाषा हिन्दी के द्वारा एक ही आध वर्ष में वह सफलता प्राप्त कर रही है जो आज अनेक वर्षों से बिदेशी भाषा द्वारा नहीं कर सकी थी। देश की जागृति के महान् कारणों में से मुख्य कारण यही है कि इसने मातृभाषा द्वारा भारत की तीस कोटि सन्तानों को उनकी आसन्न विपत्तियों की सूचना दी है। निस्सन्देह इसने राष्ट्रभाषा की बड़ी ही प्रतिष्ठा की है और अन्य लाभों के पहुंचाने का श्रेय हमारे प्रातःस्मरणीय परम पूज्य नेता महात्मा गांधी को है। इसी प्रकार इस राष्ट्र भाषा की उन्नति के मार्ग को कण्टक हीन बनाने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। अवश्य वे हमारी मातृ-भाषा के सच्चे भक्त हैं, अतः उसके शुभाशीर्वाद के भागी भी हैं।

प्रिय सज्जनो! मैं इस विषय में बहुत दूर आगे बढ़ गया। अनधिकार चर्चा होने के कारण संभवतः यह बिल्कुल निरर्थक हो है; परन्तु अन्त में मैं आप सज्जनों से यही प्रार्थना करूंगा कि जब तक हम अपनी मातृभाषा की उन्नति न करेंगे, जब तक अपनी मातृभाषा के साहित्य को सब प्रकार से सुन्दर और सम्पूर्ण नहीं बनावेंगे, जब तक अपनी भाषा के द्वारा आधुनिक सभ्यता का संदेश जनता को न सुनावेंगे, जब तक मातृभाषा का नगाड़ा सोई हुई भारत सन्तान के आगे नहीं पीटेंगे, जब तक इसके लिये हम

अपना तन मन धन न्यौछावर करने को कटिबद्ध न होंगे, जब तक राष्ट्रभाषा के उच्च राज्य सिंहासन पर अपनी जननी मातृभाषा की सुन्दरललाम मूर्त्ति न बिठलायेंगे तब तक मुट्ठी भर देश सेवक भारत के परित्राण करने में समर्थ हों, यह सम्भव नहीं।

उपस्थित महानुभावो! पुनः एकबार हम आप लोगों का श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के साथ स्वागत करते हैं। आप के दर्शन से हमें जो आनन्द मिल रहा है इसका वर्णन वाणी द्वारा नहीं हो सकता। आप लोगों ने हमारे नम्र निवेदन को स्वीकार कर इस प्रान्त का मुखोज्ज्वल किया है और यहां के मातृभाषा-प्रेम को घनिष्ट बनाने के कारण हुए हैं। उसके लिये सादर धन्यवाद देते हुए और हम क्षुद्र व्यक्तियों से आप के स्वागत में जो त्रुटि हुई है और होगी उसके लिये क्षमा-प्रार्थना करते हुए आज के महायज्ञ के लिये साहित्य महारथी मातृभाषा के अनन्य भक्त और साहित्य के अगाध विद्वान्, मौलिकता के उन्नायक और जीवनचरित्र के सिद्ध लेखक आरानिवासी वयोवृद्ध श्रीयुत बाबू शिवनन्दन सहायजी को आचार्य बनाने के हेतु उपस्थित करते हुए आशा करते हैं कि कार्य्य प्रारम्भ करेंगे। आदिशक्ति भगवती महारानी सीता आपकी सहायता करें।



चतुर्थ बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, छपरा की स्वागत-समिति के अध्यक्ष बाबू लक्ष्मी-प्रसादजी ने इन शब्दों में स्वागत किया—

प्रिय पूज्य गुरुजनो और भ्रातृगण !

गुरुजनो को साञ्जलि अभिवादन करता हुआ, मातृभाषा के प्रेमियों तथा सहकारी बंधुओं को आगन्तुक सज्जनों के आलिंगन का साग्रह भार देता हुआ मैं आपका स्वागत करता हूँ। केवल अपनी ओर से नहीं परन्तु समस्त सारन प्रान्त के निवासियों की ओर से। स्वागत तो अवश्य हृदय से करता हूं पर अत्यन्त भीरु और त्रस्त भी हो रहा हूँ। क्या आप जैसे संस्कृतवेत्ता, निपुण विद्वानों को निमन्त्रित करना सहज काम था ? हम अपनी ढिठाई पर आप ही विमूढ़ हो रहे हैं। जब कि मैं सोनपुर इत्यादि बड़े २ नगरों में आपके स्वागत सत्कार की कथा सुनता हूँ, और जिन्हें मैंने आंखों से देखा भी है, तो छपरे जैसी जगह की क्या शक्ति थी जो आपको यों कष्ट देने का साहस करती। मूल कारण यह था कि सारन प्रान्त में हिन्दी साहित्य के प्रेम पैदा करने की आवश्यकता थी और नवयुवक अंगरेजी के विद्वानों में इसकी ओर प्रेम का सम्पूर्ण अभाव था। आप महानुभावों के यथार्थ और वास्तविक स्वागत में जो त्रुटियां हुई हैं और होंगी उसका मूल कारण यही है। जो मैं यह कहूँ कि स्वागत की सामग्रियां यहां यथेष्ट नहीं मिल सकीं, और मुझमें श्रद्धा, भक्ति किसी से और कहीं से कम नहीं है तो केवल कथनमात्र से आपकी यथोचित परितुष्टि नहीं होगी। आप भले ही सौजन्य निर्वाह के हेतु चुप रहें, कुछ न बोलें, पर मुझे तो छूछा सम्मान बहुत अखरता है।

साहित्य सम्मेलन—एक विलक्षण अनुष्ठान को आप अपने कमलचरण से पवित्र करने के लिये पधारे हैं उसका सम्मान केवल सरल भोजनोत्सव से ही नहीं हो सकता, इसी प्रकार शबरी के कन्द, मूल तथा सुदामा के तण्डुल से भी हमारे प्रिय, दक्ष और विवेकी अतिथि सन्तुष्ट नहीं हो सकते। आप जैसे बुद्धिमानों के सामने हमारी बकवृत्तियां चल नहीं सकतीं। जिस पदार्थ से आपका यथोचित और विशिष्ट रीति से स्वागत होता वह—खेद से कहना पड़ता है—हमको प्राप्त नहीं है। यदि हम पुष्पहारों की जगह कोई सुन्दर प्राकृतिक विज्ञान की ग्रन्थमाला आपके गले दे देते, यदि हम मेवे को जगह चिकित्सा शास्त्र की पुस्तकें आपकी भेंट करते, यदि हम पेड़े लड्डुओं का प्याला हटाकर किसी नूतन कालीन भूगोल से आपका सत्कार करते, यदि हम स्वागत के गीत न गाकर किसी उत्तम संगीतशास्त्र से आपका विनोदन करते, यदि हम अनुवादित नाटकों को न खेलकर किसी स्थानीय सुबोध मौलिक नाटक का अभिनय कर दिखाते, यदि हम हवागाड़ी न ले जाकर आपको ऐसे रथ पर उतार लाते जिसमें विज्ञानचक्र के पहिये लगे होते, विद्युत के घोड़े जुते होते, धनुर्वेदाचार्य्य अर्जुन जैसे सारथी होते, जो मात करते पवन को, यदि हम इन मंत्रों पर आसनस्थ करके शिल्प और कला के कोमल पत्रों पर आपकी प्रतिष्ठा करते, तो निस्सन्देह आप महानुभावों का उचित स्वागत होता। हमलोग बिहारी हैं और आर्य्य सन्तान होने का अभिमान भी रखते हैं। पण्डित गणेशदत्त शास्त्री ने आर्य्य शब्द का अर्थ यों किया है कि, "जो कर्त्तव्य करे, अकर्त्तव्य कभी न करे और यथार्थ आचार में ही रहे वही आर्य्य है।"—आपका उपरोक्त रीति से स्वागत नहीं हो सकता तो हमलोग व्यर्थ आर्य्य—सन्तान बनने

का अभिमान रखते हैं। आर्यों का प्रधान कर्त्तव्य स्वदेशभक्ति ही होता आया है। महर्षियों ने अपनी सन्तानों के उपकारार्थ घोर तपस्या करके महाहितकारी ग्रन्थों की रचना की थी। मातृभाषा की सेवा उनका मुख्य धर्म्म था। जो हम बिहारी मातृभाषा की हितैषिता से मंदादर और प्रमत्त रह गये तो हम से आप विद्वानों का स्वागत सर्वथा असम्भव है।

सामान्यतः बिहारी जनता जिसमें हमलोग हैं विद्याहीन नहीं होती; एक प्रकार की विद्या इनको अवश्य प्राप्त है। वह विद्या महा उपयोगिनी और लाभदायिनी है। सरकार की कृपा से सर्वव्यापी हो रही है। हम बिहारी उसके सद्गुणों के भागी नहीं होते और न उसका यश ही लूटना चाहते हैं? इस विद्या के विशिष्ट पदों पर रहकर और स्वार्थपरता पर ही ध्यान रखकर इसके जितने अव-गुण और विकार हैं, उसीको ग्रहण कर लेते हैं। इस विद्या का पहले ही अमंगल प्रभाव यह पड़ जाता है कि माता पिता और गुरुजनों का इसके विद्यार्थी शीघ्र ही अनादर कर बैठते हैं, उनको मूर्ख कहने लग जाते हैं। हम बिहारियों ने इसी में अधिकतर शिक्षा पाई है तो आप जैसे अर्चनीय श्रेष्ठजनों का स्वागत ममता और उत्साह के साथ होना असंगत सा दीख पड़ता है। स्वदेश हित को कभी न भूलना और मातृभाषा का भण्डार संसार के रत्नों से भरते रहना, जिस अवस्था में रहो उसी पर दृष्टि बनी रहे, यही अंगरेजी विद्या का नवोपदेश है। हम बिहारियों ने कभी इस शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया और न इसको व्यवहृत ही किया और न इसका कभी साधन किया। ऐसी अवस्था में हम किस मुंह से आप देश हितैषियों का स्वागत करें समझ में नहीं आता। भाइयों ने मुझे जब इस महती समिति का सभापति चुन लिया उस समय

मैंने सहर्ष, पर बिना बिचारे स्वीकार कर लिया, किन्तु जब मैंने अपने अध्यात्मिक असामर्थ्य को देखा और अपनी दुर्बलता तौली तो कम्पित हो गया। पर अब करना क्या है ? जो भागता हूँ तो अपने भाइयों की अप्रसन्नता का कारण बनता हूं, और डटा रहता हूं तो यह वृथा अभिमान होता है। अब जो हो सो हो, मैं अपनी टूटी-फूटी भाषा में आप सज्जनों का हृदय से स्वागत करता हूँ। आशा है कि आप श्रीमान् इस विनीति सेवा को अपने स्वाभाविक औदार्य्य से अंगीकार करेंगे।

हिन्दी साहित्य की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपना सिद्धान्त व्यवस्थित कर लिया है और करते जाते हैं। इसमें उनका परिश्रम उनकी युक्तियां और उनके गहरे अन्वेषण बहुत उपयोगी और प्रशंसनीय हैं। इस विषय में मुझको वस्तुतः उनसे कोई मतभेद नहीं है। वर्णस्थापन में किसीको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, व 'माला इसकी स्वतः परिपूर्ण है। इसीसे संस्कृत की बड़ी बेटी कही जाती है। शब्दगत व्युत्पत्ति की खोज बहुत ही कठिन है। हिन्दी में अनेक भाषाओं का मिश्रण होने के कारण उन भाषाओं की पूरी जानकारी आवश्यक है। शब्दसागर हिन्दी कोष इसका प्रयत्न बड़े पाण्डित्य के साथ कर रहा है। इस अपूर्व काम का यह अग्रयायी है। दूसरे प्रकाशन में उसके उपयोगी संयोजन की सम्भावना है। हिन्दी शब्दों की पवित्रता वह नहीं रही जो संस्कृत की थी।

समय की वक्रगति से इस पर अनेक भाषाओं का आक्रमण होता चला आता है, इस लिए निर्म्मलता इसकी क्रमशः घटती आई है। प्राकृत तक का बिगाड़ अपकारी नहीं था, वह तो संस्कृत की गवांरू बोली थी। इसने भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न

रूप धारण कर लिए थे और प्रत्येक का पृथक पृथक नामकरण संस्कार भी होता आया। जब अरबी फारसी तुर्की की विजय-पराजय भारतवर्ष में होने लगी तो हिन्दी साहित्य की स्थूलता, अखण्डता, शुचिता, अतएव निर्म्मलता शनैः शनैः जाती रही, हिन्दी साहित्य में विप्लव जैसा हो आया। शब्दों के उच्चारण और प्रयोग में घोर उपद्रव का दृश्य आ खड़ा हुआ। सुअवसर पाकर इस हबडब में अंगरेजी घुसने लगी। अरबी, फारसी, तुर्की के प्रवेश का समय निकल गया। अब अंगरेजी शब्दों की बारी है। इस असंगत संसर्ग से हिन्दी का सौन्दर्य बिगड़ता जाता है, बोलचाल भी कुछ टेढ़ी सी होती जाती है, सदाचार में भिन्नता, मनोवृत्ति में अहङ्कार और चालचलन में भ्रष्टता आ जाती है, शब्द संग्रह तथा शब्द संघटन की शक्ति घट जाती है। अंगरेजी भाषा से मुझको प्रेम है। इसके सुलेखक और कवियों से मैंने बहुत कुछ लाभ उठाया है, पर अपनी भाषा का वर्णाश्रम-नाशक होना मैं नहीं चाहता। फारसी शब्दों के मिल जाने से यह दोष नहीं लगता, क्योंकि फ़ारसी के शब्द प्रायः संस्कृत से निकले हैं और यह भी कारण है कि सात सौ वर्षों के सहजीवन से दोनों हिन्दुस्तानी हो गए हैं। दोनों के सुख दुःख भी समासक्त हो रहे हैं। दो सौ बरस हिन्दुस्तान में अंगरेजी शब्दों का प्रवेश न होने पर भी ये विमुक्त रहते हैं। अंगरेजी हमारे शासकों की भाषा है, हम प्रजाओं को अधिकार नहीं है कि इसके शब्दों को घरेलू बनावें। अंगरेजी का ज्ञान रखना हमारे लिए अनिवार्य है, पर लेश मात्र। काम से हटे और पेटी उतारी। इस पेटी को घर पर धारण कोई भी नहीं करता। गृहजात सम्भाषणों में अंगरेजी शब्दों का प्रयोग अपराध है। अतः हिन्दी शब्दों की व्युत्पत्ति गूढ़ और कठिन हो गई है।

इसमें हताश होना नहीं पड़ेगा कितने वज्रंगबली अशोक वाटिका का पता लगाने के लिए उत्पन्न हो चुके हैं।

हिन्दी वाक्य रचना पर भी विद्वानों ने बहुत बिचार किया है। इस पर जोड़ तोड़ लगाना मेरी अल्पशक्ति के बाहर है। यत्न भी करूं तो पुनरुक्ति होगी, पर यह सम्मेलन हिन्दी साहित्य का है; इसमें अपनी अटपट बुद्धि के अनुसार कुछ कह देना मेरे लिए मङ्गलकारी है। यद्यपि मेरा कथन आप गुरुजनों के सामने अस्फुट बाल किलकिलारव मात्र होगा। सब पर विदित है कि हिन्दी की वाक्यशैली वाग्व्यवहार में नित्य परिवर्तित होती आयी है। जो भाषा चन्दवरदाई की थी वह सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास की नहीं रही, जो इनकी थी वह स्वामी दयानन्द और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की नहीं रही, जो इन ग्रन्थकारों की थी वह पत्र-सम्पादकों और प्रचलित लेखकों की सामान्यतः नहीं है। जो आज है वह भविष्य में नहीं रहेगी। सम्भव है प्रचलित भाषा उत्तर कालीन ग्रन्थकारों के सामने वरदाई की भाषा जैसी समझी जाय। समय के पर्यटन में शब्दार्थ विपर्यन भी होता है। और वाक्य-परिपाटी में उलट फेर भी हुआ करता है। किसी देशविशेष में राजनीतिक अवस्था में विद्रोह के साथ वाक्य-प्रणाली में भी क्रमभंग हो जाता है। कहा जाता है कि भाषा में परिवर्तन प्रथम राजधानियों से ही प्रारम्भ होता है। वहीं से नवीन वाक्य रचनाएं अन्तरस्थ प्रान्तों में भी फैल जाती हैं। एक हिन्दी नेता ने लिखा है कि हिन्दी भाषा में विदेशीय शब्दों का प्रवेश तथा नवीन वाक्य-क्रम का प्रयोग पहले तुर्की सेना और पलटनों में हुआ है। उपरोक्त बातों से मेरा तात्पर्य्य यह कहने का है कि हिन्दी भाषा अभी तक स्थिर नहीं हुई है, संक्रान्ति की अवस्था में है। जो दशा

अंगरेजी भाषा की आठवें हेनरी से लेकर महारानी एलिजाबेथ तक थी वही दशा आज हिन्दी भाषा की बीत रही है। उक्त महारानी के समय में तो प्रचलित अंगरेजी की नींव पड़ गई। प्रचलित हिन्दी का अभी तक किसी शेक्सपियर, मिल्टन, बेकन का प्रादुर्भाव नहीं हुआ है। हिन्दी में जब तक उस महत्व और पद के मौलिक लेख नहीं निकलेंगे भाषा दृढ़वद्ध रूप में स्थापित नहीं होगी। स्वभावतः पद्यात्मक भाषा गद्यात्मक से अधिकतर मधुर और रुचिर हुआ करती है और सहज से कण्ठस्थ करने योग्य होती है। मनोरंजक कविताओं के प्रभावबल से भाषा पुष्ट होकर चिरञ्जीवी बनी रहती है। जिनको कविता करने का अभ्यास तथा शक्ति नहीं होती वह पद्यमय वाक्यों से सहायता लेकर गद्य रचना करते हैं और उनके गद्य लेख भी मनोहर पठन योग्य हो जाते हैं। सरस पद्य, उद्दीपक पर हृदयंगम काव्य, गम्भीर उद्देश परिपूरित तथा उच्च चिन्ताशील मनोरथ सम्पन्न नाटकों से भाषा चिरस्थायी होती है। हास्यकर विनोदी, प्रेमशील तथा शृंगार–प्रिय ललित कविताओं से साहित्य को कम सहायता नहीं पहुंचती। प्रचलित हिन्दी साहित्य को उपरोक्त गुणों की प्रतिष्ठा अभी तक प्राप्त नहीं है। साहित्य सागर मणियों की खान है। इस रत्नाकर के लिए सहनशील डूबने वाला और चतुर मणिमार चाहिए। अब देखना है कि हिन्दी साहित्य के प्रेमियों और भक्तों में से किसको शेक्सपियर और मिल्टन का सौभाग्य प्राप्त होता है। हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। हिन्दी की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी होती जा रही है। समय भी बहुत मंगलकारी निकट आ रहा है। सम्भव है कि वर्त्तमान काल में ही अथवा समीपस्थ अनागत में मौलिक स्वच्छन्द स्वाधीन ग्रन्थकार निकल पड़ें, जिनके लेख दूसरों के लिए आदर्श

हो जायं। मौलिक लेख और अनुवाद में बहुत भेद है। एक निज कल्पना से निकलता है और अनुवाद दूसरों की भावना दर्शाता है। एक से कल्पना शक्ति बढ़ती है, दूसरे से स्वाधीनता का लोप हो जाता है। मौलिक लेख सरस और बोधगम्य होते हैं। अनुवाद कठोर और रूखे हुआ करते हैं। कारण यह दीख पड़ता है कि व्यवहृत वाक्य, चुटकुले और दृष्टकूटों के भाषान्तर नीरस और प्रायः निरर्थक हुआ करते हैं। अन्य भाषा की चापल्यता, लावण्यता दूसरी भाषा में लाना असाध्य होता है। विदेशी ग्रन्थकारों का अनुसन्धान अपनी भाषा में समझा देना यही अनुवाद का प्रयोजन है। इससे सार्वलौकिक ज्ञान अवश्य बढ़ता है, पर वाक्य पद्धति की, मेरी समझ में वास्तविक उन्नति नहीं होती। मैं अनुवाद करना रोकता नहीं और न मैं छोटी छोटी पुस्तकें विज्ञान सम्बन्धी लिखे जाने का विरोधी हूं जिससे साधारण ज्ञान अनेक विषयों का हो जाता है; पर इससे कोई पण्डित नहीं हो सकता। उत्तम बात यह होती कि प्रत्येक विषय में यथासम्भव शास्त्र निरूपण रूप के ग्रन्थ स्वतन्त्र लिखे जायं। ऐसे ग्रन्थ मौलिक और सम्पूर्ण तो अवश्य होंगे, साथ ही साथ उनसे पर्याप्त ज्ञान भी उपलब्ध होगा।

यदि हिन्दी छन्दों के विषय में कुछ विचार किया जाय तो अनुचित नहीं होगा। छन्दों के निबन्धन में इन दिनों मत भेद भी है। छन्द को संगीत के साथ गाढ़ी मित्रता है। छन्दों की रचना मात्राओं के साथ होती है, गीत भी निबद्ध मात्राओं में गाए जाते हैं, जिसको ताल तथा लय कहते हैं। जो गीत सूरदास और तुलसीदास के समय में रचे और गाये जाते थे उनके छन्दों में बहुत कुछ परिवर्त्तन होता आया है। इस्लामी राज्य में नए नए छन्द

गढ़े गए जिसमें प्रायः फारसी के पिंगल से सहायता ली गई। वे गीत पहले उर्दू भाषा में ही रचे जाते थे जिसको ग़ज़ल कहते हैं। थोड़े दिनों से यह चाल निकली कि हिन्दी गीत गज़लबद्ध करके रचे और गाये जाने लगे। कतिपय हिन्दी भाषा के नेताओं ने इस पर कटाक्ष किया है; पर मैं इसमें कोई आपत्ति नहीं देखता। छन्द रचना अपनी अभिरुचि की बात है। छन्द रचयिता बहुत से ऐसे हैं जिनको हिन्दी के पुराने छन्दों में कम स्वाद है. बहुतेरे ऐसे भी हैं जिन्हे प्राचीन छन्द मनोरम और रुचिकर होते हैं। नई चाल का यह भी कारण हो सकता है कि रचयिता भगण-भगण के झमेले से बचा रहता है। इस नवीन निबन्धन से हिन्दी के पुराने छन्द लोप नहीं हो सकते। यह भय निर्मूल है। कारण यह है कि जितने ऊंचे राग रागनियों के छन्द हैं उनकी रचना हिन्दी छन्दों में ही होती आई है। फ़ारसी उर्दू में रागों के तुल्यार्थ शब्द पाए नहीं जाते। फ़ारसी उर्दू ही में क्यों. किसी दूसरी भाषा में सुने नहीं जाते। इसमें केवल हिन्दी का ही एकाधिकार दीख पड़ता है। ग़ज़लों में कोई विशिष्ट राग न रचे जाते और न गाये जाते हैं। प्राचीन मुसलमान संगीत पारायण हिन्दी छन्दों में ही रागों की रचना करते पाए जाते हैं। प्रचलित गज़लबद्ध छन्दों में छोटी छोटी धुन के गीत रचे और गाये जाते हैं। उर्दू के छन्दों ने हिन्दी छन्दों का भाण्डार बढ़ा दिया है। कुछ दूषित और भ्रष्ट नहीं किया है। अतः उर्दू छन्द ग्राह्य हैं। मेरी समझ में उनका निरादर करना अयोग्य है।

अरबी फ़ारसी के शब्दों के प्रयोग में भी बड़ा विबाद है। पर मुझे यह झगड़ा भी रसात्मक और व्यर्थ ही दीखता है। यह भी व्यक्तिगत लेखक की विद्वता और शाब्दिक सामर्थ्य पर निर्भर है।

कथा कहानी उपन्यास में भले ही अरबी फ़ारसी शब्दों का प्रयोग हुआ करे, परन्तु गुरुतर और उत्कृष्ट विषयों के प्रबंध में बिना संस्कृत शब्दों की सहायता के काम नहीं निकलता है। प्रधानतः विज्ञान शास्त्र की रचना में उर्दू हिन्दी शब्दों का सम्पूर्ण अभाव रहता है। संस्कृत शब्दों का व्यवहार प्रायः अविच्छित और अनिवार्य रहता है। इनका उपयोग सर्वदा साङ्कल्पिक नहीं होता। कदाचित् यों कोई अपना पाण्डित्य कौतुक दर्शाने के लिए ऐसा करता हो, पर सामान्यतः यह अपरिहार्य है। हिन्दी भाषा के विभूषक को सदा करछेपन और वाक्यदुत्व पर ध्यान रखना होता है। भाषा को प्रशस्त और सभ्य बनाने के लिए भी संस्कृत शब्दों की आवश्यकता होती है। भाषा गूढ़ार्थ हो पर कष्टज्ञेय न हो, उदात्त और प्रौढ़ हो, पर क्लिष्ट न हो, मर्यादा वर्धक हो, पर भारभूत न हो। इस अर्थ के लिए भी बिना संस्कृत शब्दों के सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। अतः मैं संस्कृत शब्दों के यथोचित प्रयोग में बड़ी आपत्ति नहीं देखता।

पत्र–पुस्तकादि के समालोचक वृन्द के लिए भी मेरा थोड़ा विनीत सन्देश है। कृपया उसको भी सुन लेने का कष्ट उठा लीजिए। मैं तो प्रथम से ही ढिठाई आपकी क्षमा शीलता के भरोसे पर करता आता हूँ। समालोचक समूह गुण दोषज्ञ होते हैं। महाविद्वान अक्षदर्शक निर्णयकार समदर्शी अपक्षपाती होते हैं। अनेक विद्याओं की विवध शाखाओं के पूर्ण पण्डित तथा नाना प्रकार के मानवीय कार्य्य व्यवहारादि के चतुर ज्ञाता और सामयिक राजनीतिक विषयों के कुशल बिवेचक होते हैं। दोषों के यथार्थ विचारक अवश्य होते हैं, पर निन्दक नहीं होते। गुणग्राही हों वा नहीं हों, पर गुणगोपक नहीं होते। किसी की प्रशंसा करें या नहीं

करें, पर गालियां नहीं देते। उनकी लेखनी ईर्ष्याद्वेष के झोकों से नहीं डगमगाती, न उनको क्रोध की अग्नि ही जलाती है। वैमनस्य के झकोरों में वे शिला पर्वत जैसे अचल रहते हैं। जाति भेद सम्बन्धी मात्सर्य्य से अन्य जातियों की रचना पर अकारण कुटिल कटाक्ष नहीं करते। समालोचक की पदवी बड़े महत्व की है, वह सहनशील होते हैं। बिचारे प्रवासी अनुपस्थित लेखकों पर तुरन्त हाथ नहीं छोड़ते। बाहरी रूपके अवलोकन मात्र से जिज्ञासु समालोचकों को सन्तोष नहीं होता। केवल इतना ही कह देना कि छपाई सजावट अच्छी वा बुरी है, आया अशुद्ध है विभक्तियां प्रकृतियाँ दूषित हैं उनको पर्याप्त नहीं होता। समालोचक वृन्द इसको भली भांति जानते हैं कि सन्तोषप्रद उपदेशमय प्रोत्साहक समीक्षा वह है जिसमें लेखों के गुप्त अभिप्राय और गूढ़ात्मक तात्पर्य्यों पर विवेचना हो। गद्य अथवा पद्य के सौन्दर्य्य तथा अपरूपता का यथार्थ हेतु बताये, भद्दे वा कुरूप शब्द वा वाक्य की जगह तुल्यार्थ शब्द वाक्य की सूचना दे, (जरवाइनस एक प्रसिद्ध जरमन समालोचक को देखिए) केवल चाबुक और कोड़े न लगावे पर उत्तम आदर्शों की शिक्षा दे। जिस विषय वा विद्या का वह पण्डित न हो उस विषय वा विद्या के लेखों पर कुछ छेड़ छाड़ नहीं करे, क्योंकि ऐसे समालोचक का विचार विकार युक्त होगा, प्रमाण के योग्य नहीं। बहुत से समालोचक ऐसे भी हैं जो वस्तुत संस्कृत फ़ारसी उर्दू अंगरेजी के पूरे पण्डित नहीं हैं पर अभ्यास से अच्छी हिन्दी लिख लेते हैं और पत्र सम्पादक की पदवी पाकर बम के निर्द्दय गोले छोड़ते रहते हैं। पर अब ऐसे समालोचकों की संख्या बहुत कम है। ईर्ष्याद्वेष से उपजे हुए कटाक्षों को मैं नहीं कहता। सामान्यतः हिन्दी पत्र सम्पादक विद्वान और बुद्धिमान होते हैं और अपने

कर्त्तव्य तथा भार को उत्तम रीति से निभाते चले आते हैं। आप-त्तियां भी झेलते हैं पर सत्यासत्य के विचार से नहीं डरते। समालोचक नैयायिक भी होते हैं, कारण और उत्तर फलों का पूर्ण ज्ञान रखते हैं, हेत्वाभास तथा पक्षाभास को तुरत पकड़ लेते हैं। निदान उनके आक्षेप से कोई भी लेखक कितना ही चतुर हो बच नहीं सकता। एक बड़े रसिक और हास्यकर समालोचक ने अपनी मोहिनी और चितचोर भाषा के छबीलेपन से कुछ सङ्कुचित भाव लिये हुए विनय पर चातुरी के साथ विचारी बिहारी भाषा को "बाबू इङ्गलिश" की पदवी प्रदान की है, और लिङ्ग विभक्तियों का व्यवहार कठिन बतलाकर हम बिहारियों के आंसू पोंछे हैं। आपके कोमल कटाक्ष से यह अमृत टपकता है कि हम बिहारियों को इस दोष पर बड़ी सावधानी रखनी पड़ेगी, नहीं तो इस अन्ध कूप में बराबर गिरते रहेंगे। कितने लेखक भी ऐसे कठोरात्मक होते हैं कि उनकी टेढ़ी भ्रूकुटियों पर चिन्तित न होकर अपना काम किये ही जाते हैं और अपनी करतूतों का निर्णय सन्तान पर छोड़ देते हैं। नवयुवक लेखकों को इनके आक्षेप पर हताश नहीं होना चाहिए, साथ ही साथ इनके उत्तम उपदेशों से अपना सुधार करते रहना चाहिए। कभी निरुत्साह न होना और न अपनी भूलों पर हठ अथवा दुराग्रह करना।

हिन्दी भाषा की उन्नति कैसे होगी और हम बिहारियों का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए तथा हिन्दी कैसे लोकप्रिय होगी इन विषयों पर मैं कुछ नहीं कहना चाहता। कारण यह है कि गत नेताओं ने कोई पक्ष इनके नहीं छोड़े हैं जिसकी पूर्ति की जाय। यदि इसकी जानकारी चाहते हो तो दशम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शोच्य स्वर्गवासी सभापति रायबहादुर पण्डित विष्णुदत्त जी

शुक्ल का भाषण देखिये। आपने अशेष उपदेश इसका किया है। हम बिहारियों को उसी पथ पर चल कर मातृभाषा की उन्नति में दत्तचित्त रहना चाहिए। यहां भी इस पर अनेक प्रस्ताव किये जायंगे। मुझे इस समय कुछ कहने का अधिकार नहीं है।

अपनी जन्मभूमि सारन तथा छपरे की प्रशंसा मैं छोड़ नहीं सकता। कहा भी है, "जन्मभूमि मम पुरी सुहावन;" तथा हुब्बुल वतन अज़तख्त सुलेमां बेहतर"। इसके ऐतिहासिक वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होते, तौभी मेरी आंखों में इसका महत्व कम नहीं है। गृहादि इसके कुटीर और झोंपड़े हैं तो क्या राजाओं के प्रासाद अट्टालिका से कम शोभा नहीं देते। घास फूस की छावनी मेरे लिये कनक के कोट हैं। खपड़ों के छप्पर मेरे लिये मणिजटित छत्र हैं। सड़कों के रोड़े मुझको रत्नाकर दीखते हैं। यहां के मनुष्य ईश्वर प्रेष्य और बाल गोपाल छोटे छोटे देवदूत दृष्टिगोचर होते हैं। 'सैरुलमताख्वरीन' से ज्ञात होगा कि स्वदेश निरीक्षण में सम्राट् अकबर यहां पधारे थे, और वर्त्तमानकाल में लाट मिन्टो ने भी जलपक्षियों के अहेरार्थ धुर्दह के तड़ाग में चिड़ियां मारी हैं। छपरा के दो कोस पूर्व्व एक प्रसिद्ध ग्राम चिरानबसता है जहां एक टीला है। यन्त कथा है कि यह बस्ती किसी प्राचीन काल में बिहार की राजधानी चेरी राजाओं के अधीन थी। वहां एक डीह भी है जो अभी तक खोदा नहीं गया है कि कुछ पता चले। सबसे बढ़कर छपरा से दो कोश पश्चिम गोदना नामक एक गांव सरयू के तटपर बसता है। यह न्यायशास्त्र के प्रथम प्रणेता महर्षि गौतम की तपोभूमि थी। यहां कार्तिक की पूर्णिमा पर मेला होता है। जनश्रुति है कि इस तीर्थस्थान में पठन पाठन करने से विद्योपार्जन में शीघ्र उन्नति प्राप्त होती है। यहां संस्कृत की पाठशाला भी है। गण्डक

नदी और गंगा सरयू के सङ्गम पर बाबा हरिहरनाथ का मन्दिर सोनपुर ग्राम में बहुत विख्यात है। यहां भी उसी दिवस को सुप्रसिद्ध मेला लगता है। इसी जगह बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन हुआ था। इस प्रान्त में बहुतेरे छोटे बड़े कवि होते गये हैं जिनकी कविता ब्रजभाषा में हुआ करती थी। यहां पुस्तकालय भी नवयुवकों के प्रयत्न से स्थापित होते गये हैं। यहां के लेखकों और पुस्तकालयों का वृत्तान्त संक्षेपतः कह देना उचित समझता हूँ:—

१. पजनेश—आपका जन्म बुन्देलखण्ड में था पर अधिकांश जीवन अपना छपरे में ही बिताया।

२. सखावत राय—सिउवन गयासपुर निवासी। आपने "रावण सम्बाद" "मन्दोदरी" नामक छोटी पुस्तकें लिखी हैं।

३. श्री बाबू सुन्दर साही—मांझा नरेश।

४. श्रीमती गोप्यअली—बाबू कृष्णबिहारी जी की धर्म्मपत्नी; अपहर-निवासी। आपकी अनेक कवितायें "तुलसी" पत्र में छप चुकी हैं।

५. बाबू राजा जी—गुदई निवासी। ग्रन्थ—"राम बिलास नाटक"। रामायण की चौपाइयों से गीत के मधुर रचयिता।

बिदित रहे कि मैंने जीवित ग्रन्थकारों की नामावली किसी ईर्ष्यालु कारणों से नहीं छोड़ी है। मैंने और मेरे मित्रों ने इसको उचित नहीं समझा।

सारन प्रान्त की हिन्दी संस्थाएं ये हैं:—

१. छपरा हिन्दी प्रचारिणी सभा—इसके अधीन एक हिन्दी पुस्तकालय और विद्यालय है। यह केवल बिहार प्रान्त में ही नहीं,

किन्तु राजपुताना, युक्तप्रान्त, पंजाब तथा सीमान्त प्रदेशों में अपनी परीक्षा द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवा कर रही है।

२. हिन्दी विद्यालय, छपरा—इसमें उक्त परीक्षा सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं।

३. विद्यावर्धक पुस्तकालय, छपरा—अग्रवाल समाज द्वारा स्थापित।

४. भारत साहित्य भवन, छपरा—यह पुराना पुस्तकालय है। जैनमत के मारवाड़ी सज्जनों ने पहले "भारती भवन" नामक पुस्तकालय खोला था। पर अब इसमें साहित्य सदन संयुक्त कर दिया गया है।

५. श्री गोखले पुस्तकालय, छपरा—विद्यार्थियों द्वारा स्थापित हुआ था। इसका नीरीक्षण महात्मा गांधी जी ने भी किया है। इसमें सहस्रों रुपये की पुस्तकें थीं। काल की गति से मृतप्राय हो रही है।

६. शारदा नवयुवक समिति, छपरा—नवयुवकों द्वारा स्थापित इसमें एक शारदा पुस्तकालय भी है। अब बड़ो को मिला लेने का प्रयत्न हुआ है। इसमें एक नाटक विभाग भी है। नवयुबक सदस्यों के उत्साह स्वरूप एक हस्तलिखित "आशा" नामकी सचित्र त्रैमासिक पत्रिका भी निकला करती है।

७. माँझी का "उदितनारायन पुस्तकालय" भी उल्लेखनीय कार्य्य कर रहा है। इसमें संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकों का अच्छा संगह है।

८. हथुआ, अमनडर, मसरख, मीरगंज, गोपालगंज और सिसवन में भी छोटे बड़े पुस्तकालय और हिन्दी सभायें हैं।

९. हरपरजान में बाबू कृष्णबहादुर सिंह के उद्योग से आर्य्य-समाज का गुरुकुल लगभग १२ वर्ष से चल रहा है जिसमें हिन्दी साहित्य की सेवा भी हो रही है।

१०. "महिला दर्पण"—स्त्री शिक्षा के लिये श्रीमती शारदा कुमारी देवी द्वारा सपादित, यह मासिक पत्रिका उत्तम रीति से चल रही है और हिन्दी की यथेष्ट सेवा कर रही है।

प्रियवरो ! आप सज्जन महानुभाओं को अब मैं अधिक कष्ट देना उचित नहीं समझता। स्वागत कारिणी समिति आप श्रीमानों के शुभागमन पर सहर्ष धन्यवाद देती है। मण्डप के समीप कोई उत्तम घट नहीं मिल सका जहां आपको पूर्ण विश्राम मिल सके। और वर्षा ऋतु की निर्दयता का भी भय था। कोठरियों की सङ्कीर्णता से भी आपको अपरिचित दुःख हुआ होगा। इस दोष पूर्ण आतिथ्य सेवा के लिए मैं क्षमा मांगता हुआ हृदय से पुनः २ स्वागत करता हूं। अपनी सहन शीलता से आप इसे स्वीकार करें यही प्रार्थना है।

अब मैं श्रीमान पूज्यवर पण्डित सकल नारायण जी शर्म्मा कलकत्ता संस्कृत कालेज के अध्यापक हिन्दी साहित्य के पालक पोषक, हिन्दी ग्रन्थकारों के उत्तेजक, आरा नागरी प्रचारिणी सभा के प्राण, हिन्दी साहित्य के सर्वगत प्रेम के संवर्धक, बड़े विद्वान, मधुर लेखक, मनोहत हृदयों में जीव सञ्चार कर, उलझी हुई वाक्य प्रणाली को सुलझाने वाले और मौलिक कल्पनाओं के सुगम मार्ग दर्शक महाशय से सानन्द सभापति की वेदिका पर वेदव्यास होने के लिए और इस सम्मेलन का गौरव बढ़ाने के लिए सविनय प्रार्थना करता हूँ। आशा है आप भ्रातृगण श्रीमान पण्डित जी का भाषण ध्यान पूर्व्वक सुनेंगे और हिन्दी साहित्य की सेवा तन मन धन से किया करेंगे। मैं आपको अग्रतः धन्यवाद देता हुआ इस अयोग्य भाषण को समाप्त करता हूं और सम्मेलन की सफलता लिये प्रार्थी हूँ। ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्ति !!!

युग के चमत्कारपूर्ण आविष्कारों की चर्चा, दूसरे में वीर पुरुषों की अलौकिक करामातें, तीसरे में संसार के महापुरुषों के चुने हुए उपदेश-पूर्ण वाक्य, चौथे में संसार के नाना प्रकार के जीवों का परिचय, पाँचवें में इतिहास की महत्वपूर्ण कथायें, छठें में संसार के अद्भुत समाचारों का संग्रह, सातवें में महापुरुषों की जीवनियाँ, आठवें में दिलचस्प कहानियाँ, नवें में पाँच उन्नत भाषाओं के प्रसिद्ध पत्रों से चुने हुए बालोपयोगी विषयों का संकलन, दसवें में बालकों के चित्त में कौतूहल उत्पन्न करने वाले मनोरंजक प्रश्नों के उत्तर, ग्यारहवें में स्वास्थ्य सम्बन्धी जानने योग्य लाभदायक बातें तथा देशी और विदेशी पहलवानों की अनेक चित्रों से सुसज्जित जीवनियाँ, बारहवें में शुद्ध विनोदपूर्ण रसीले चुटकुले, तेरहवें में देश-देशान्तर का भौगोलिक वर्णन, चौदहवें में मनोहर बुझौवल और पहेलियाँ, पन्द्रहवें में सेवासमिति और स्काउटिंग सम्बन्धी बुद्धिवर्द्धक लेख, तथा सोलहवें में बालकों को सम्पादक की ओर से दी गई अमूल्य शिक्षायें रहती हैं। उक्त सभी विषयों के समावेश के साथ-साथ इस बात का ध्यान रखा जाता है कि ऐसी एक बात भी न हो जिससे बालकों का वास्तविक हित न हो। यही कारण है कि सभी पत्रों और विद्वानों ने मुक्त कंठ से इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यदि आप अपने बालकों का सच्चा कल्याण चाहते हैं, उनके जीवन को मंगल और आनन्द से भरपूर बनाना चाहते हैं, तो इस 'बालक' द्वारा उनके ज्ञान का खजाना भरिये।

जिगर की कविता उस वाटिका के समान है, जो सब प्रकार के फूलों से भरी हुई हो। 'सुमनजी' की टिप्पणियाँ 'जिगर' के कलाम के साथ सोने में सुगंध हो गई हैं। वह कवि भाग्यवान् है, जिसे कोई चतुर पारखी मिल जाय और इस लिहाज़ से हज़रत जिगर अवश्य भाग्यशाली कवि हैं। आशा है, हिन्दी-संसार इस पुस्तक का यथेष्ट आदर करेगा।

कवि की जीवनी के साथ-साथ उसकी उत्तमोत्तम रचनाओं की तुलनात्मक आलोचना भी है। अन्त में कठिन फारसी शब्दों के हिन्दी-सरलार्थ भी दिये गये हैं।

पृष्ठ-संख्या लगभग २५०, सजिल्द, मूल्य १।)

३—निर्माल्य

रचयिता—कविरत्न पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी'

इस पुस्तक में छायावाद की भावमयी ललित कविताओं का सुसम्पादित संग्रह है। वियोगीजी छायावाद की कविता में कवीन्द्र रवीन्द्र के अनुगामी हैं। आपकी कविता कितनी मधुर और कैसी चमत्कारपूर्ण होती है, यह हिन्दी-संसार को भलीभाँति मालूम है। आप माधुरी-पदक प्राप्त कर चुके हैं। इस पुस्तक के विषय में अखिल-भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति सुसमालोचक पं० जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी लिखते हैं—निर्माल्य के निरीक्षण से सुरसिकों को सन्तोष हुए बिना न रहेगा। निरवद्य पद्य-रचना-चातुर्य्य और माधुर्य्य के अतिरिक्त सुन्दर सूझ, कमनीय कल्पना, भव्य भाव, तथा नूतनत्व के निदर्शन का दर्शन स्थान-स्थान पर हो जाता है।

पृष्ठ लगभग १५०, रेशमी जिल्द पर सोने के अक्षर। आवरक पेपर का आवरण। चमकीला बुकमार्क। सजावट अप-टु-डेट। मू० १)

४—महिला-महत्व

लेखक—बाबू शिवपूजन सहाय

इस पुस्तक में ऐतिहासिक, सामाजिक और साहित्यिक दस अनूठी कहानियों का दर्शनीय संग्रह है। यह एक ललित, प्रसाद-पूर्ण, ओजस्वी, मनोरंजक और सर्वांगसुन्दर गद्य-काव्य है। इसकी चित्ताकर्षक वर्णनशैली, कवित्वमयी भाषा, अनल्प-कल्पनामयी रचना-शैली, अजस्र-भाव-प्रवाह और मनोमुग्धकर सरसता का रसास्वादन कर आप निश्चय ही अवाक् हो जायँगे। शब्दलालित्य, भाषासौष्ठव, वर्णन-चातुर्य्य, रस-गाम्भीर्य, कल्पना-कल्लोल और भाव-सौकुमार्य ऐसा अविरल है कि एक बार पढ़कर आप इस पुस्तक को छाती से लगाये रहेंगे। कभी प्रेम की मस्ती में झूमने लगेंगे, कभी प्राचीन राजपूती वीरता के गर्व से फूल उठेंगे, कभी कोमल-कान्त-पदावली की प्रफुल्लता पर लट्टू की तरह थिरक उठेंगे। कई बार पढ़ने पर भी संतोष न होगा। गद्य-काव्य का सजीव चित्र है। पृष्ठ-२००, अद्वितीय सुन्दर छपाई। सर्वांग-सुसज्जित। मूल्य २)

५—कवि-रत्न 'मीर'

लेखक—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

भूमिका-लेखक—बाबू शिवपूजन सहाय

'दागे़ जिगर' की तरह उर्दू के महाकवि 'मीर' पर सुमनजी ने यह भी एक अतीव सुन्दर समालोचनात्मक ग्रंथ लिखा है। इसमें

उन्होंने हिन्दी, उर्दू और संस्कृत के कवियों की कवितायें उद्धृत कर 'मीर' की रचना की ऐसी गवेषणापूर्ण तुलनात्मक समालोचना लिखी है कि सहृदयता बरबस मुग्ध हो जाती है। 'दागे जिगर' की तरह इसमें भी कवि की जीवनी और उसकी उत्कृष्ट रचनाओं का सम्पादित संग्रह है। साथ ही, कठिन फ़ारसी-शब्दों के सरलार्थ भी दे दिये गये हैं। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, सजिल्द, मूल्य १॥)

६—बिहार का साहित्य

इस पुस्तक में बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रथम पाँच सभापतियों के भाषणों का सुसम्पादित सुन्दर संग्रह है। साथ ही, स्वागताध्यक्षों के भी भाषण संग्रहीत हैं। सभापतियों के नाम ये हैं—(१) हास्य-रसावतार पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी (२) हिन्दी के गद्य-कवि राजा राधिकारमणप्रसादसिंह एम० ए० (३) बिहार के वयोवृद्ध सुलेखक और कवि बाबू शिवनन्दन सहाय (४) प्रोफेसर पं० सकलनारायण शर्मा, काव्य-व्याकरण-सांख्यतीर्थ, विद्याभूषण (५) भारतेन्दु के समकालीन वयोवृद्ध साहित्यसेवी पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र। इस प्रकार इस एक ही पुस्तक में हास्यरस की सरस धारा, गद्यकाव्य का ललित प्रवाह, साहित्यिक विकास का गवेषणा-पूर्ण विवेचन, हिन्दीव्याकरण की गूढ़ातिगूढ़ बातों का विद्वत्तापूर्ण स्पष्टीकरण और साहित्यिक इतिहास का सूक्ष्म अन्वेषण संवलित है। इसको पढ़ कर आप बिहार के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का गौरव स्पष्ट देख सकते हैं। ज्ञानवृद्धि के साथ साथ मनोरंजन की भी अपूर्व सामग्री है। पृष्ठ-संख्या ३००, पक्की जिल्द, पाँचों सभापतियों के चित्र। मूल्य १॥)

७—देहाती दुनिया

लेखक—बाबू शिवपूजन सहाय

इस उपन्यास में देहाती दृश्यों का ऐसा स्वाभाविक वर्णन है कि आप पढ़कर केवल चकित और पुलकित ही नहीं होंगे, बल्कि हँसते-हँसते लोटपोट भी हो जायँगे। सच पूछिये तो इसमें केवल मधुर और शुद्ध विनोद ही नहीं, अनेक उपदेश भी भरे पड़े हैं। भाषा ऐसी सरल, रसीली, रँगीली, लोचदार, फड़कती हुई, सजीव और सुबोध है कि हलवाहे और मजदूर भी खूब धड़ल्ले से पढ़कर बड़ी आसानी से समझ सकते हैं, और खूब मजा भी लूट सकते हैं। वर्णनशैली तो बड़ी ही हृदयग्राहिणी है और सजीव रचनाशैली भी एकदम निराले ढंग की है। बिल्कुल मुहावरेदार भाषा है। रोजमर्रे की बोलचाल की ऐसी सीधी-सादी भाषा में ऐसा मनोरंजक और शिक्षाप्रद उपन्यास आज तक हिन्दी में नहीं निकला। मजाल क्या कि एक बार पढ़कर आप अपने दस मित्रों से इसे पढ़ने के लिये साग्रह अनुरोध न करें। हम शर्तिया गारण्टी करते हैं कि यह मौलिक उपन्यास पढ़कर आप अवश्य ही मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। विश्वास कीजिए, 'देहाती दुनिया' की सैर करके आप निस्सन्देह अपने को कृतार्थ मानेंगे। पृष्ठ लगभग २००, सुनहले अक्षर से युक्त नये फैशन की रेशमी जिल्द, चमकीला रेशमी बुकमार्क, आयल पेपर का चिकना आवरण, मूल्य १॥)

८—प्रेम-पथ

लेखक—पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी

यह उपन्यास क्या है, प्रेम की माधुरी का अबट खजाना है।

अगर एक बार हाथ में लेकर पढ़ना शुरू कीजिये, तो खाना-पीना भूल कर इसे समाप्त किये बिना आप हरगिज़ उठ नहीं सकते। एक एक पृष्ठ पढ़ कर आप पत्थर की मूरत बन जायँगे। तारीफ़ यह है कि आप इसे ज्यों-ज्यों पढ़ते जायँगे, तीव्र उत्कंठा बढ़ती जायगी। इसमें एक सुन्दरी नवयुवती और एक शिक्षित नवयुवक का आदर्श प्रेम ऐसे शुद्ध एवं चटकीले रंग से चित्रित किया गया है कि कहीं-कहीं अनायास मुक्तकण्ठ से धन्य-धन्य कह उठना पड़ता है। विशुद्ध प्रेम कितना मधुर और कैसा आनन्ददायक होता है, उसकी चिन्तना और तर्कना में कितनी मधुरता और कैसी बिजली होती है, यह अगर देखना हो तो इसे ज़रूर पढ़िये। सब से बड़ी बात यह है कि इसमें पद-पद पर लौकिक शिक्षायें भरी हुई हैं। ऐसा सरस सामाजिक मौलिक उपन्यास अभी तक आप शायद ही पढ़े होंगे। पृष्ठ ३००, पक्की जिल्द, नये ढंग का आवरण, मूल्य २)

९—नवीन वीन

रचयिता—प्रोफेसर लाला भगवानदीन जी

इसमें कविवर दीनजी की चुनी हुई मीठी अनूठी कविताओं का परम रमणीय संग्रह है, जिनमें बीस कवितायें सचित्र हैं। कुशल शब्द-शिल्पी की रचना को चित्र-शिल्पी की कुशलता ने और भी सजीव बना दिया है। कवितायें इतनी सरल और सरस हैं कि बालक भी उनमें मग्न हो जा सकते हैं। भाव तो ऐसे अनूठे हैं कि पढ़ कर तबियत फड़क उठती है। उर्दू-शैली ने कविता में और भी लोच पैदा कर दी है। कई कविताओं में लालाजी की ओज-

स्विनी लेखनी ने कमाल कर दिया है। अभी तक लालाजी की उत्तमोत्तम कविताओं का ऐसा सर्वाङ्गसुन्दर कोई संग्रह नहीं निकला।

पृष्ठ-संख्या लगभग १५०, बीस चित्र, सजिल्द, मूल्य २)

सुबोध-काव्यमाला

१—बिहारी-सतसई

सरल टीका सहित

[केवल छः महीने में प्रथम संस्करण बिक गया

टीकाकार—पं० रामवृक्ष शर्म्मा बेनीपुरी

आज तक बिहारी-सतसई पर जितनी छोटी-बड़ी टीकायें निकल चुकी हैं, उनमें सब से सरल, सस्ती और सुबोध यही है। यह नया संस्करण पहले से भी अधिक सुन्दर और परिवर्द्धित तथा परिष्कृत रूप में निकला है। दोहों का पाठ शुद्ध, उनका स्पष्ट अन्वय, सरल भाषा में भावार्थ, कठिन शब्दों के सुगम अर्थ, और नोटों में विशेष जानने योग्य बातों का उल्लेख है, जिससे विद्यार्थियों और कविता-रसिकों के लिए इसकी उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ गई है। थोड़ा पढ़ा-लिखा आदमी भी बिहारी की रस-भरी रचना का पूरा मजा लूट सकता है। आरंभ में बाबू शिवपूजन सहाय-लिखित "सतसई का सौन्दर्य" शीर्षक एक सरस सुरुचिपूर्ण निबन्ध है, जिसमें सतसई की बारीकियाँ झलकाई गई हैं। सुन्दर कपड़े की पक्की जिल्द, पृष्ठ लगभग ४००, मूल्य तो भी १।) !

विद्यापति की पदावली

सचित्र और सटिप्पण

टीकाकार—पं० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी

भूमिका-लेखक—साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय

संस्कृत-साहित्य में जो स्थान जयदेव का है, हिन्दी-साहित्य में वही स्थान विद्यापति का है। दोनों ही ने बड़ी सहृदयता से श्रीराधा-कृष्ण के मधुर प्रेम के मनोहर चित्र खींचे हैं, जिसकी अलौकिक शोभा देखते ही बनती है। दोनों ही को अपनी मधुर भाषा और कोमल-कान्त-पदावली पर अभिमान था। विद्यापति के पद इतने मधुर हैं कि वह इसी लिए मैथिल-कोकिल कहे जाते हैं। उपाध्यायजी ने इस सुन्दर संग्रह की भूमिका में लिखा है—"केवल मैथिली भाषा को आपका गर्व नहीं है, वंग-भाषा और हिन्दी-भाषा-भाषी भी आपको अपनाने में अपना गौरव समझते हैं। तीन-तीन प्रान्त में समान भाव से समादृत होने का गुण यदि किसी की कविता में है, तो आप ही की कविता में। संग्रह-कर्त्ता ने उनकी उत्तमोत्तम रचना-कुसुमावली में से सरस-से-सरस सुमन संचय करने में जिस मधुप-वृत्ति का परिचय दिया है, उसकी भूयसी प्रशंसा की जा सकती है। पाद-टिप्पणियाँ तो सोने में सुगंध हैं।"

पृष्ठ लगभग ४००, नव चित्र, सुन्दर रेशमी जिल्द पर सोने के अक्षर, रेशमी बुकमार्क और चमकीला आवरण, मूल्य २)

नवयुवक-हृदय-हार

१—प्रेम

लेखक—नवयुवकाचार्य अश्विनी कुमार दत्त

यह अश्विनी बाबू-जैसे मार्मिक लेखक की चमत्कारपूर्ण लेखन का अद्भुत कौशल प्रकट करनेवाली अनूठी पुस्तक है। इसके एक-एक शब्द में वह बिजली है, जो नवयुवकों के जीवन में विलक्षण शक्ति स्फुरित कर सकती है। इसे पढ़कर नवयुवक निश्चय ही भ्रष्ट मार्ग से विमुख होकर सदाचारी और आदर्श प्रेमिक बन सकते हैं, जिस पर मानव-जीवन का सुख-सौभाग्य आश्रित है। पृष्ठ १००, मूल्य ।=). बड़ी सादगी, सफाई और सुन्दरता से छपी है। आरम्भ में अश्विनी बाबू की विस्तृत आदर्श जीवनी दे दी गई है।

२—जयमाल

लेखक—उपन्यास-सम्राट् श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

एशिया-खण्ड के यशस्वी लेखकों में शरद बाबू का बड़ा ही प्रतिष्ठित स्थान है। यह पुस्तक उन्हीं के 'परिणीता' नामक सरस उपन्यास का सरल अनुवाद है। इसके अनुवादक हैं बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री बाबू रामधारीप्रसाद विशारद। इसमें ऐसी विचित्र प्रेम-कहानी है कि आप पढ़ कर तसवीर बन जायँगे। मनुष्य के अन्तःकरण के कोमल भावों का ऐसा कारुणिक एवं आकर्षक चित्र अत्यन्त विरल है। कवर पर मूल-लेखक का चित्र। शुद्ध सुन्दर स्वच्छ छपाई। मूल्य केवल छ आना। इससे सस्ता संस्करण हिन्दी में नितान्त दुर्लभ है।

३—विपंची

रचयिता—साहित्य-भूषण श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

इसमें सुमनजी की चुनी-चुनाई उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह है। कविताएँ ऐसी मर्मभेदिनी हैं कि पढ़कर आँखें छलछला उठेंगी। छपाई-सफाई बिलकुल अनूठी। मूल्य ।)

४—कली

यह बिहार-प्रान्त के चार प्रतिभाशाली नवयुवक कवियों की चुनिन्दा कविताओं का संग्रह है। इसमें ऐसी-ऐसी चुभीली रचनाएँ है कि पढ़कर आप बरबस कलेजा पकड़ लेंगे। छपाई-सफाई दर्श-नीय। मूल्य ।)

बाल-मनोरंजन-माला

बगुला भगत

लेखक—पं० रामवृक्षशर्मा बेनीपुरी ('बालक'-सम्पादक)

यह पुस्तक बालकों और बालिकाओं के लिये अत्यन्त पवित्र विनोदपूर्ण एवं शिक्षाप्रद है। बगुला भगत की कहानी ऐसी रोचक और उपदेशजनक है कि लड़के-लड़कियाँ पढ़कर लोट-पोट हो जायँगी और इसका प्रभाव उनके कोमल हृदय पर सदा के लिये अंकित हो जायगा। बगुला भगत की विकट माया और प्रपंच-भरी विचित्र लीला पढ़कर हँसी-खेल में ही लड़के-लड़कियों की आँखों के सामने इस विलक्षण संसार का सच्चा चित्र घूम जायगा। एक बार लड़के पढ़ लें, तो निश्चय छाती से लगाये फिरें। एक तिरंगा और कई सादे चित्र, सुसज्जित छपाई-सफाई, मूल्य ।=)

सियार पाँड़े

लेखक—पं० रामवृक्षशर्मा बेनीपुरी ('बालक'-सम्पादक)

यह पुस्तक तो बालक-बालिकाओं के लिये शुद्ध हँसी और बुद्धि-मानी का खजाना ही है। वे पढ़ते-पढ़ते नाच उठेंगे, खाना-पीना भूल कर इसी को पढ़ते रहेंगे। इसका कारण यह है कि इसमें केवल उनके मनबहलाव का ही सामान नहीं है, उनके ज्ञान को भी विकसित करनेवाला है—उनके दिल और दिमाग को चुटकियों में हरा-भरा कर देनेवाला अजीब नुस्खा है। इस एक ही जादू की पुड़िया से लड़के-लड़कियों का मन चंगा हो जायगा। एक तिरंगा और कई सादे चित्रों से पुस्तक की शोभा ही अनूठी हो गई है। मूल्य ।=)

महिला-मनोरंजन-माला

दुलहिन

लेखिका—श्रीमती चन्द्रमणि देवी

इस पुस्तक में नई बहुओं के लिये अमूल्य उपदेश भरे हुए हैं। जो बहुएँ अपने सगों से बिलग होकर एक ऐसे स्थान में सदा के लिये चली जाती हैं, जहाँ उनका परिचित कोई नहीं और जहाँ जाते ही अपने सगे-से-सगे भी बिराने-से हो जाते हैं, उन्हीं अल्हड़ और अनाड़ी बहुओं के लिये यह पुस्तक खास तौर से लिखी गई है, ताकि वे इसे पढ़कर अपनी ससुराल वालों के साथ यथोचित प्रेम और आदर का बर्ताव कर अपने परिवार को स्वर्ग और जीवन को सुखमय बना सकें। प्रत्येक कन्या के हाथ में यह शोभा पाने योग्य है। एक-एक बात अनुभव से भरी है। भाषा बोलचाल की और बहुत ही

मोठी है। मोटे अक्षरों में लाल-नीली स्याही में बड़ी सुन्दरता से छपी है। मूल्य ।)

सावित्री

लेखिका—स्वर्गीया श्रीमती शिवकुमारी देवी

स्वर्गीया देवीजी बिहार के प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक अखौरी युगल किशोर मुन्सिफ़ की पुत्री और बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मंत्री बाबू रामधारी प्रसाद विशारद की अनुजवधू थीं। आप यह एक ही पुस्तक लिखकर अपना नाम अमर कर गई हैं। इसमें प्राचीन भारत की सुप्रसिद्ध सती सावित्री के पातिव्रत की महिमा ऐसी सुन्दर भाषा में लिखी गई है कि एक बार पढ़ने से स्त्रियों की नस-नस में सतीत्व के गौरव की बिजली दौड़ जाती है। मजाल नहीं कि स्त्रियाँ इसे पढ़ने के बाद श्रद्धा के साथ सीस पर न चढ़ा लें। यह भी दो रंगों में खूब सजावट के साथ निहायत नफ़ीस छपी है। मूल्य ।)

अहिल्या

लेखक—पं० जटाधरप्रसाद शर्मा "विकल"

यह उस अहिल्या का चरित्र नहीं है, जो पौराणिक काल में अपयश की पिटारी बन चुकी है। यह तो उस वीर रमणी का पुण्य चरित्र है, जो भारत के इतिहास में अहिल्याबाई के नाम से काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। इस देवी के चरित्र में यह स्पष्ट झलकता है कि स्त्रियों में कैसी अलौकिक शक्ति और प्रतिभा होती है तथा अपने चरित्र-बल से वे संसार में कितनी कीर्ति और प्रतिष्ठा स्थापित कर सकती हैं। भाषा अत्यंत सरल और सुबोध। छपाई-सफ़ाई देखने ही योग्य। मूल्य ।)

चारु-चरित-माला

(चार आना संस्करण)

सभी जीवनियाँ सचित्र हैं। इनके आवरण-पृष्ठ हिन्दी-संसार के लिय सर्वथा अनूठे और अपूर्व हैं। देखते ही बनता है।

शिवाजी

हिन्दू-राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी की वीर-चरितावली पढ़ने के लिए कौन न लालायित होगा। यह जीवनी आधुनिक ऐतिहासिक खोज के आधार पर लिखी गई है। पृष्ठ-पृष्ठ से वीरता टपकती है। मुख-पृष्ठ पर शिवाजी की वीर-मूर्त्ति देखने योग्य है। पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ।)

माइकेल मधुसूदनदत्त

बंग-भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माइकेल मधुसूदन के जीवन की करुण-कहानी। मानव-जीवन की महानता और तुच्छता, उच्चता और नीचता का अपूर्व चित्रण। यथार्थ होने पर भी औपन्यासिक घटना-सा चमत्कारपूर्ण। ७० पृष्ठ। सचित्र। मूल्य ।)

विद्यापति

विद्यापति हिन्दी-भाषा के जयदेव हैं। इनकी कविता जयदेव की कविता के समान ही सरस है, मधुर है, कोमल है और संगीतपूर्ण है। इसीलिए ये मैथिल-कोकिल कहलाते हैं। इन्हीं की यह प्रामाणिक जीवनी है। पृष्ठ ४८, मूल्य ।)

बाबू लंगटसिंह

वर्तमान बिहार के विधाताओं में अन्यतम, नितान्त निर्धन घर में जन्म लेकर अपने उद्योग से लखपती बन जाने वाले, मुजफ्फरपुर के भूमिहार-ब्राह्मण-कालेज के प्रतिष्ठाता का साहस और उद्योगपूर्ण जीवन-वृत्त। पृष्ठ ५०, मूल्य ।)

शेरशाह

भारत के इतिहास का प्रसिद्ध सम्राट्, जो एक साधारण श्रेणी का मनुष्य होने पर भी अपने बाहुबल और कौशल से दिल्ली का बादशाह बन बैठा, तथा जिसने मुगल-बादशाह हुमायूँ को हिन्दुस्तान से खदेड़ मारा। पौरुष और बुद्धि के संयोग से अदना आदमी भी कितनी उन्नति कर सकता है, यह देखना हो तो इसे जरूर पढ़िये। मूल्य ।)

गुरु गोविन्दसिंह

सिक्ख-धर्म के दसवें गुरु की जीवनी, जो एक महान् अद्भुत धनुर्द्धर पुरुषसिंह, सिक्ख-जाति का निर्माता, पंजाब का तेजस्वी वीर, भारतवर्ष का एक चमकता हुआ सितारा, स्वतन्त्रता का एकान्त पुजारी, आत्माभिमान का जबरदस्त पुतला था। पढ़कर आप फड़क उठेंगे। मूल्य ।)